भाषा शिक्षण

हिंदी | भाग-1

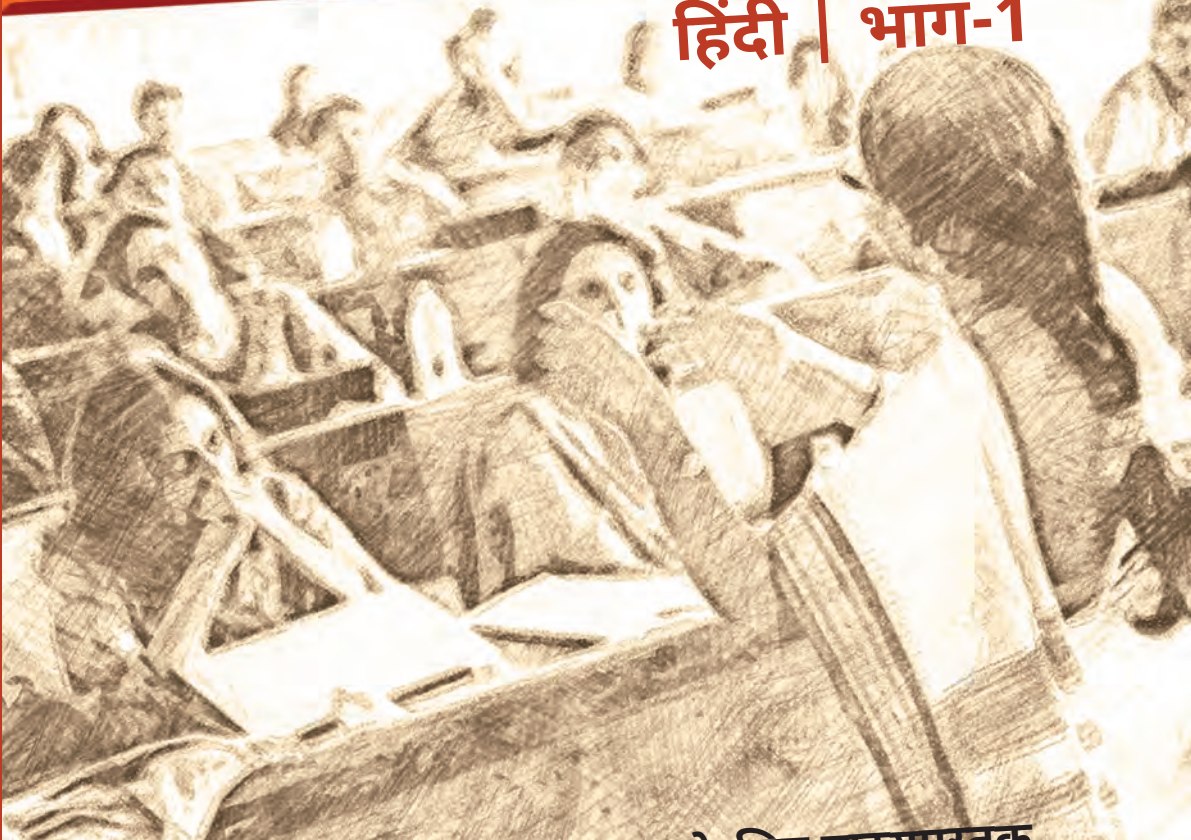

द्विवर्षीय बी.एड.पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यपुस्तक

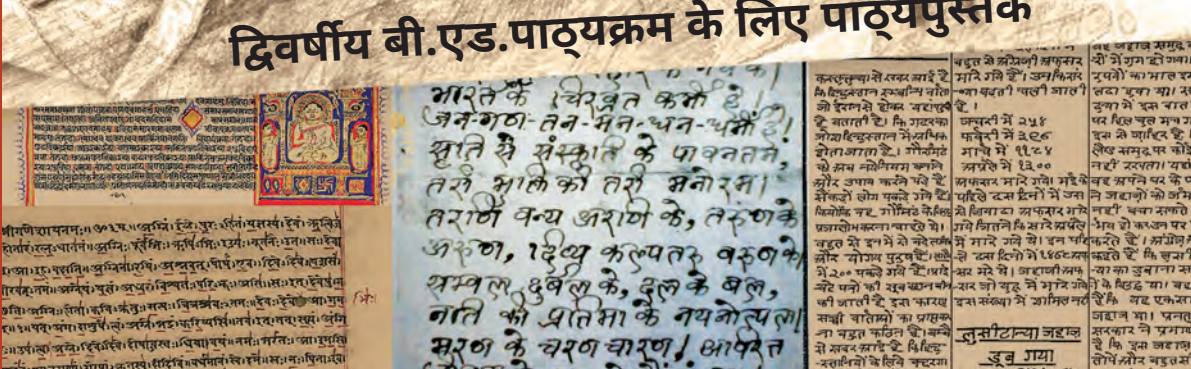

प्यारे बच्चो!

यदि कोई आपको अनुचित ढंग से स्पर्श करे और यह स्पर्श आपको अच्छा न लगे तो, आप चुप न रहें। आप

1. स्वयं को इसका दोष न दें;
2. इस बारे में किसी ऐसे व्यक्ति को बताएँ जिस पर आप भरोसा करते हो;
3. आप **पॉक्सो ई.बॉक्स** के माध्यम से राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को भी इस बारे में सूचित कर सकते हैं।

जब आपको कोई अनुचित ढंग से स्पर्श करता है तो आपको बुरा लग सकता है, आप दुविधाग्रस्त और असहाय अनुभव कर सकते हैं
आपको ''बुरा'' अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आपकी गलती नहीं है

इस बटन को दबाएँ

पॉक्सो ई.बॉक्स NCPCR@gov.in पर उपलब्ध है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

यदि आपकी आयु 18 वर्ष से कम है और आप मुसीबत में हैं अथवा दुविधाग्रस्त हैं अथवा आपके साथ दुर्व्यवहार किया गया है अथवा संकट में हैं अथवा किसी ऐसे बच्चे को जानते हैं...

1098 पर कॉल करें...क्योंकि कुछ अच्छे नंबर जीवन बदल देते हैं।

चाइल्ड लाइन 1098 - विपत्ति में बच्चों के लिए 24 घंटे नि:शुल्क राष्ट्रीय आपातकालीन फ़ोन सेवा, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सहयोग से चाइल्ड लाइन इंडिया फ़ाउंडेशन की पहल है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

भाषा शिक्षण

हिंदी | भाग-1

द्विवर्षीय बी.एड.पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यपुस्तक

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-018-1

प्रथम संस्करण

मई 2018 वैशाख 1940

PD 2T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2018

₹ 165.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा अरुण पैकर्स एंड प्रिंटर्स, सी-36, लॉरेन्स रोड़ इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110 035 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108ए 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
संपादन सहायक	:	*ऋषि पाल सिंह*
उत्पादन सहायक	:	*सुनील कुमार*

आवरण एवं सज्जा

श्वेता राव

आमुख

बी.एड. का यह दो-वर्षीय पाठ्यक्रम भाषा के नए सरोकारों और सीखने-सिखाने की नयी दृष्टियों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। नयी शिक्षा दृष्टियाँ और एनसीटीई नियामवली 2014, अध्यापकों की भूमिका में एक बड़ी तब्दीली की माँग करती है। इसके तहत सभी विषयों के प्रशिक्षु शिक्षकों के विद्यालय में शिक्षण के अनुभव को विशेष महत्व दिया गया है। इसके लिए आई. सी. टी. के प्रयोग, व्यावहारिक शिक्षा नवाचारी शिक्षा, संस्थाओं का अवलोकन, शिक्षण के दौरान शोध और दीर्घकालीन कक्षा-शिक्षण (इंटर्नशिप) पर बल दिया गया है। यह पाठ्यक्रम सिद्धांत और व्यवहार के बीच एक संतुलन बनाने के प्रयास का परिणाम है।

भारत विविधताओं का देश है। वर्तमान समय में हमारी कक्षाएँ भी विविध और चुनौतीपूर्ण हैं। कक्षा शिक्षण के दौरान भाषायी और सांस्कृतिक विविधताएँ शिक्षक को अपने शिक्षण में विविधता लाने की चुनौती भी खड़ी करती हैं। पर ये भाषायी, सांस्कृतिक और सामाजिक बहुलताएँ हमारी अनूठी विशेषताएँ हैं। इन विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और समाज से जुड़े मुद्दों को समझने और उनसे संवाद स्थापित कर सकने के रूप में हिंदी भाषा के विकास की ज़रूरत है। ऐसे भाषा-अध्यापकों को तैयार करना हमारे लिए चुनौती है जो विद्यार्थियों को शिक्षा-प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार के रूप में देखें और उनके सवालों को सुनने और समझने की ज़रूरतों को समझें। इन सब तब्दीलियों को उनके व्यवहार का हिस्सा बनाने के लिए ज़रूरी है कि अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में बदलाव आए।

स्कूली व्यवस्था में बदलाव की पहल तभी संभव है जब इस व्यवस्था से जुड़े लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आए और अध्यापक की भूमिका इस व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से भाषा-शिक्षण का पाठ्यक्रम और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि भाषा पूरी शिक्षा की ज़मीन तैयार करती है। जहाँ सिर्फ़ भाषा पढ़ना सीखना नहीं, बल्कि भाषा से जुड़े नए मुद्दे जैसे– बहुभाषिक कक्षा, समझ का माध्यम, समावेशी शिक्षा, शिक्षा में शांति और भाषा की भूमिका आदि की समझ अध्यापकों के लिए ज़रूरी है। ये बिंदु शिक्षा में व्यापक बदलाव की माँग करते हैं।

यह किताब इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर तैयार की गयी है। हमे आशा है कि यह पुस्तक अध्यापक शिक्षण के लक्ष्य को पूरा करेगी, जिससे हिंदी की कक्षा विद्यार्थी

केंद्रित हो सकेगी। इस बदलाव की दिशा में सफलता तभी मिलेगी जब पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में आज़ादी और सृजनात्मकता को स्थान मिलेगा।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गयी पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् ऐसी टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी, जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

हृषिकेश सेनापति
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

नयी दिल्ली
13 सितंबर 2017

किताब के बारे में

शिक्षा संबंधी सभी दस्तावेज़ इस ओर इशारा करते हैं कि शिक्षा ऐसी हो कि बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मिलें। भाषा की शिक्षा को समग्रता में देखे समझे बगैर चहुँमुखी विकास संभव नहीं। शिक्षा में भाषा की भूमिका को ठीक से सराहने के लिए हमें समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत है। हमें इसके संरचनागत, सौंदर्यशास्त्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों को महत्व देते हुए बहुआयामी स्थिति में रखकर इसकी पड़ताल करनी होगी। सामान्यत: भाषा को शब्दकोश व कुछ निश्चित वाक्यगत नियमों के मिश्रण के रूप में देखा जाता है। यह भाषा का एक पहलू है। भाषा का दूसरा और महत्वपूर्ण पहलू वह है जहाँ भाषा बच्चे के व्यक्तित्व को रचने का काम करती है। वास्तव में पूरी शिक्षा की ज़मीन तैयार करने में भाषा की आधारभूत भूमिका होती है और इस ज़मीन को सुदृढ़ बनाना भी **भाषा-शिक्षण** का ही काम है।

भाषा की पढ़ाई कैसी हो, इस सवाल को सोचना विचारना केवल भाषा-शिक्षण का सवाल नहीं, बल्कि पूरी शिक्षा का सबसे अहम सवाल होना चाहिए। भाषा-शिक्षा संबंधी अद्यतन दस्तावेज़ भाषा-शिक्षा में कुछ ज़रूरी बदलाव की माँग करते हैं। नए शोध, भाषा सहित पूरी शिक्षा को समावेशी-शिक्षा के छतरी तले देखने का अवसर देते हैं। भाषा नियमों द्वारा नियंत्रित संप्रेषण का माध्यम भर नहीं है, बल्कि यह एक परिघटना है जो बड़े स्तर पर हमारी सोच, सत्ता और समता के संदर्भ में हमारे सामाजिक संबंधों को नियमित करती है।

भाषा-शिक्षण संबंधी इस पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग से संबंधित प्रस्तुत पुस्तक में पाँच इकाइयाँ हैं जिनमें **भाषा की प्रकृति और भूमिका, भारत में भाषाओं की स्थिति, भाषा शिक्षण पर एक दृष्टि, भाषायी व्यवहार और व्यवस्था, भाषायी कौशलों का विकास** संबंधी समझ बनाने पर बल है।

पहली इकाई ***भाषा की प्रकृति और भूमिका*** में समाज, सत्ता, जेंडर और *अस्मिता के संदर्भ में भाषा को* समझने-समझाने का प्रयास किया गया है। दरअसल बच्चे जब स्कूल आते हैं तो अपने साथ भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश भी लेकर आते हैं। परिवेश में निर्मित उनके पूर्व ज्ञान की समझ अध्यापकों के लिए शिक्षण की योजना बनाने की दिशा में सहायक होगी।

आज हिंदी का जैसा स्वरूप दिखायी पड़ता है उसके लिए भाषा संबंधी कई संवैधानिक और नीतिगत फैसले लेने पड़े होंगे। इन दस्तावेज़ों की समझ अध्यापकों को भी होनी चाहिए। साथ ही स्वतंत्रता के दौरान तथा उसके बाद हिंदी ने कई संघर्ष किये हैं।

इस दौरान हिंदी का अन्य भारतीय भाषाओं से भी संबंध अलग-अलग तरह से दिखायी पड़ता है। इन्हीं बातों को दूसरी इकाई ***भारत में भाषाओं की स्थिति*** में विश्लेषित किया गया है।

स्कूली शिक्षा के विकास के साथ-साथ भारतीय और पश्चिमी अनेक शिक्षण दृष्टियाँ और प्रणालियाँ भी विकसित हुईं। अलग-अलग अवसर पर समय और कक्षा की माँग के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहा। प्रत्येक अध्यापक विद्यार्थी विशेष और कक्षा विशेष को ध्यान में रखते हुए अपनी अलग शिक्षण पद्धति भी विकसित करते हैं। तीसरी इकाई ***भाषा शिक्षण पर एक दृष्टि*** में इन्हीं बिंदुओं की चर्चा की गई है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक नियमबद्ध व्यवस्था होती है। पूरे विश्व की भाषाओं में एक निश्चित पैटर्न भी देखने को मिलता है। सार्वभौमिक व्याकरण और भाषा की इस नियमबद्ध व्यवस्था की समझ किसी भी भाषा को पढ़ने-पढ़ाने का आधार तैयार करने में मदद करता है। चौथी इकाई ***भाषायी व्यवहार और व्यवस्था*** में इन्हीं बातों पर विचार किया गया है।

इस पुस्तक की *पाँचवीं इकाई* ***भाषायी कौशलों का विकास*** *में समझ कर सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना संबंधी कौशलों* को समेकित रूप में समझने का अवसर दिया गया है। सुनने का कौशल और बोलने का लहज़ा भारत की भाषायी विविधता की एक पहचान है। संदर्भ में व्याकरण और संदर्भ में शब्दों के अर्थ को समझना एक भाषा के अध्यापक के लिए बेहद ज़रूरी है। इस इकाई मे इन्हीं बातों पर विचार किया गया है।

इस पुस्तक की हरेक इकाई में अभ्यास-प्रश्न के साथ शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान की जाने वाली गतिविधियों और परियोजनाओं को भी दिया गया है। ये अभ्यास-प्रश्न और गतिविधियाँ सुझावात्मक हैं, जो ऐसी बहुत सी गतिविधियों के विकास में सहायक हो सकते हैं। साथ ही ये अभ्यास पुस्तकालयों में पड़ी बहुत सी अनछुई किताबों की दुनिया तक ले जाने को विवश करेंगे और नयी पुस्तकों, नए शोधों, अखबारों व रोज़ की खबरों के प्रति भी सचेत कराने में समर्थ होंगे।

बच्चों की दुनियाँ और भाषा की समझ के साथ आमंत्रित करती यह पुस्तक भाषा-शिक्षण भाग-1 आपके हाथों में है, जिसके संशोधन एवं परिवर्धन के लिए सुझावों का निरंतर स्वागत रहेगा।

मुख्य समन्वयक

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

सदस्य

अनूप कुमार, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* आर.आई.ई, भुवनेश्वर, ओडिशा

उषा शर्मा, *प्रोफ़ेसर, डी.ई.ई.,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

निरंजन सहाय, *प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग,* म.गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

रवीद्रं कुमार पाठक, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

विश्वंभर, *क्षेत्रीय प्रबंधक (शिक्षा),* टाटा ट्रस्ट्स, उत्तर प्रदेश

वीरेन्द्र सिंह रावत, *क्षेत्रीय सलाहकार,* सी.आई.ई., दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शारदा कुमारी, *वरिष्ठ प्रवक्ता*, डाइट, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली

ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, *प्राचार्य,* मैत्रेय कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन एंड मैनेजमेंट, हाजीपुर (वैशाली), बिहार

मुख्य समन्वयक

संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सह-समन्वयक

कीर्ति कपूर, *प्रोफ़ेसर*, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक की समीक्षा में अपना मूल्यवान समय और सहयोग देकर बेहतर बनाने के लिए अरुण कमल, *प्रोफ़ेसर*, पटना विश्वविद्यालय और अवधेश कुमार सिंह, प्रोफ़ेसर, अनुवाद शिक्षा विभाग, इंदिरा गांधी मुक्त विश्विद्यालय, दिल्ली के प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं।

हम इस पुस्तक के निर्माण में अलग-अलग स्तरों पर सहयोग के लिए अध्यक्ष, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.,नयी दिल्ली, *अध्यक्ष,* अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, *अध्यक्ष,* विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, *अध्यक्ष,* जेंडर शिक्षा अध्ययन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, अवधेश कुमार मिश्रा, *प्रोफ़ेसर,* इफ्लु, शिलाँग तथा चमन आरा खान, ज्योति कोहली, मीना सहरावत, निधि तिवारी, सरयुग यादव, सुबोध कुमार झा, प्रमोद कुमार तिवारी के आभारी हैं। भाषा संपादन के लिए श्याम सिंह सुशील तथा ममता गौड़, संपादक (संविदा), ले-आऊट डिज़ाइन के लिए श्वेता राव (संविदा) तथा डी.टी.पी. ऑपरेटर जुनैद अहमद (संविदा), रेखा (संविदा) और मोहम्मद इकबाल (संविदा) के प्रति भी परिषद् आभार व्यक्त करती है।

विषय-सूची

आमुख *iii*

किताब के बारे में *v*

इकाई -1 — भाषा की प्रकृति और भूमिका **1-34**

1.1 — भाषा और समाज **02**

1.1.1 भाषा और वर्ग 05

1.1.2 भाषा और सत्ता 07

1.1.3 भाषा और अस्मिता 10

1.1.4 भाषा और जेंडर 13

1.2 — भाषा और स्कूल **20**

1.2.1 घर की भाषा और स्कूल की भाषा 20

1.2.2 माध्यम भाषा एक आलोचनात्मक दृष्टि 21

1.2.3 समझ और भाषा 22

1.2.4 विषय के रूप में भाषा और माध्यम भाषा 27

1.2.5 भाषा और अन्य विषय 28

1.2.6 बहुभाषिकता का उद्देश्य और बहुभाषिक कक्षा 30

इकाई -2 — भारत में भाषाओं की स्थिति **35-68**

2.1 — हिंदी भाषा की स्थिति **36**

2.1.1 स्वतंत्रता से पहले की हिंदी 38

2.1.2 स्वतंत्रता के बाद की हिंदी 41

2.1.3 अन्य भाषाएँ और हिंदी 41

2.1.4 हिंदी का सच 43

2.1.5 हिंदी के विविध रूप 44

2.1.6 अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी 46

2.1.7 ज्ञान की भाषा के रूप में हिंदी 48

2.1.8 हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चुनौतियाँ और अवसर 49

2.2 — संविधान और शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ों में भाषा **53**

2.2.1 डॉ. राधाकृष्णन कमीशन (1948) 54

2.2.2 कोठारी आयोग (1964-66) 55

2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा कार्ययोजना (1992) 57

इकाई- 3 — भाषा शिक्षण पर एक दृष्टि **69-108**

3.1 — भाषा सीखने-सिखाने की विभिन्न दृष्टियाँ **70**

3.1.1 भाषा अर्जन और सीखने-सिखाने का आधार 71

3.1.2 समावेशी कक्षा और भाषा शिक्षण दृष्टि 72

3.1.3 समग्र भाषा दृष्टि 73

3.1.4 रचनात्मक दृष्टि 78

3.1.5 भारतीय भाषा दृष्टि 87

3.2 — भाषा शिक्षण की प्रचलित विधियाँ/ प्रणालियाँ और उनका विश्लेषण **95**

3.2.1 व्याकरण-अनुवाद विधि 96

3.2.2 प्रत्यक्ष विधि 97

3.2.3 प्राकृतिक विधि 98

3.2.4 संप्रेषणात्मक विधि 99

3.2.5 आलोचनात्मक विधि 101

इकाई- 4 — भाषायी व्यवहार और व्यवस्था **109-156**

4.1 — भाषायी व्यवहार के विविध पक्ष **110**

4.1.1 नियमबद्ध स्वरूप और उसकी परिवर्तनशीलता 110

4.1.2 भाषा-भेद और भाषायी परिवर्तनशीलता 115

4.1.3 वाक् और लेखन 122

4.2 — भाषायी व्यवस्थाएँ **129**

4.2.1 सार्वभौमिक व्याकरण की संकल्पना 129

4.2.2 वाक्य-विज्ञान 134

4.2.3 प्रोक्ति 136

4.2.4 रूप-विज्ञान 147

इकाई- 5 — भाषायी–कौशलों का विकास **157-206**

5.1 — संदर्भ में भाषा **158**

5.1.1 संदर्भ में व्याकरण और संदर्भ में शब्द 158

5.2 — भाषायी क्षमताएँ **166**

5.2.1 सुनना 171

5.2.2 बोलना (मौखिक अभिव्यक्ति) 175

5.2.3 पढ़ना/वाचन 182

5.2.4 लिखना 192

संदर्भ **204**

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

इकाई
1

भाषा की प्रकृति और भूमिका

1.1 — भाषा और समाज **02**

1.1.1 भाषा और वर्ग 05

1.1.2 भाषा और सत्ता 07

1.1.3 भाषा और अस्मिता 10

1.1.4 भाषा और जेंडर 13

1.2 — भाषा और स्कूल **20**

1.2.1 घर की भाषा और स्कूल की भाषा 20

1.2.2 माध्यम भाषा एक आलोचनात्मक दृष्टि 21

1.2.3 समझ और भाषा 22

1.2.4 विषय के रूप में भाषा और माध्यम भाषा 27

1.2.5 भाषा और अन्य विषय 28

1.2.6 बहुभाषिकता का उद्देश्य और बहुभाषिक कक्षा 30

1.1 — भाषा और समाज

भाषा की भूमिका को ठीक से समझने और सराहने के लिए हमें समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाकर चलना होगा। इसलिए हमें भाषा के संरचनागत, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सौंदर्यशास्त्रीय पक्षों को महत्व देते हुए इसके बहुआयामी स्वरूप की पड़ताल करनी होगी।

हम जानते हैं कि बच्चे तीन वर्ष से पहले ही भाषा की मूल संरचना से अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं और बात संप्रेषित कर सकते हैं। तीन साल के बच्चे के संज्ञान के दायरे में आने वाले किसी भी विषय पर उससे बातचीत की जा सकती है। चाम्स्की ने कहा है कि एक बच्चा अंतर्निहित भाषायी क्षमता के साथ जन्म लेता है। यह बात आज भाषाविदों के लिए एक पहेली बनी हुई है कि इतना छोटा बच्चा कैसे, जटिल भाषिक तंत्र का विकास कर लेता है, लेकिन इस बात से यह महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है कि पर्याप्त अवसर और माहौल मिले तो बच्चे आसानी से भाषा सीख लेते हैं।

इस बात को समझने के लिए हम इस अध्याय के प्रारंभ में दो अलग-अलग वातावरण और समाज में पल रहे बच्चों का उदाहरण लेंगे। भाषा किस प्रकार हमारे व्यक्तित्व, हमारी सोच और हमारे पूरे जीवन को प्रभावित करती है इसे समझने के लिए इस कहानी को समझने की कोशिश करते हैं —

यह कहानी भारत के दो परिवारों की है। एक परिवार दिल्ली में रहता है और उसके व्यवहार की भाषा अंग्रेज़ी है। दूसरा परिवार झारखंड के छोटानागपुर में रहता है और उसके व्यवहार की भाषा मुंडारी है। दोनों परिवारों में बच्चे का जन्म होता है। एक के कानों में दिन-रात अंग्रेज़ी भाषा के शब्द और उसकी वाक्यरचना गूँजती रहती है। दूसरे बच्चे को हमेशा मुंडारी के शब्द सुनाई पड़ते रहते हैं। धीरे-धीरे बच्चे बड़े होते हैं। मुंडारी परिवार का बच्चा एक साल की उम्र से ही खेतों, जंगलों और नदियों की यात्रा करने लगता है और उससे संबंधित शब्दावली से परिचित होने लगता है, दूसरी ओर अंग्रेज़ीभाषी परिवार के बच्चे का कार्टून चैनल, तरह-तरह के खिलौने, टी.वी., टैबलेट, लैपटॉप आदि के माध्यम से एक अलग संसार से परिचय होता जाता है। मुंडारीभाषी बच्चे को भाषा का केवल मौखिक रूप सुनाई देता है, कभी-कभार बिस्किट या किसी सामान के पैकेट के रूप में या किसी कैलेंडर के रूप में छपी सामग्री देखने को मिल जाती है जबकि अंग्रेज़ीभाषी बच्चे के चारों ओर सामानों के रैपर, पोस्टर, अखबार, पत्रिका, किताब, खिलौने, टी.वी. आदि के रूप में लिखित भाषा का एक भरा-पूरा संसार हर समय मौजूद रहता है। दोनों बच्चे चंचल प्रकृति के हैं और नयी बातों को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं और खूब सवाल पूछते रहते हैं। अंग्रेज़ीभाषी बच्चा तीन साल का होते-होते एक विद्यालय में जाने लगता

है जहाँ उसे शिक्षिका तरह-तरह के शैक्षिक खिलौनों, रंग, कागज़ आदि से जोड़ती हैं। मुंडारीभाषी बच्चा भी तरह-तरह के पेड़-पौधों, छोटे-बड़े जंतुओं और उनकी प्रकृति को जानने लगता है। कौन-सी बकरी सींग मारती है और कौन-सी बकरी दूध पिलाती है, इसे वह अच्छी तरह जानता है। वह यह भी जानता है कि एक पेड़ से गिरनेवाले लाल रंग के फल को खाना चाहिए और दूसरे पेड़ के लालवाले फल को छूना भी नहीं चाहिए। कुछ सालों बाद अंग्रेज़ीभाषी बच्चा बड़े स्कूल में जाता है, उसे उसी भाषा की किताबें मिलती हैं जिसको वह बचपन से सुनता-पढ़ता आया है। उसमें लिखी बहुत सारी बातों को वह पहले से ही जानता है, जैसे कि पेंग्विन के बारे में, अमेरिका के बारे में, कंप्यूटर के बारे में और विज्ञान के तरह-तरह के खेलों के बारे में। स्कूल में उसे वैसी ही बातें करनी होती हैं जैसी कि वह घर में किया करता था।

छह साल की उम्र में मुंडारीभाषी बच्चा भी स्कूल जाता है जहाँ शिक्षक हिंदी भाषा में पढ़ाते हैं परंतु उसे कुछ समझ में नहीं आता है, गुरुजी उसे अ, आ...क, ख, ग, घ... लिखा एक चार्ट पकड़ाते हैं जिसे वह पहली बार देखता है। यही नहीं वे उसे नमस्कार न करने के लिए डाँटते हैं जिसे वह पहली बार सुनता है, वह 'जोहार' जानता है परंतु यह नहीं जानता कि नमस्कार क्या होता है। उसे स्कूल की दुनिया बिलकुल अलग नज़र आती है जिसका उसके घर और जंगल से कोई संबंध नहीं जुड़ पाता। उसे यहाँ की भाषा और यहाँ की बातें सब कुछ बेगानी लगती हैं। माता-पिता की डाँट और दबाव के कारण वह स्कूल तो पहुँचता है परंतु उसे मज़ा नहीं आता। वह तेज़ गति से पेड़ पर चढ़ जाता है, चपलता के साथ पानी में डुबकी मारकर हाथों से मछली पकड़ लेता है परंतु स्कूल में उसकी सारी तेज़ी गायब हो जाती है।

अंग्रेज़ीभाषी बच्चे को स्कूल में वही भाषा और वही विषय मिलते हैं जिनको वह बचपन से सीखता आया है परंतु मुंडारी परिवार के बच्चे को केवल भाषा ही नहीं, विषय और उसके बिलकुल नए संदर्भों से भी जूझना पड़ता है। जैसे-तैसे मुंडारी बच्चा छठी कक्षा में पहुँच जाता है। यहाँ एक नयी मुसीबत शुरू होती है, उसे अंग्रेज़ी पढ़ने को कहा जाता है जो एकदम से अलग तरह की भाषा है। कुछ समय बाद वह राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा में बैठता है जिसके सवाल बिलकुल अलग तरह के होते हैं जिनका उसके बचपन के ज्ञान से, उसके परिवेश से कोई संबंध नहीं जुड़ता परंतु अंग्रेज़ीभाषी बच्चे को वह बहुत सहज लगता है, क्योंकि ज़्यादातर बातें वह स्कूल और घर में जान चुका होता है। अंग्रेज़ीभाषी बच्चे को सबकुछ अंग्रेज़ी में मिलता जाता है जबकि मुंडारीभाषी बच्चा जिसने सबकुछ मुंडारीभाषा में सीखा है उसे पहले अलग तरह की हिंदी और फिर ऐसी अंग्रेज़ी सीखने में बहुत ऊर्जा लगानी पड़ती है जिसका संबंध उसके पहले के ज्ञान से नहीं जुड़ता। वह नए विषयों और नयी संकल्पनाओं को समझने में सिर्फ़ भाषा के कारण असमर्थ हो जाता है।

धीरे-धीरे स्थिति यह बनती है कि एक बच्चा तीव्र बुद्धिवाला प्रतिभाशाली और टॉपर कहलाता है और दूसरे बच्चे को मंदबुद्धि, लापरवाह और कुतर्की की उपाधि मिलती है।

यह कहानी और आगे बढ़ सकती है जिसमें बड़ा होने के बाद वह व्यक्ति बहुत समझदार, विशिष्ट, देश-दुनिया की बातों का जानकार आदि-आदि कहा जाएगा जबकि दूसरे के बारे में कहा जाएगा कि वह तो एक सामान्य व्यक्ति है और उसे कुछ नहीं आता।

यह कहानी इस बात को पुष्ट करती है कि भाषा समाज में धीरे-धीरे कई तरह के अंतर पैदा करने का माध्यम बन जाती है, यह अंतर कभी वर्गभेद तो कभी अस्मिता या जेंडरभेद के रूप में दिखाई देता है। भाषा सिर्फ़ अभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं है, बल्कि हमारा पूरा जीवन भाषा से तय होता है। 4-5 वर्ष की उम्र तक एक बच्चा करीब 50,000 घंटे से ज़्यादा एक भाषा के माध्यम से संकल्पना विकसित करने पर खर्च कर चुका होता है। बाद में वह चाहे जितनी भाषा सीख ले परंतु किसी भाषा का व्यावहारिक उपयोग करना और उसमें सोचने और कल्पना करने की क्षमता विकसित करना दो अलग बातें हैं। शुरू की शिक्षा वास्तव में भाषा शिक्षा ही होती है। एक व्यक्ति का पूरा परिवेश (सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक) भाषा से तय होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हर समाज की एक संरचना होती है जिसमें कोई व्यक्ति ज्ञानी-अज्ञानी, बड़ा-छोटा, प्रभावी-अप्रभावी, स्त्री-पुरुष आदि बनता है। उसका यह बनना सामाजिक संरचना और उसके भीतर निहित सत्ता संबंध से तय होता है, जिसका सबसे बड़ा हिस्सा भाषा निर्मित करती है। यानी किसी एक भाषा के परिवेश में जाना किसी समाज की सत्ता-संरचना में

> *"कुछ ही दिन पहले प्राथमिक सेवारत अध्यापकों की एक कार्यशाला में चर्चा के दौरान एक अध्यापक ने कहा कि वह तो बस खेलने और खाने आते हैं और अधिकतर बच्चे मज़दूरों के होते हैं। मुझे यह सुनने में अटपटा अवश्य लगा परंतु मैंने संवाद को आगे बढ़ाते हुए चर्चा जारी रखी। तभी उन्होंने फिर कहा, "वह बड़े ही गंदे होते हैं और गंदी-गंदी गालियाँ निकालते हैं। ऐसे बच्चों के साथ हम अपने बच्चों को कैसे पढ़ा सकते हैं, फिर तो हमारे बच्चे भी वैसे ही हो जाएँगे।" ज़ाहिर है अध्यापक ने जो भी कहा वह उनकी व्यक्तिगत राय हो सकती है, परंतु उन्होंने जिस लहज़े और जिन उपमाओं के साथ कहा उसे एक समाजवादी और समानता पर चलने वाले समाज में उचित नहीं ठहराया जा सकता।"*
>
> *— एक अनुभव*

अपनी भूमिका को तय कर लेना भी है। जिस समूह के पास राजनीतिक-आर्थिक शक्ति होती है उसकी भाषा प्रभावी हो जाती है और वह सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों (विद्वता के स्तर, परीक्षा प्रणाली, सभ्यता आदि) को भी अपनी भाषा के अनुसार परिभाषित करता है। कहने को हम समाज को वर्ग, जाति, जेंडर आदि के आधार पर विभाजित करते हैं परंतु जो चीज़ सबसे ज़्यादा अंतर पैदा करती है वह भाषा है। इसीलिए भाषा और समाज के रिश्ते को समझना ज़्यादा ज़रूरी है।

आगे हम भाषा की इस सत्ता को समाज में वर्ग, सत्ता, अस्मिता और जेंडर के साथ रखकर समझने का प्रयास करेंगे, क्योंकि यही सत्ता में हिस्सेदारी, वरीयताक्रम आदि को निर्धारित करती है। खासतौर से वैश्वीकरण और सूचना क्रांति के बाद भाषा की सत्ता बहुत मज़बूत हुई है और एक भाषा के प्रयोक्ता सिर्फ़ भाषा के कारण आर्थिक, राजनीतिक एवं वैचारिक रूप से अत्यंत प्रभावी होते गए हैं। ज्ञान ही शक्ति है पर —

- कई कारणों से एक भाषा-विशेष में मौजूद ज्ञान को ही ज्ञान मानने की धारणा बलवती होती जा रही है।
- आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर कुछ भाषाएँ अपने ज्ञान को अधिकतम लोगों तक पहुँचा रही हैं वहीं कई समृद्ध भाषाएँ तकनीक के इस संघर्ष में पिछड़ती जा रही हैं।
- इस सबका परिणाम यह हो रहा है कि ज्ञान और अवसर की सबको समान सुविधा देने का वैश्विक सपना] बस सपना बनने को ही अभिशप्त होता जा रहा है।

1.1.1 भाषा और वर्ग

जब बच्चे स्कूल की रहस्यमयी दुनिया में कदम रखते हैं तो उनके दायरे में आने वाले शुरुआती शब्द उनके भाषायी और सामाजिक संस्कार बनाते हैं। यदि वे संस्कार किसी एक खास प्रभुत्व का प्रतिनिधित्व करें तो वह शब्द ऐसे राजनैतिक और सामाजिक संस्कारों का निर्माण करते हैं जिनकी उपयोगिता बेहद संदिग्ध होती है।

वर्गभेद या जातिभेद संबंधी भाषा का ऐसा ही रूप इतना रूढ़ हो चुका है कि वह कई बार अलगाव, विषमताओं और प्रभुत्ववादी धारणाओं का निर्माण करता है, वाक्-पटुता तथा शब्द जाल का आडंबर बहुत तीखा और कई मायनों में बहुत दु:खदायी होता है। उदाहरण स्वरूप-कपड़े धोने वाले व्यक्ति को उसके पारंपरिक नाम से बुलाने में कोई हर्ज नहीं है परंतु बुलाने के ढंग में अंतर हो सकता है अर्थात् भाषा का अलगाववादी प्रयोग उस व्यक्ति को चुभता है और दु:ख भी होता है।

जैसा कि ऊपर भी कहा गया कि भाषा का आडंबर और प्रभुत्ववादी स्वरूप बहुत तीखा और दु:खदायी होता है, क्योंकि कई बार ऐसे कृत्य और शब्द ठेस पहुँचाते हैं, जिससे

व्यक्ति तिरस्कृत और दु:खी होता है। कई ऐसी कही और अनकही दास्तान हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वर्ग की संस्कृति का फैलाव एक विशिष्ट भाषायी फैलाव से है, जिससे व्यक्तिगत अथवा मानसिक स्तर पर भी सघन चोट पहुँचती है। हम इसे एक कक्षा के उदाहरण से समझते हैं —

गतिविधि - 1

क्या आपको वर्ग के आधार पर भाषा प्रयोग में कोई अंतर दिखाई पड़ता है? अलग-अलग वर्ग के ऐसे पाँच उदाहरण जुटाइए।

कक्षा में अध्यापिका पंचायती राज से संबंधित पाठ पर चर्चा कर रही हैं तथा पंचायतों में आरक्षण के विषय में बच्चों को समझा रही हैं। उसी दौरान अध्यापिका ने अनुसूचित जाति और जनजाति के उम्मीदवारों को पंचायत में आरक्षण होने की बात कही। एक बच्चे ने अध्यापिका से पूछा, "मैडम ये आरक्षण क्या है?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अध्यापिका ने बताया कि कुल स्थानों में से कुछ स्थानों पर केवल इन्हीं जातियों के लोग चुनाव लड़ सकते हैं। प्रत्युत्तर में बच्चे ने एक और प्रश्न पूछा "मैडम ये कौन (अनुसूचित जाति और जनजाति) होते हैं?" तब अध्यापिका ने बिना किसी हिचकिचाहट के जवाब दिया कि "जो लोग गरीब और नीची कौम के होते हैं वहीं, ऐसे बच्चों को स्कूल से वर्दी, छात्रवृत्ति भी मिलती है ना, वही एससी/एसटी।"

अध्यापिका ने जो कुछ कहा, जिस प्रकार कहा गया शायद वह उस कक्षा में बैठे संबंधित जाति के उन छात्रों के लिए अत्यंत दु:खदायी ज़रूर होगा तथा उन बच्चों के लिए और भी ज़्यादा जिन्होंने अपनी समझ बिलकुल नए रूप में बनाई होगी।

इसके उलट कक्षा के हर बच्चे को ध्यान में रखते हुए। अध्यापिका को चाहिए था कि वह पंचायत में समुदायों के प्रतिनिधित्व के विषय पर चर्चा करतीं, जिससे स्थिति अधिक सकारात्मक रूप से स्पष्ट हो सकती थी।

इसीलिए आप पाएँगे कि अकसर कक्षायी प्रक्रिया में हम बच्चों को ऐसे बोलने और वैसे न बोलने की नसीहत देते रहते हैं, फिर कक्षा ही क्यों हम घर में भी बच्चों से ऐसी ही उम्मीद करते हैं। अर्थात् हम बच्चों से ऐसी अपेक्षाएँ रखते हैं कि वे एक शालीन और स्वच्छ भाषा (मानक) बोलें परंतु हम यह कभी समझ ही नहीं पाते कि हमारे बच्चे या हम उसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो अकसर हमें पारिवेशिक संदर्भों से मिलती है। और हम यह भी भूल जाते हैं कि बच्चे की मातृभाषा/बोली हमें उसके और उसको हमारे नज़दीक लाती है और वे उसी भाषा में अपने आप को सहज महसूस करते हैं। जब बच्चे अपनी भाषा बोलते हैं तो हम समझते हैं कि उनकी भाषा दूसरे दर्जे की है और फिर उससे धीरे-धीरे वर्गभेद का अहसास उभरने लगता है।

गतिविधि - 2

साहित्य को ध्यान में रखकर भाषा के ऐसे उदाहरण ढूँढें और चर्चा करें जो वर्गभेद से संबंधित हैं।

वास्तव में यह समझना कठिन नहीं हो सकता है कि शालाओं में पढ़ने वाले बच्चे किस-किस प्रकार की भाषा टीका-टिप्पणियों से दो-चार हो रहे होंगे । अध्यापकों को चाहिए कि वे समझें कि भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषिक देश है और वे जिस विद्यालय में पढ़ाते हैं वह एक भिन्न-भिन्न संस्कृति वाला स्कूल है, जहाँ पर बच्चों के खाने, बैठने, चलने, बोलने, समझने और बात करने की भाषा, आदतें एक जैसी नहीं हो सकतीं और अधिक व्यापक रूप से तब, जब समाज के सबसे निचले तबके के बच्चे हैं, जो हाशिए पर जीवन-यापन कर रहे हैं, जिन्हें दो समय का खाना जुटाने के लिए कड़ी मशक्कत करनी पड़ती है तथा जिनके पास रात गुज़ारने के लिए बसेरा भी नहीं होता है । ये बातें इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि इसी तरह धीरे-धीरे एक वातावरण निर्मित होने लगता है जो भाषा को समाज में वर्गभेद और द्वंद्व का कारण बनाता है ।

सामाजिक वर्गविभेद **सामाजिक प्रतिष्ठा** के आधार पर भी बनते हैं इनको समाज ही बनाता है । सत्ता, धन, प्रतिष्ठा, जाति, व्यवसाय, संस्कृति, समाज और आर्थिक कारणों से ये वर्गभेद बनते हैं और ये वर्गभेद किसी भाषा-विशेष को सत्तावान भी बनाते हैं ।

1.1.2 भाषा और सत्ता

भाषा और सत्ता के बीच का संबंध अत्यंत जटिल सामाजिक संबंधों में से एक है। भाषा और सत्ता के रिश्तों को दो तरीकों से समझा जा सकता है । **पहला** है भाषा की स्वयं की सत्ता । यानी भाषा में निहित वह क्षमता जिसके द्वारा सभी इंसान अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं । भाषा की इसी क्षमता के द्वारा लोग अपनी सोच-विचार, भावना, इच्छा आदि को दूसरों तक संप्रेषित करते हैं । इससे उनकी अनेक ज़रूरतों का समाधान हो जाता है। पहला तरीका हमें भाषा की इस क्षमता को समझने का अवसर देता है कि भाषा कैसे शक्तिशाली उपकरण मात्र बनकर रह जाती है । **दूसरा** है भाषा को राजनीति, धर्म और बाज़ार/व्यापार आदि के संदर्भ में समझना । भाषा की सत्ता के संदर्भ में भाषा के इसी रूप को समझेंगे ।

संप्रेषणीयता की दृष्टि से कोई भी भाषा असमर्थ नहीं होती है, लेकिन जब किसी भाषा को राजनैतिक समर्थन प्राप्त हो जाता है तो वह अन्य भाषाओं की तुलना में सत्तावान भाषा बना दी जाती है । आइए एक उदाहरण पर विचार करें —

भारत के संविधान के अनुसार भारत में केंद्र सरकार की राजभाषा देवनागरी में लिखी हुई हिंदी होगी । भारत भाषाओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध देश है । यहाँ लगभग 652

भाषाओं का पाया जाना इस बात का सबूत है, लेकिन जब तमाम भाषाओं में से हिंदी को प्रमुख दर्जा देने की बात उठी तो बहुत तरह के खतरे भी सामने आए।

'राजकाज की भाषा के रूप में हिंदी को चुन लिया गया तो उसे एक सत्ता हासिल हो गई' जो अन्य भाषाओं को हासिल नहीं हुई। साथ ही संविधान में जब यह कह दिया गया कि हिंदी के होते हुए भी अंग्रेज़ी तबतक राजभाषा का स्थान लिए रहेगी जबतक विशेष राजनैतिक प्रावधान द्वारा हिंदी को स्वतंत्र रूप से राजभाषा का दर्जा न मिल जाए। ऐसे में अंग्रेज़ी, हिंदी से भी सत्तावान स्थिति में बिठा दी जाती है।

सामान्यत: यह देखा गया है कि जिन वर्गों का उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होता है ऐसे वर्गों की भाषा विशिष्ट दर्जा हासिल कर लेती है। उत्पादन की दुनिया से जुड़ने के लिए लोगों को उस भाषा को सीखना पड़ता है, जिनको राजनैतिक शक्ति हासिल है वे अपनी भाषा के वर्चस्व को दो तरीकों से स्थापित करते हैं। एक तरीका है- कमज़ोर की भाषा को असमर्थ बताना तथा दूसरा तरीका है अपनी भाषा को ऐतिहासिक बताना। इससे संबंधित उदाहरण हमें 'भारतीय शिक्षा के इतिहास' से मिलता है। 2 फ़रवरी, 1835 को मैकॉले द्वारा लिखे गए, 'मिनट्स' में इस बात की चर्चा की गयी है कि भारतीय उपनिवेश में शिक्षा का माध्यम किस भाषा को रखा जाए। मैकॉले ने तर्क दिया है कि 'संस्कृत और अरबी भाषाओं के माध्यम से साहित्य और विज्ञान का ज्ञान नहीं दिया जा सकता'। उनका कहना है कि 'यूरोप की बहुत थोड़ी-सी किताबें भी भारत और अरब के समस्त साहित्य से अधिक मूल्यवान हैं'। इन तर्कों तथा ब्रिटिश राजनैतिक शक्ति के समर्थन के कारण अंग्रेज़ी को भारत में शिक्षा का माध्यम बना दिया गया। मैकाले ने भी कहा है कि उस समय भारत में जो भाषाएँ प्रचलित थीं उनमें से किसी भी भाषा में आधुनिक ज्ञान की पढ़ाई-लिखाई सक्षम नहीं थी? यह भाषाओं की सामर्थ्य का मामला है या राजनैतिक शक्ति के सहयोग का? (देखिए– मैकॉले मिनट्स, बिंदु 10[1]) भाषा के संदर्भ में मैकॉले ने एक बात और कही। उन्होंने कहा कि *भारत में तो बोलियाँ बोली जाती हैं। भाषा तो यहाँ है ही नहीं।* (देखिए– मैकॉले मिनट्स, बिंदु 8[2])

किसी भाषा को भाषा और किसी भाषा को बोली कहने का उनके पास क्या आधार था? क्या ये आधार उस राजनैतिक शक्ति से स्वतंत्र थे जिसका सहारा लेकर वे ऐसा कह रहे थे? क्या हम आज भी अपनी ही भाषाओं के संदर्भ में भाषा और बोली के दो खंडों में नहीं बँटे हुए हैं? यदि ऐसा है तो हम राजनैतिक शक्ति के अतिरिक्त किसके आधार पर इस प्रकार के बँटवारे को तर्कसंगत मानते हैं?

1 (Source: http://www.mssu.edu/projectsouthasia/history/primarydocs/education/Macaulay001.htm)

2 Source:http://www.mssu.edu/projectsouthasia/history/primarydocs/education/Macaulay001.htm

"इस वास्तविकता के बावजूद कि अमूर्त तंत्र या उपतंत्र के रूप में सभी भाषाएँ एकसमान हैं, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान जिस जटिल तरीके से भाषा के साथ अंत:क्रिया करते हैं, वे कुछ भाषाओं को अपेक्षाकृत ज़्यादा सम्मानजनक दर्जा दे जाते हैं और इस तरह सामाजिक-राजनीतिक सत्ता से उनका जुड़ाव होता है। प्राय: अभिजात्य वर्ग के द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा ही सत्तावान होती है और मानक का भी दर्जा प्राप्त किए हुए रहती है। सभी व्याकरण, शब्दकोश और अन्य संदर्भ-सामग्री इसी 'मानक' भाषा को आधार मानकर चलते हैं। यदि भाषा को विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो भाषाओं के बीच कोई अंतर नहीं होता, चाहे वह 'मानक' भाषा हो, शुद्ध भाषा हो, स्थानीय बोली आदि हो। वैसे भी भाषा को आर्मी और नेवी की बोली *(ए डायलेक्ट विद एन आर्मी एंड नेवी)* के रूप में परिभाषित किया गया है। वे जिनके पास सत्ता होती है, सुविधावंचित लोगों की भाषाओं के बारे में रूढ़िवादी धारणाएँ बना लेते हैं। जैसा कि चैंबर्स (2003 : 277) इंगित करती है, ''बोलियों पर आधारित रूढ़ियाँ उतनी ही घातक हैं जितनी त्वचा, रंग, धर्म या ऐसे ही किसी अन्य अप्रमाणित लक्षण पर आधारित रूढ़ियाँ, और उनका भी परिणाम एक जैसा होता है।''

किसी भी अन्य कारकों से महत्वपूर्ण वे सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक कारक ही हैं जो लोगों को शिक्षा, प्रशासन, न्यायपालिका, मास-मीडिया (जनसंचार) में उपयोग करने के लिए राष्ट्रीय, राजकीय और सह राजकीय आदि भाषाएँ निर्धारित करने की ओर अग्रसर होते हैं। सैद्धांतिक स्तर पर किसी भी भाषा में कुछ भी करना संभव है यहाँ तक कि 'मानविकी', 'समाज विज्ञान' व 'विज्ञान' में उच्चतर शोधों में भी। इसलिए यह बात साफ़ है कि हाशिए पर अवस्थित या दबे-कुचले तबके की भाषा तबतक मज़बूत नहीं हो सकती जबतक कि हम उनके समर्थन में ऐसी संरचनात्मक व्यवस्था न करें जो विविध संदर्भों में उनके प्रयुक्त होने की गारंटी दे सके। यह भी ध्यान रखने वाली बात है कि 'मानक' एक निश्चित स्थिरांक नहीं है। सत्ता संबंधों के बदलते समीकरण में 'मानक' का भी चेहरा बदलता रहता है।"

— भारतीय भाषाओं का शिक्षण, 2009:5-6

अब तक हम समझ गए हैं कि भाषा का उपयोग व्यापक विचार-विमर्श, राज-काज, बाज़ार आदि के लिए किया जाना केवल भाषा की स्वयं की क्षमता पर निर्भर न रहकर राजनैतिक सत्ता के समर्थन का मोहताज भी होता है। इसी रूप में भाषा और सत्ता के अंत:संबंधों को समझना अपेक्षित है। भाषा और सत्ता के मध्य अंत:संबंध के कारण अकसर इस तरह के स्वर भी उठते रहे हैं जिनके तहत एक क्षेत्र विशेष की भाषा को संविधान में शामिल कर देने की कोशिश की जाती है। यही संबंध कभी-कभी इस तरह के सवाल भी उठा रहे हैं कि पिछड़े क्षेत्रों की भाषा जिनकी लिपियाँ भी विकसित न हों, ऐसी भाषा का विकास बाधित होता है, यहाँ तक कि उनकी अपनी लिपि विकसित करने संबंधी कोशिश भी न के बराबर हुई है। साथ ही उनके 'अमूल्य साहित्यिक धरोहरों' को सहेजने की कोशिशें भी कम हुई हैं। भाषा की यह सत्ता वर्गभेद से भी बनती है और अलग-अलग अस्मिता के संकट से भी।

स्कैंडेनेवियाई देशों के लोग अंग्रेज़ी जानते हैं, लेकिन वे इसलिए अंग्रेज़ी नहीं सीखते कि अपने देश के अंदर इसे आपसी संप्रेषण का साधन बना सकें। वे इसलिए भी अंग्रेज़ी नहीं सीखते जिससे अंग्रेज़ी उनकी खुद की राष्ट्रीय संस्कृतियों का वाहक बने अथवा एक ऐसा साधन बने जिसके ज़रिये विदेशी संस्कृति उन पर थोप दी जाए।

वे अंग्रेज़ी इसलिए सीखते हैं ताकि अंग्रेज़ी के साथ या अंग्रेज़ीभाषी लोगों के साथ पारस्परिक क्रिया में मदद मिल सके। व्यापार, वाणिज्य, पर्यटन तथा विदेशों के साथ संबंधों को विकसित करने में सहूलियत हो। उनके लिए अंग्रेज़ी बाहर की दुनिया के साथ संप्रेषण का साधन मात्र है। यही हाल जापानियों, पश्चिम जर्मनी के लोगों और अनेक देशों के लोगों का है। इन देशों में अंग्रेज़ी ने कभी उनकी खुद की भाषा का स्थान नहीं लिया।

— थ्योंगो, 1999: 1-2

1.1.3 भाषा और अस्मिता

अस्मिता 'अस्मि' से बना शब्द है जिससे अपने 'मैं' का, अपनी विशेषता का बोध होता है और इस बोध में भाषा अहम भूमिका निभाती है। देश की भिन्न भाषाओं के अस्तित्व संबंधी मुद्दे, भाषा की हैसियत से जुड़े सवाल जिनमें भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक प्रभाव तथा भाषा की गतिशीलता, भाषायी वर्चस्व, भाषा और उसके साथ जुड़ी हुई अस्मिता तथा भाषा का राजनीतिकरण, भाषा को एक ऐसा आधार प्रदान करते

हैं जो सतत् परिवर्तनीय और बहुआयामी हो सकता है। इतना ही नहीं इससे इतर भी भाषा के साथ जुड़ें हुए ऐसे विषय हैं जैसे- भाषा के ध्रुवीकरण, वैश्वीकरण तथा भाषा का उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद एवं नव उदारवाद के साथ रिश्ता, जो हमें भाषा को एक नए ढंग से समझने के लिए प्रेरणा देते रहे हैं।

भाषा और अस्मिता के बीच संबंधों को समझने के लिए एक गतिविधि को आज़माया जा सकता है। विद्यार्थियों के समूह से स्वयं के बारे में एक अनुच्छेद लिखने को कहें। उनके अनुच्छेदों का इस दृष्टि से विश्लेषण करें ताकि उन बातों और ब्योरों को रेखांकित किया जा सके जिनके साथ उन्होंने अपने आप को जोड़ा है। ऐसी बातें इस प्रकार हो सकती हैं – स्वयं का नाम/ परिजनों का नाम तथा उनसे संबंध/ स्वयं की सामाजिक-आर्थिक/ शैक्षिक योग्यता/ रुचियाँ/ भाषाओं में प्रवीणता/ व्यक्तिगत गुण/जेंडर, कद, शारीरिक बनावट/जाति, धर्म/राज्य, प्रांत/मोहल्ला आदि।

उपर्युक्त बिंदु विद्यार्थियों की पहचान को बताने वाले बिंदु हैं। अब अगर इनमें पहचान के उन बिंदुओं को अलग करें जो सीधे तौर पर भाषा से संबंधित नहीं हैं तो हम पाएँगे कि 'लिंग' को छोड़कर अन्य कोई ऐसा बिंदु नहीं है जिसका किसी-न-किसी रूप और मात्रा में भाषा के साथ संबंध न हो। 'लिंग' किसी व्यक्ति की प्राकृतिक पहचान होने के कारण स्थायी होता है। यानी किसी का 'लड़का' या 'लड़की' होना प्राकृतिक कारणों पर निर्भर करता है, लेकिन जब 'लिंग' को जेंडर में बदला जाता है तो 'जेंडर' का संबंध भाषा से जुड़ जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि व्यक्ति की पहचान बहुत कुछ उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा से पहचानी जाती है।

इसी तरह यदि किसी हिंदीभाषी राज्य के व्यक्ति से बात की जाय तो कुछ समय बाद हम यह कह पाने की स्थिति में हो सकते हैं कि वह व्यक्ति किस राज्य का है। अगर हमें हिंदीभाषी प्रांतों के बारे में अच्छी जानकारी है तो हम यह भी बता सकते हैं कि वह किस ज़िले का है, क्योंकि वाक्य संरचना एक-सी होने पर भी हिंदीभाषी लोगों की ध्वनि संरचनाओं में अंतर होता है। ध्वनि-संरचना की विविधताओं की समझ के आधार पर हम उस व्यक्ति के बारे में कुछ और भी जान सकते हैं। ऐसा इसलिए भी होता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार को अपने उस समुदाय विशेष के संदर्भ में ढालता है, जिससे वह अपनी नज़दीकी पाता है। यह एक सहज पहचान है जो व्यक्ति और समाज के विकास के लिए है, जबतक कि हम इसे लचीलेपन के साथ देखते हैं, पर यही समुदाय कभी-कभी विशेष अल्पसंख्यकों आदि के बीच संघर्ष का कारण भी बन जाते हैं। इसलिए अध्यापक को अपने विद्यार्थी की भाषा को संवेदनशील तरीके से समझकर उसे हिंदी या किसी भाषा के नियमों की पहचान करानी होगी, क्योंकि 'भाषा विश्वशांति का सबसे सशक्त माध्यम है। किसी का नाम जो स्वयं में एक शब्द भी है, उसकी सामूहिक पहचान को बनाने में मदद

करता है, हालाँकि नाम तथा किसी की सामूहिक पहचान के बीच स्थायी संबंध नहीं होता, लेकिन फिर भी यह एक समाजशास्त्रीय हकीकत है।

जब हम किसी व्यक्ति के लिए कहते हैं कि 'वह बहुत तार्किक है'–तो हम उसकी और उसकी भाषा की पहचान को ही रेखांकित कर रहे होते हैं। 'तर्क' भाषा के अनेक कामों में से एक है। यदि कोई व्यक्ति भाषा से 'तर्क' का काम लेता है और ऐसा वह अकसर करता है तो 'तार्किक' होना उसकी पहचान का हिस्सा बन जाता है। प्रो. अमत्यर् सेन ने इसी आधार पर अपनी एक बहुचर्चित पुस्तक का नाम *'द ऑर्ग्यूमेंटेटिव इंडियन'* रखा था। यह पुस्तक अस्मिता की इसी पहचान को बताने वाली है।

गतिविधि - 3

कई बार नाम भी हमें किसी प्रांत या समुदाय विशेष से जोड़ देता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद द्वारा लिखे गए उपन्यास 'गोदान' के बहुचर्चित पात्र होरी और गोबर पूर्वी प्रदेश से जुड़े किसी आम भारतीय और गरीब तबके से आए व्यक्ति का ही आभास देते हैं। नाम और वर्ग से जुड़े ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे आस-पास हैं। इन पर कक्षा में चर्चा कीजिए कि ऐसा क्यों है?

उपर्युक्त दो उदाहरणों से पता चलता है कि भाषा और अस्मिता का संबंध न्यूनतम दो स्तरों पर तो है ही। एक है व्यक्ति की सामूहिक भाषायी पहचान, जैसे–हरियाणवी, गढ़वाली, असमिया, बिहारी आदि। दूसरी है व्यक्ति द्वारा भाषा से लिए जाने वाले कामों के आधार पर बनी व्यक्ति की पहचान, जैसे–'वह तार्किक है', 'वह बड़बोला है', 'वह अंधविश्वासी है, वह मृदुभाषी और सहज है' आदि। बच्चे की भाषा और अस्मिता के संबंध को यदि हम देखें तो यह कहना ज़रूरी है कि बच्चे को अगर उसकी मातृभाषा में बोलने का अधिकार व स्वीकृति नहीं मिल पा रही है तो कहीं-न-कहीं इससे उसकी अस्मिता भी खंडित होती है। उसकी इस खंडित अस्मिता के साथ हम एक मुकम्मल और अखंड देश का सपना कैसे देख सकेंगे? इसीलिए भाषा और अस्मिता के इस संबंध पर हमें न केवल ठहर कर सोचना होगा, बल्कि कक्षा का समन्वयन इस प्रकार करना होगा कि हर बच्चा अपनी बात कहने को उत्सुक हो। प्रयास करने पर हम भाषा और अस्मिता के बीच कुछ और संबंधों का पता लगा सकते हैं। भाषा और जेंडर का मुद्दा भी ऐसा ही है।

1.1.4 भाषा और जेंडर

आइए आपको एक कक्षा में ले चलते हैं — अध्यापिका बहुत ही मुस्तैदी से सभी विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किए हुई हैं।

वह उनको किसी गतिविधि के संबंध में निर्देश दे रही हैं।

गतिविधि - 4

भाषायी अस्मिता से जुड़े बिंदु आपके आस-पास दिखाई पड़ते हैं या कक्षा में पाते हैं तो उन्हें दर्ज करें और एक रिपोर्ट तैयार करें, इस तर्क के साथ कि उसे आप भाषायी अस्मिता क्यों मानेंगे।

"मैं कुछ शब्द बोल रही हूँ। इन शब्दों को सुनते ही यकायक आपके मन-मस्तिष्क में स्त्री या पुरुष जिसकी भी छवि कौंधे, आप बोल दें।"

अध्यापिका ने गतिविधि शुरू करने से पहले विद्यार्थियों को ध्यान दिलाना ज़रूरी समझा कि 'शब्दों को सुनकर किसी प्रकार के सोच-विचार, चिंतन-मनन की आवश्यकता नहीं, बस शब्द के प्रति जो भी बिंब तुरंत बने वह प्रस्तुत कर देना होगा'।

संचालिका ने सभी प्रतिभागियों को अपनी सहभागिता दर्ज करने का अनुरोध भी किया। सभी अध्यापक चौकन्ने हो चले थे। कुछ ने डायरी-पेन भी खोल लिए थे। शब्द थे–

जाँबाज़/ समझदार/ भावुक/ व्यवसायी/ स्नेही/ आभूषणों से प्रेम/ आक्रमक/ नरमदिल/ रोबीला व्यक्तित्व/ अनुशासनप्रिय/ पाशविक प्रवृत्ति/ कला के प्रति रुझान/ सौम्य/ मनमोहन/ पवित्रता/ सुघड़ एवं व्यवस्थित/ नियंत्रक/ अच्छी नोटिंग (सरकारी काम-काज में टीपें दर्ज करना 'नोटिंग' कहलाता है।)/ चापलूस/ मधुरभाषी/ आत्मनिर्भर/ भरोसेमंद/ संयमी व्यवहार/ ईर्ष्यालु/ नपीतुली बात करना/ जोखिम उठाने वाला स्वभाव/ मददगार/ ज़िला कलक्टर/ खुशमिज़ाज/ घर का बंदोबस्त/ शर्मीलापन/ बाहर का बंदोबस्त/ दब्बू

प्रतिभागियों के उत्तर क्या होंगे यह बाद में बताते हैं, पहले आप ही बताएँ कि विशेषण सरीखे लगने वाले इन शब्दों/ वाक्यांशों के आगे यदि आपको स्त्री या पुरुष लगाना हो तो आपके उत्तर क्या होंगे? अपने सहपाठी और स्वयं से बिना किसी प्रकार का विचार विमर्श किए ज़रा इन शब्दों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करें।

तनिक इस पर भी विचार करें कि आखिर आपकी कक्षा में इस तरह की गतिविधि क्यों करवाई जा रही होगी —

- क्या मानवीय स्वभाव से जुड़े विशेषणों पर चर्चा हो रही है?
- क्या अध्यापक/ अध्यापिका के चारित्रिक अथवा स्वभावगत विशेषताओं पर बात चल रही है?
- क्या विद्यार्थियों की स्वभावगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा रहा है?

गतिविधि - 5

कक्षा 6-12 की भाषाओं से इतर किसी भी विषय की पाठ्यपुस्तक का जेंडर के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण कीजिए। विश्लेषण के आधार निम्नलिखित हो सकते हैं–

- संबोधन
- उदाहरण
- चित्र
- गतिविधि आदि
- इन सबका संतुलित प्रयोग

◈ यदि इनमें से कुछ भी नहीं तो आखिर क्या विषय (टॉपिक) रहा होगा इस सत्र का?

आपका अनुमान एकदम सही है, क्योंकि इतना तो आप जान ही गए होंगे कि यहाँ व्याकरण जनित जेंडर/ लिंग (स्त्रीलिंग/ पुल्लिंग) की बात नहीं हो रही है। यहाँ भाषा और जेंडर के पारस्परिक संबंधों पर समझ बनाने की कोशिश हो रही है। जेंडर भूमिकाएँ भाषा के स्वरूप को प्रभावित करती हैं। भाषा सीखने की प्रक्रिया हमें जेंडर से जुड़ी सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं का परिचय देती है।

भाषा का विचारों और व्यक्तिगत पहचान से गहरा संबंध है। दरअसल भाषा व्यक्तिगत अस्मिता से इतनी जुड़ी हुई है कि अध्यापक का भाषायी व्यवहार यदि जेंडर भेद के प्रति संवेदनशील नहीं है तो लड़कियों को सत्ता की वृहद संरचना में शामिल करने के लिए प्रोत्साहित करना तो दूर की बात है, उन्हें अपनी बात कहने के लिए भी तैयार नहीं किया जा सकता।

उक्त परिप्रेक्ष्य में भाषा और जेंडर के रिश्ते को समझना विद्यार्थी और अध्यापकों के लिए ज़रूरी होगा। जेंडर भेदभाव का सबसे व्यापक रूप है, क्योंकि यह सभी वर्गों, जातियों और समुदायों में शिक्षा, रोज़गारपरक अवसरों, कार्यक्षेत्रों, घरेलू अधिकारों और यहाँ तक कि भाषायी संस्कारों में भी देखने को मिलता है। जेंडर के संदर्भ में भाषायी संस्कारों एवं स्वरूप को भेद के एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में पहचाने जाने की ज़रूरत है। साथ ही वास्तविक शिक्षागत ढाँचे की सभी प्रक्रियाओं में इसे विमर्श का मुद्दा बनाना ज़रूरी है।

एक ओर तो स्कूलों में नामांकन में वृद्धि हो रही है, लड़के-लड़कियाँ दोनों ही प्रोत्साहित हैं विद्यालयों में प्रवेश लेने के लिए। दूसरी ओर विद्यालय में चल रही शिक्षण प्रक्रियाएँ और अध्यापकों द्वारा बोली जा रही भाषा कुछ इस प्रकार की सीमाएँ तय कर देती है कि लड़के और लड़कियों में जेंडर भेद स्वयं आकार ले लेता है। उनमें 'असमान समाजीकरण' से पैदा होने वाले विभेद से उबरने की क्षमता का विकास होने के स्थान पर दमनकारी या निराशावादी प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगती हैं। 'पुरुषत्व' और 'नारीत्व' की

पारंपरिक मान्यताओं को पुनर्स्थापित ही करती हैं ये शैक्षणिक भाषायी शैली।

भाषा का स्वरूप कई बार यह रेखांकित करता है, भिन्न जेंडर के कारण लड़कियाँ कैसे एक समूह से हटकर देखी जाती हैं, यही स्वरूप विजातीय संदर्भ भी पैदा करता है जैसे– वर्ग, जाति, धर्म के साथ-साथ ग्रामीण व शहरी विभाजन। सिर्फ़ लड़कियाँ ही विभेदीकरण की मार को नहीं झेलतीं, बल्कि लड़के भी पितृसत्तात्मक सोच से बोझिल भाषा से आक्रांत हैं जो उनसे विशिष्ट प्रकार के व्यवहार और उन रूढ़ भूमिकाओं का लबादा ओढ़े रखने की माँग करती है जो उन्हें इससे ऊपर नहीं उठने दे रही। जैसे —

गतिविधि - 6

वर्ष 2003 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा निर्मित सामाजिक अध्ययन की पुस्तक का पाठ कुछ इस तरह से शुरू होता है–

"हम भारत की नागरिक हैं। ..."

पुस्तक विद्यालयों में पहुँचे अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि अध्यापकों के फोन व पत्र आने लगे कि पुस्तक के हर पाठ की अमूमन हर वाक्य संरचना से 'स्त्रीलिंग' का बोध हो रहा है। 'पुल्लिंग' कहीं नज़र नहीं आ रहा। ऐसा क्यों?

इन सवालों पर चर्चा करें।

आप इस प्रश्न के उत्तर में क्या कहेंगे?

- लड़कियों की तरह से क्या गुटरगूँ लगा रखी है? जाता क्यों नहीं खेल के मैदान में।
- एक नंबर के लिए लड़कियों की तरह रो क्यों रहा है?
- ये साफ़-सुथरी लिखावट तुम्हारी है? ज़रूर किसी लड़की से लिखवाया होगा?
- इन वाक्यों में लड़के-लड़कियों के प्रति एक विशेष प्रकार के समाजीकरण की अनुगूँजें सुनी जा सकती हैं।

भारत की बहुसांस्कृतिक छवियाँ भाषा, धर्म, जाति आदि में प्रतिबिंबित होती हैं। ये सभी बहुत हद तक अस्मिता निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और किसी-न-किसी रूप में जीवनयापन से जुड़े संसाधनों तक पहुँच का निर्धारण भी करते हैं या फिर इस तरह कहिए कि आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक संसाधनों के वितरण/पहुँच हेतु एक व्यवस्थित वरीयता क्रम तय कर देते हैं। इस वरीयता क्रम में महिलाएँ कहीं बहुत पीछे छूट जाती हैं। धर्म, जाति आदि के साथ-साथ भाषा भी उन्हें पिछड़ेपन के क्रम में सबसे निचले पायदान पर स्थापित करती है। यहाँ तक कि उन्हें अशोभनीय शब्दों से भी संबोधित किया जाता है।

गतिविधि - 7

'जैसे केवट बिनु नैया चलत है
तैसे बाबुल बिनु बेटी
जैसे पीपर केर पात डोलतु है
वैसे पुरुष बिनु नारी ।'

'बारह मास हम बालू में रहनीं
पिड़िया के गोड़तारी
ए पिड़िया मैं सेईले तोहके
अपना के माँगीले अवध सिन्होरवा
आ भउजी के पूत।'

'असों के कतिकवा ए तिरिया
तहु घर चलि जाउ
अगिला कतिकवा ए तिरिया
तोरा बेटा होइ जाइ ।'

- इन लोकगीतों की भाषा स्त्री की वाणी को मुखिरत कर रही है या फिर पुरुष की इच्छाओं को?
- इन लोकगीतों में स्थापित प्रतिमानों के संदर्भ में किस तरह के प्रश्न आपके मानस में अकुला रहे हैं?
- इन गीतों की भाषा की बुनावट में किस तरह के अर्थ छिपे हैं?
- स्त्री अपना भाषायी जगत खुद क्यों नहीं रच सकी, यदि रच भी पाई तो किसका वर्चस्व प्रतिबिंबित होता है?

लड़कियाँ पैदा होने से लेकर वयस्क होने तक जिस तरह के शब्दों से जूझती हैं, उनके रूपक उनकी अस्मिता निर्माण में किस तरह की मदद करते हैं यह भाषा के संदर्भ में बहुत बड़ा सवाल है। इस सवाल को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर देखा जाना ज़रूरी है । लोक साहित्य, लोकगीत या फिर फ़िल्मों में गाए जानेवाले गीत, इन सबके ज़रिये भाषा का संसार महिलाओं की किस तरह की छवि प्रस्तुत करता है/ गढ़ता है ?

उदाहरण के लिए—

ओ गोल-मोल कटोरी
तू है गन्ने की टोरी।

ऐसे बहुत से रूपक सुने-बोले जाते हैं। प्रश्न यह है कि स्त्री का कौन सा रूप पुरुष यहाँ देख रहा है? इन रूपकों में स्त्री को जतलाते हैं कि तुम्हारे कर्म, ज्ञान आदि तुम्हारी शक्ति नहीं हैं । तुम्हारी शक्ति तो तुम्हारा दैहिक आकर्षण ही है।

सुराहीदार गर्दन, हिरनी जैसी आँखें, सिर से पैर तक स्त्रियों की देह के लिए सैकड़ों रूपक प्रस्तुत हैं। अभयारण्य में हिरन कमज़ोरी की पराकाष्ठा का उदाहरण है । वही कमज़ोरी, कातरता और सहमेपन से भरी भाषा स्त्री की अस्मिता का निर्माण करती है ।

डरेपन के भाव वाली यह भाषा प्रयुक्ति क्या स्त्री में उन्मुक्त होकर जीने की इच्छा पैदा करेगी? या फिर जानबूझकर उसके इस रूप का निर्धारण कुछ इसलिए भी कर रही है कि डर कर जीना उसकी नियति बन जाए।

'नागिन जैसी चाल', 'मंथरा-सी मति', घृणा से घिरी भाषा वाले संसार में लड़की कैसे अपनी पहचान के लिए कुछ सोच सकती है, यह भाषा का बहुत बड़ा सवाल है। भाषायी व्यवस्था के भेदभाव युक्त सुराग काफ़ी असरकारक तरीके से स्त्रियों द्वारा जज़्ब कर लिए जाते हैं – "मेरा क्या, मेरे लिए तो इनकी जूठन ही भतेरी। इनकी जान को तो सौ काम हैं दुनिया जहान के, फिर दूध-घी खाके भला क्या करना।"

"ठलुआ है तो का भया, है तो मरद जात। गुस्सा में एक-दो हाथ चला भी दयो तो कोनो आफत आन परी।"

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भाषा और जेंडर को लेकर बहुत काम हुए हैं।

शर्जर अपने शोध कार्य के ज़रिये जहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि 'स्त्रियों की भाषा किस तरह सत्ता और संसाधन विहीनता का बोझ ढोती चलती है तो यह भी बताते हैं कि सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ एवं दंडविधान किस तरह उनकी भाषा को आकार-प्रकार देते हैं। जैसे– मंत्रोच्चार और राजनीति से जुड़े वक्तव्य अधिकतर पुरुषों के कार्यक्षेत्र से परे नहीं जाते तो लोरियाँ, रुदन प्रलाप और विरह वेदना के गीत स्त्रियों की स्वभावगत इबारतों का हिस्सा कहे जाते हैं। शास्त्र सम्मत भाषा उन्हें जताती है कि उनकी क्षमताएँ कोमल, ललित और भावुक होने में ही निहित हैं।

गतिविधि - 8

- गुप्ता गर्ग सुंदर मांगलिक लड़का 27, 5'.7/ B.Sc,B.Ed टीचर/अपना उच्च शिक्षा इंस्टीट्यूट दिल्ली हेतु PQ **सुंदर गोरी पतली वधू** चाहिए।
- चौहान वत्स (OBC 1985/5'.4") S.B.T.C. शिक्षक हेतु **सजातीय इंपलाई सुशिक्षित सुंदर वधू** चाहिए।
- व्याहुत कलवार मांगलिक 31/5'6"MBA उच्च व्यवसायी (पेंट्स + हार्डवेयर) पटना में अपना मकान एवं व्यापार हेतु **गोरी, सुंदर, शिक्षित, सुयोग्य, लंबी, स्वजातीय घरेलू वधू** चाहिए।

इस तरह के विज्ञापन विशेष रूप से जेंडर तथा कुछ बिंदुओं पर जाति, वर्ग संबंधी भेद को दर्शाते हैं। इन बिंदुओं पर कक्षा में चर्चा करें कि यदि आपको शादी के लिए कोई विज्ञापन तैयार करना है, तो वह कैसा होगा ?

कीनन (1974) का जेंडर संबंधी भाषा विमर्श उन प्रक्रियाओं की पड़ताल करता है जो सामाजिक उत्तरदायित्वों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री और पुरुष के भाषायी दायरे तय करती हैं, जैसे कि दुकानदार से मोलभाव करना महिलाओं से जोड़ा गया, जबकि एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच संवाद कायम करने का काम पुरुषों का अधिकार क्षेत्र माना गया। इसी तरह से चुगली करना और निंदा करना, जैसे भाषायी संस्कार भी स्त्रियों से जोड़े गए। ये शब्दों की निरंतर खुलती-उलझती ऐसी कड़ियाँ हैं जो सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों की घुसपैठ को कमतर साबित करने की होड़ रचती दिखाई देती हैं। इसलिए हमें स्त्री-पुरुष के सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से निर्मित इन भूमिकाओं को कक्षा की हकीकत बनने से रोकना होगा।

कुछ शोधपरक बिंदु

रॉबिन लेकॉफ़ (1975) को महिला अभिव्यक्तियों में मज़बूती के साथ अपनी बात करने के संस्कार का अभाव मिला। उनका अध्ययन महिलाओं के भाषायी संस्कार पर टिप्पणी करता है कि आम तौर पर घिसे-पिटे सवाल ही उनकी भाषायी दुनिया में शामिल हैं। वे गूढ़ गंभीर बौद्धिक चिंतन की दुनिया से परे बहुत ही मामूली विषयों पर बात करती हैं। महिलाओं की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति को समुन्नत करने के लिए उनमें शिक्षा के प्रचार-प्रसार को ज़रूरी समझा गया है। शिक्षा के माध्यम से जिस सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत हम देखते हैं 'उसमें' भाषा की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए महिलाओं के भाषायी क्षेत्र को जानना और समझना बहुत ज़रूरी है। परिवर्तन मूलक शिक्षा की परिकल्पना भाषा के बिना संभव नहीं। भाषा के माध्यम से ही हर व्यक्तित्व, हर समाज अपनी पहचान बनाता और बदलता है। भाषा एक अनूठे ढंग से सामाजिक वर्गीकरण का काम करती है। महिलाओं के संदर्भ में इस अनूठे ढंग को समझते हुए समता की ओर बढ़ना होगा।

— लैंग्वेज एंड वूमेन्स प्लेस, 1975

ओ' बार और एअकिंस (1980) का अध्ययन भी इस श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। उनके अनुसार महिलाओं की भाषा में सत्ता के भाव का हमेशा अभाव रहा। उन्होंने महिलाओं की भाषा में वैचारिक संतुलन और सामाजिक सहनशीलता का द्वंद्व पाया।

तानेह (1989) का अध्ययन भी भाषा और जेंडर को समझने की दिशा में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। पुरुषों के संवाद में उन्हें प्रतिस्पर्द्धात्मक रवैया नज़र आया और महिलाओं की भाषिक परंपरा में सहयोगात्मक रवैया गहराई से रचा-बसा मिला।

कहना न होगा कि उनके समाजीकरण के तरीके उनके द्वारा बोले या लिखे जाने वाली भाषा की छवियाँ तय करते हैं। क्रैम्रे और ट्रिचलर (1990) के अनुसार पारंपरिक शब्दकोशों में महिलाओं की अभिव्यक्तियाँ स्थान नहीं ले सकीं और यदि कुछ जगह मिली भी तो वह महिलाओं की रूढ़ छवि ही प्रस्तुत करती पाई गई ।

शर्जर (1987) ने समुदाय के सांस्कृतिक संगठन में भाषा का कार्य और प्रतिरूप' नाम से शोध प्रस्तुत किया जो संकेत करता है कि कैसे भाषा तंग गलियों से गुज़रती हुई स्त्री के लिए शक्तिहीन बन जाती है ।

1.2 — भाषा और स्कूल

इस अध्याय में हम स्कूल में भाषा की भूमिका और भाषा की समझ को लेकर चर्चा करेंगे। बच्चे जब स्कूल आते हैं तो उनके पास भाषा और उसका व्याकरण पहले से ही मौजूद होता है। इसलिए स्कूल की पहली भूमिका उसकी पहले से मौजूद उस भाषा का संवर्धन करना है और उसे आगे बढ़ाना है। बच्चे के पास उसकी मातृभाषा और उसके ज़रिये होने वाला ज्ञान पहले से ही है। ये ऐसी बाते हैं जिसे स्कूल की चहारदीवारी में अकसर हम नज़रअंदाज़ करते हैं। इन मुद्दों पर सोचे बगैर भाषा की कक्षायोजना नहीं तैयार की जा सकती।

1.2.1 घर की भाषा और स्कूल की भाषा

अपनी सहजात भाषिक क्षमता और परिवार तथा आस-पास के लोगों से अंत:क्रिया का अनुभव लेकर जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनमें अपनी भाषा या कई मामलों में अनेक भाषाओं में संवाद करने की क्षमता पूर्णत: विकसित हो चुकी होती है। वे केवल हज़ारों शब्दों के साथ स्कूल नहीं आते, बल्कि भाषा की जटिल और समृद्ध संरचनाओं के नियम; जैसे–ध्वनि, शब्द, वाक्य और संवाद के स्तर पर भी उनका पूरा नियंत्रण होता है। बच्चे न केवल सही-सही समझना और बोलना जानते हैं, बल्कि वह अपनी भाषा(ओं) का उचित प्रयोग भी करते हैं। वे व्यक्ति, स्थान और विषय के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकते हैं। उनके पास स्पष्टत: भाषा की सबसे अमूर्त जटिल संरचनाओं को ध्वनि प्रवाह के द्वारा व्यक्त करने की संज्ञानात्मक क्षमताएँ होती हैं। जाहिर है यह उनकी अपनी भाषा में ही विकसित होता है।

इसलिए आज़ादी के बाद के पिछले सारे शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ों में मातृभाषा को समझ के माध्यम (खासतौर से प्राथमिक शिक्षा) के रूप में लागू किए जाने की बात कही गई और बच्चों की समझ में सहायक उनकी अपनी भाषा और उनकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया।

1971 की गणना के अनुसार हमारे देश में 1652 भाषाएँ हैं। उनमें केवल 47 भाषाएँ ही स्कूल में बच्चों की समझ का माध्यम बन सकी हैं। बाकी अब भी जीते-जागते समाज और संस्कृति की ठहरी और खामोश भाषाएँ हैं। क्या यह खामोशी केवल कुछ भाषाओं के माध्यम न बन सकने की खामोशी है? या यह खामोशी कई संस्कृतियों, कई समाजों, कई भाषाओं और करोड़ों बच्चों के हमेशा के लिए खामोश होने का इशारा है? सोचना होगा।

1.2.2 माध्यम भाषा एक आलोचनात्मक दृष्टि

भाषा और समझ का गहरा रिश्ता है पर शिक्षा में समझ की ज़रूरत लगभग नकार दी गई थी। पिछले सालों में शिक्षा संबंधी जो नयी नीतियाँ बनीं, वे पहली बार शिक्षा में समझ को स्थान देने की बात पुरजोर ढंग से कह रही हैं। इसे समझने के लिए बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं, इसकी समझ बनाना ज़रूरी है।

यूनेस्को के शैक्षणिक आधार पत्र (2003) के अनुसार आरंभिक शिक्षण के लिए मातृभाषा अत्यंत आवश्यक है इसे जहाँ तक बरकरार रखा जा सके, रखा जाना चाहिए। कुछ अध्ययनों ने दिखलाया है कि जो बच्चे मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं वे भाषिक या विद्वत्ता के स्तर पर अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ रहे समान स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में कहीं से भी कम नहीं ठहरते। 1995 में 15-17 वर्ष के बीच के 78 बच्चों पर किए गए शोध का कहना है कि आरंभिक अवस्था में दो वर्षों तक मातृभाषा का माध्यम के रूप से इस्तेमाल, बच्चों में मातृभाषा व द्वितीय भाषा में ज़्यादा अच्छी दक्षता उत्पन्न करता है।

— भारतीय भाषाओं का शिक्षण, 2009:15

बच्चे की समझ और भाषा

- बच्चे विद्यालय आने से पहले भाषा के माध्यम से दुनिया को महसूस कर रहे होते हैं।
- बच्चे भाषा सीखते नहीं, बल्कि दिमाग में रचते हैं।
- बच्चे समझ बनाने की क्षमता रखते हैं और स्वयं समझ बना सकते हैं।
- उनके आस-पास भाषाओं का होना समस्या नहीं, संसाधन हैं। कई भाषाओं में आवाजाही शिक्षा में समता का काम कर सकती है।
- पाठ्यचर्या और भाषा जब निजी ज़िंदगी से जुड़ती है तो वह और समृद्ध होती है।
- छह वर्ष की बच्ची की भाषा भी बहुत जटिल हो सकती है। उसके पास अपनी भाषायी संरचना और व्याकरण है।

सामुदायिक जीवन, भाषा और इंसान बहुत गहरे रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और *सर्जना* में इनकी बड़ी भूमिका होती है। बच्चा अपने अनुभवों को भाषा के माध्यम से सँजोकर उनको अर्थवान बनाता है। यह प्रक्रिया किसी भाषा के द्वारा ही होती है और यह भाषा बच्चे की घर की भाषा /मातृभाषा ही हो सकती है। यानी सर्जना की पहली कोशिश

अपनी भाषा में ही आरंभ होती है, क्योंकि जो भावनात्मक और अंतरंग शब्द होते हैं वे अपनी भाषा में ही आते हैं। बच्चे जब पहली बार स्कूल आते हैं तो इसको दरकिनार कर यह सिखाया जाता है कि उन्हें अपनी भाषा में नहीं बोलना है, उनको एक ऐसी भाषा में बोलना है जो शिक्षाविदों द्वारा निर्धारित की गई है। हमें इस पर भी ध्यान देना होगा, बच्चे का यह भाषायी संसार एक समाज और समुदाय के बीच बन रहा होता है।

यह वह भाषा है जिसमें उसने अभी तक न सोचा है और न बोला है। इसका नतीजा बहुत खतरनाक हो सकता है। हमें ध्यान देना होगा कि बच्चे अपने आपको मातृभाषा में ही सर्जित करते हैं और अपने अनुभवों की व्याख्या भी इसी भाषा में करते हैं। इसको शिक्षा में नकारना केवल बच्चे को नकारना नहीं है बल्कि यह सामाजिक समता, सामाजिक न्याय और आज़ादी को नकारना है। यह प्रवृत्ति 'चुप्पी की संस्कृति' के साथ एक हिंसक समाज को जन्म देगी, क्योंकि जब शब्द नहीं रहते तब शस्त्र उठते हैं। अहिंसक समाज रचने के लिए भी बच्चों को अपनी भाषा में सोचने, विचारने और पढ़ने-लिखने के अवसर देने होंगे।

हमारी शिक्षा-पद्धति भी कुछ लोगों की भाषा को स्वीकार करती है तो कुछ लोगों की भाषा को नकारती है। यह नकारना शिक्षा पाने के उपकरण या ज्ञान प्राप्त करने के एकमात्र साधन को नकारना है। हमें इस पर भी ध्यान देना होगा कि नयी मशीनें बनाना, नया शोध करना, अपने और समाज के बारे में नए ढंग से सोचना तभी संभव होगा जब हम अपनी भाषाओं में सोच पाएँगे या हमें अपनी भाषा में पढ़ने का अवसर मिलेगा। अपनी भाषा में सोचना तब संभव होगा जब हरेक स्कूल अपनी भाषानीति को लचीला बनाएगा।

1.2.3 समझ और भाषा

समझ और भाषा का रिश्ता कुछ ऐसा होता है जैसे पानी और उसकी तरंगों का। हमारी समझ अपनी भाषा में ही बनती है। भाषा के बिना समझ की परिकल्पना असंभव है। पर स्कूलों में भाषा को एक टूल की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। हमें इस दिशा में अभी काम करना होगा और यह विश्वास दिलाना होगा कि **भाषा मनुष्य की समझ का आवश्यक आधार है।** हम वर्तमान में क्या कर रहे हैं? इसके बारे में भी हमें भाषा ही सचेत करती है। यह वर्तमान से अतीत और भविष्य में आवाजाही करने का एकमात्र ज़रूरी उपकरण है। कल क्या था? इसके आधार पर ही यह कल्पना की जा सकती है कि हमें और क्या चाहिए? अपने विषय में विवेकपूर्ण ढंग से निर्णय करने का काम भाषा ही करती है। मनुष्य की ये सभी अवस्थाएँ अपने परिवेश में ही रची जाती हैं और इस रचावट का काम समझ के द्वारा ही संभव है। इंसान की यह समझ भाषा से ही बनती है। भाषा से ही हम सार्थक अवधारणाएँ बनाते हैं, संबंधों का संजाल बनाते हैं, अपने अनुभवों को सार्थकता प्रदान करते हैं, अपने इरादों को देख पाते हैं और दूसरों के इरादों को समझ पाते हैं। इसलिए इंसान को गढ़ने की आवश्यक

शर्त के रूप में भाषा समझ का माध्यम बनती है। बच्चों की अपनी भाषा की संरचना उनके दिमाग में पहले से ही है। अवधारणाओं का ढाँचा इसी भाषा से बनता है जब वे कोई नयी चीज़ देखते हैं तो उसका संबंध पहले के अनुभवों से जोड़ते हैं और नयी विशेषताएँ पता करते हैं। तब जाकर उस चीज़ की अवधारणा बनती है। इंसान स्वयं से बाहर निकलकर देख सकता है और जो सामने नहीं है उसके बारे में भी बात कर सकता है, यह भाषा के द्वारा ही संभव है।

"जैसे किसी बच्चे के सामने आप 'आगरा' नाम लेंगे तो वह पहले से प्राप्त ताजमहल के ज्ञान से उसे जोड़ेगा। हो सकता है वह चमड़े की फ़ैक्ट्री से भी जोड़े..."

इसलिए बच्चे के मन में पहले से मौजूद और नयी अवधारणाओं का अलग-अलग परिस्थितियों में इस्तेमाल का मौका देना होगा तब जाकर उसकी अपनी समझ बनेगी। ज्ञान सृजन की इस प्रक्रिया में भाषा की बड़ी भूमिका होती है।

ज्ञान और भाषा

एक कक्षा का दृश्य औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के भीतर **वाल्या** का यह तीसरा साल है। वह अपने सहपाठियों को कहानी सुना रही है–

नदी से थोड़ी दूर एक मेंढकी रहती थी। मेंढकी जब-जब अपने डबरे से बाहर निकलती तो देखती मछुआरा भैया अपनी नाव नदी में दूर तलक ले जाते हैं। एक दिन मेंढकी ने देखा कि नाव नदी के किनारे खड़ी है। मछुआरा भैया नाव को नदी के किनारे खड़ी करके गाँव में रोटी-भाजी का जुगाड़ करने गए थे। मेंढकी का मन किया कि वह नाव में सैर करे। वह झट अपने डबरे से निकल नाव में जा चढ़ी और चप्पू संभाल लिया। नदी किनारे बैठी मछली ने उसे देख लिया। मछली बोली–"मेंढकी री मेंढकी, यह क्या कर रही हो तुम? तुम तो उथले से डबरे में रहती हो न। नाव को तो गहरा पानी चाहिए।" मेंढकी ने मछली की बात नहीं सुनी और नाव को अपने डबरे की तरफ़ बढ़ा दिया।

नाव बोली–"मेंढकी, मेंढकी, तुम मुझे कहाँ ले जा रही हो?" मेंढकी ने जवाब दिया, "अपने डबरे में। आज अपने दोस्तों को दिखाऊँगी कि मैं कैसे नाव चलाती हूँ। उन्हें भी नाव की सवारी कराऊँगी।" नाव मुस्करा दी।

मेंढकी नाव को बड़ी मुश्किल से डबरे तक लेकर आई। नाव कीचड़ में फँस गई थी। वह आगे बढ़ ही नहीं रही थी। मेंढकी ने बड़ा ज़ोर लगाया पर नाव अपनी जगह से हिली भी नहीं।

इधर शोर को सुनकर सारे मेंढक-मेंढकियाँ अपने डबरे से बाहर निकल आए थे। मेंढकी की नाव आगे बढ़ ही नहीं रही थी। वह बहुत शर्मिंदा हुई। वह डबरे में कूद पड़ी और चारों तरफ़ इससे खूब कीचड़ उछला। सारे मेंढक-मेढकियाँ ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। तभी मछुआरा

भैया आ गए। वे नाव डबरे से खींच कर ले गए। मेंढक-मेंढकियाँ डर के मारे हरी-हरी काई में जा छिपे। शाम को हिम्मत करके वे बाहर निकले और खिलखिलाकर हँसने लगे।

वाल्या के सहपाठी इस कहानी का भरपूर मज़ा ले रहे थे। उनके नेत्र कभी तो आश्चर्य से विस्फारित हो जाते तो कभी पात्र की किसी बेजा हरकत पर संदेह से सिकुड़ भी जाते। कहानी के ज़रिये वे मेंढकी, मछली और नाव से अपना संबंध जोड़ चुके थे और कहीं-न-कहीं मछुआरा भैया की डाँट की प्रतीक्षा में थे। मछुआरा भैया के कुछ कहे बिना चुपचाप अपनी नाव नदी पर ले जाने से सभी ने राहत की साँस ली। वाल्या के सहपाठियों के साथ-साथ उसका अध्यापक भी वहाँ मौजूद था। अध्यापक की रुचि कहानी सुनने में कम और यह जानने में कुछ अधिक थी कि आखिर वाल्या यह सब कैसे कह पा रही है? उसने यह ज्ञान कहाँ से हासिल किया कि नाव उथले पानी पर नहीं चलती है। उसने कैसे जाना कि नाव चलाकर अपनी शक्ति/शेखी का प्रदर्शन किया जा सकता है। उसने कैसे जान लिया कि मछुआरा भैया रोटी-भाजी का इंतज़ाम करने गाँव गए होंगे ? तनिक आप इस पर विचार करें कि वाल्या यह ज्ञान कहाँ से हासिल कर पाई ?

कोई भी बच्चा/बच्ची जिस भी परिवेश में जन्म लेता/लेती है उससे ही वह प्रारंभिक ज्ञान अर्जित करना, खोजना प्रारंभ करते हैं। बच्चों की यह जिज्ञासा जन्मजात होती है। भाषा इसका मुख्य उपकरण बनती है। आपने देखा होगा कि अपने संपर्क में आ रही वस्तुओं एवं जीवों को बच्चे अपनी ही तरह से नाम देने की कोशिश करते हैं। वस्तुओं को नाम देने में दिलचस्पी लेना और कुछ नहीं बल्कि खोज की प्रक्रिया को जारी रखना ही होता है या फिर कहिए कि भाषा के ज़रिये ज्ञान हासिल करना होता है।

- बच्चे के लिए शुरुआती दौर में उसका घर-परिवार एक रंगमंडल के समान है। इसमें वे माता-पिता एवं अन्य मौजूद संबंधियों के साथ तरह-तरह से अंत:क्रिया करते हैं जो उन्हें इस बात की आधारभूत संतुष्टि प्रदान करता है कि वे धीरे-धीरे बड़े हो रहे हैं (कुछ नया हासिल कर रहे हैं।) इस अंत:क्रिया का प्रमुख आधार भाषा ही होती है। जिन बच्चों के पास शुरू से ही कोई ध्वनि नहीं होती, उनके पास भी किसी-न-किसी रूप में भाषा मौजूद होती है जो उन्हें अपने आस-पास के संसार को जानने-समझने में मदद करती है।
- बच्चे बातचीत के ज़रिये ही सीखते हैं। बातचीत शुरू करने और उसे जारी रखने का सबसे अच्छा तरीका है बच्चों को पारिवारिक कार्यकलापों में शामिल करना। यह संलग्नता उनके लिए ज्ञान के नए क्षेत्र खोलती है। सीधी बात तो यह है कि भाषा और संज्ञान के बीच एक गहरा संबंध है। इंसानों की कई क्षमताओं में से एक अनोखी क्षमता यह है कि वे भाषा के ज़रिये अवधारणाएँ विकसित कर सकते हैं।

- बच्चे कक्षा में तब तक कुछ नहीं कहते जब तक कि उन्हें पक्का पता न हो कि उनका उत्तर सही है, क्योंकि वे कक्षा में गलत होने का जोखिम नहीं उठा सकते। इस तरह, अटकल या परिकल्पना बनाना जैसी महत्वपूर्ण गतिविधियाँ जो ज्ञान निर्माण के निर्माणवादी नज़रिये का महत्वपूर्ण अंग है, कक्षा के अनुभव के दायरे से बहिष्कृत हो जाती हैं।

ज्ञान क्षमता का माध्यम भाषा

चाम्स्की और लेनबर्ग भाषा को मानव संज्ञान क्षमता के केंद्र में रखने का मत सुझाते हैं। उनके अनुसार भाषा इंसानी ज्ञान के निर्माण के लिए न सिर्फ़ महत्वपूर्ण है, बल्कि अपरिहार्य है। जेंटनर को भी इस मत का समर्थन हासिल है जो इंसान को अन्य प्रजातियों की तुलना में बहुत बुद्धिमान मानते हैं। इसके पीछे उनके पास दो तर्क हैं —

- इंसानों में तर्क करने की क्षमता अधिक होती है, उनके पास उपमा देने तथा तर्क करने की क्षमता का बड़ा खज़ाना होता है।
- वह भाषा जो अन्य सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से संज्ञान संसाधनों में वृद्धि करती है– यह दूसरा महत्वपूर्ण खज़ाना है।
- ज्ञान एक अद्भुत शक्ति है जो हम इंसानों के पास है, न सिर्फ़ इसलिए कि हम जानते हैं, बल्कि खास तौर से इसलिए भी कि हम जो जानते हैं, उसे व्यक्त कर सकते हैं।
- संस्कृत में ज्ञ (जानना) क्रिया है जो अंग्रेज़ी के *Know* और *Knowledge* तथा हिंदी के जानना की सजातीय है।
- जेंडर के शब्दों में, "संबंधसूचक भाषा का अर्जन उपमाओं के विकास में सहायक है और इस तरह से संज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।"

शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार के अनुसार प्रतीकों के माध्यम से अनुभव जगत से जुड़ना एक मायने में ज्ञान है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने अनुभव की चर्चा की– *"कोई दो महीने पहले मैं अमरकंटक में था। जहाँ गुलबकावली नाम का एक विशिष्ट फूल पाया जाता है।... अमरकंटक में यह फूल उगता है, हालाँकि फूल को लेकर यह निश्चित नहीं है कि फूल आया कहाँ से। आप इसके अर्थ पर विचार करें – बकावली यानी बगुलों की पंक्ति। इस फूल की क्यारियाँ बगुलों की पंक्ति जैसी दिखती हैं और कोई विचित्र ही बात है कि यह फूल सिर्फ़ सोन और नर्मदा के उद्गम स्थल में अर्थात् अमरकंटक*

में ही दिखाई देता है। इस फूल के अर्क से आँखों की तकलीफ़ ठीक होती है।... अमरकंटक में तीन स्कूल चलते हैं। तीनों ही स्कूलों में मैंने अपनी इस जिज्ञासा का समाधान करना चाहा कि क्या बच्चे गुलबकावली की विशेषता से परिचित हैं। गुलबकावली अमरकंटक की गली-गली में दिखता है। वहाँ वैद्य इस फूल का अर्क और शहद बेचते हैं। नेत्र रोग से पीड़ित मनुष्य को अमरकंटक पहुँच कर लगता है कि अब वह स्थान आ गया है जहाँ से मैं दृष्टि प्राप्त करके जाऊँगा। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि दु:ख होगा या क्या होगा, लेकिन इन तीनों में से किसी स्कूल में एक भी बच्चे को मैं नहीं ढूँढ सका जिसने यह सुना हो कि गुलबकावली फूल हातिमताई के किस्से में आया है, या कि वह जानता हो कि यह फूल किस मौसम में उगता है, यद्यपि ये बच्चे प्रतिदिन स्कूल जाते हुए इस फूल को देखते हैं। जहाँ-जहाँ उसकी क्यारियाँ हैं, वहाँ पर वर्ष के अलग-अलग हिस्सों में उन्होंने यह अवश्य देखा होगा कि फूल कब खिलता है।"

भाषा की भूमिका समझने के लिए गुलबकावली के फूलों का ही उदाहरण लेते हैं। बच्चे स्कूल जाते हुए प्रतिदिन इस फूल को देखते हैं, तो यहाँ शिक्षक की भूमिका ये रहेगी कि गुलबकावली की उपस्थिति से जुड़े संदर्भ (उसका उगना, उपयोग, खिलना आदि) की चर्चा बच्चों से करें। उनके चारों ओर खिले हुए इन विलक्षण फूलों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाएँ।

आप इस काम को इस प्रकार कर सकते हैं —

- गुलबकावली से जुड़ा हातिमताई का किस्सा सुनाया जा सकता है।
- फूल की बनावट रंग-रूप समझने के लिए मौका दिया जा सकता है।
- किसी भी वैद्य को बुलाकर बच्चों से बातचीत करवाई जा सकती है कि इसे क्यों उपयोगी मानते हैं, इसका कौन-सा हिस्सा उनके लिए महत्वपूर्ण होता है।

गतिविधि - 9

उपर्युक्त वक्तव्य के आधार पर आप 'ज्ञान' के प्रति बनी अपनी समझ को साथियों के साथ साझा करें।

बच्चों के तरह-तरह के सवाल गुलबकावली के बारे में अनुभवजन्य ज्ञान हासिल करने में मदद करेंगे। यहाँ यदि सवालों को मुँह से बोलकर किए जाने वाले सवालों तक सीमित करेंगे तो यह भाषा का बहुत ही सीमित रूप होगा। जब ज़ुबानी सवालों के अलावा बहुत से अनुभव अपनी आँखों और मन से भी हासिल कर लेते हैं तो भाषा कई रूपो में हमारा साथ देती है। ऐसे अनुभव अलग-अलग विषय क्षेत्रों में होते हैं। उन सबकी अभिव्यक्ति के लिए, एक मज़बूत भाषा के लिए विभिन्न विषयों और तत्संबंधित भाषा के रिश्ते को समझना होगा।

1.2.4 विषय के रूप में भाषा और माध्यम भाषा

भाषा केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा माध्यम भी है जिसके सहारे हम अधिकांश जानकारी प्राप्त करते हैं। यह एक व्यवस्था है जो काफ़ी सीमा तक हमारे आस-पास की वास्तविकताओं और घटनाओं को हमारे मस्तिष्क में व्यवस्थित करती है। यह कई तरीकों से हमारी पहचान का एक चिह्न है और अंतत: यह समाज से, सत्ता और शक्ति से बहुत नज़दीक से जुड़ी हुई है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हम केवल दूसरों से बात करने के लिए ही नहीं, बल्कि अपने आपसे भी बात करने के लिए भाषा का इस्तेमाल करते हैं। यह वास्तव में भाषा का महत्वपूर्ण कार्य है। हम अपने विचारों को कैसे स्पष्ट कर सकते हैं जब तक कि हम पहले अपने आप से बात करना न सीखे हों। इसी अर्थ में विषय के रूप में भाषा और माध्यम के रूप में भाषा में अंतर है। भाषा की इस सबसे महत्वपूर्ण भूमिका पर हमारे शिक्षा जगत को अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है।

मेरा अनुभव

"मातृभाषा के लिए इतना प्रेम होते हुए भी मैं आज तक भूमिति, बीजगणित आदि के गुजराती पारिभाषिक शब्द नहीं जानता। अब मेरी समझ में आता है कि अगर अंग्रेज़ी के बजाय मैंने गुजराती के द्वारा सीखा होता, तो अंकगणित, भूमिति, बीजगणित, रसायनशास्त्र और खगोलविद्या के बारे में जो बातें सीखने में मुझे चार वर्ष लगे, उन्हें मैं आसानी से एक साल में सीख लेता। उन विषयों का ज्ञान मुझे ज़्यादा आसानी से और अधिक स्पष्ट होता। मेरा गुजराती शब्द-भंडार अधिक संपन्न हो गया होता। इस ज्ञान का मैं अपने घर में उपयोग करता।

मैं चाहता हूँ कि उस भाषा (अंग्रेज़ी) के रत्नों को और उसके ही क्यों, संसार की अन्य भाषाओं के रत्नों को भी हम अपनी ही देशी भाषाओं के द्वारा जुटाएँ। रवींद्रनाथ की अद्वितीय रचनाओं की खूबियाँ जानने के लिए मुझे बांग्ला सीखने की ज़रूरत नहीं होती। मुझे वे अच्छे अनुवाद के द्वारा मिल जाती हैं। गुजराती लड़के और लड़कियों को टॉलस्टाय की कहानियों का रसास्वादन करने के लिए रूसी भाषा पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती है। वे उन्हें अच्छे अनुवाद के द्वारा पढ़ लेते हैं।"

— महात्मा गांधी, हरिजन 9.7.38

विभिन्न विषय-क्षेत्र जैसे– इतिहास, भौतिक विज्ञान अथवा गणित को समझने के लिए भी हमें भाषा की आवश्यकता होती है। चाहे हम प्रकृति को देखें या समाज को हम बहुत हद तक उन्हें अपनी भाषा की संरचना के माध्यम से ही देखते हैं। इसलिए जिनके

परिवेश में अंग्रेज़ी नहीं है और जो बच्चे अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में दाखिल हो रहे हैं वे भाषा के साथ तालमेल नहीं बिठा पाते और धीरे-धीरे हाशिए की तरफ़ बढ़ते जाते हैं। यही स्थिति मानक हिंदी की भी है।

सभी विषयों का अध्यापक भाषा का अध्यापक है

भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षाएँ भी एक तरह से भाषा की ही कक्षा होती हैं। किसी विषय को सीखने का मतलब है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, उनके बारे में आलोचनात्मक ढंग से चर्चा करना और लिख सकना। कुछ विषयों को लेकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अलग-अलग पुस्तकों का अध्ययन करें या उन भाषाओं में लोगों से बातचीत करें। हर शिक्षक चाहे वह गणित का हो या विज्ञान का, वह भाषा का ही अध्यापक होता है। भाषा पढ़ना सबकी ज़िम्मेदारी है, सिर्फ़ भाषा अध्यापक की नहीं। गणित, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र जैसे विषयों में मौलिक चिंतन भी भाषा में शिक्षा से ही संभव है।

1.2.5 भाषा और अन्य विषय

अवधारणाओं का विकास अवधारणाएँ देने से नहीं होता। जबकि कक्षा में अकसर हो यह रहा है कि विषयगत किसी अवधारणा को समझने के लिए भाषागत कोई अवधारणा लेकर खड़े हो जाते हैं। भाषा और अन्य विषयों के बीच सहज संबंध के लिए ऐसी प्रक्रिया को छोड़ना होगा। सामाजिक अध्ययन की बहुत-सी अवधारणाएँ नक्शे की मदद से बनती और खुलती हैं। नक्शे को गणित की मदद से समझा जा सकता है। गणित ही नक्शे को समझने के लिए विशेष समझ विकसित करता है। नक्शे इतिहास पर भी नज़र डालने में मदद करते हैं। गणित की अवधारणाएँ स्थूल और स्थायी हैं। इसलिए उसका ताना-बाना समझ में आ जाता है। पर सामाजिक अध्ययन का ताना-बाना बदलता रहता है जो अपनी ही भाषा से समझ में आता है।

विज्ञान के विद्यार्थी पर दोहरी ज़िम्मेदारी है। उनको एक साथ दो भाषाओं का ज्ञान ज़रूरी है। एक समझ की भाषा, दूसरे विज्ञान की। विज्ञान बिंबों में बात नहीं करता, वह सीधी भाषा या अभिधार्थ की माँग करता है। वह बेबाक टिप्पणी करता है। विज्ञान के विद्यार्थी को *'नॉन कंफर्मिस्ट'* भी होना पड़ेगा। बुद्ध ने कहा था कि बातों को इसलिए नहीं मानो कि बुज़ुर्गों ने कहा था, उसे जाँचो, परखो तब मानो। यह सब कुछ शिक्षा में अपनी भाषा की आज़ादी के बगैर संभव नहीं। यह आज़ादी शिक्षक को लेनी पड़ेगी।

भाषा हम सबके ज़ेहन में है। अवधारणाओं का ढाँचा इसी भाषा से बनता है। अपने अनुभवों के आधार पर हम अपने मानस में आए चित्र को जीवंत बनाकर ज्ञान को आगे बढ़ाते हैं। गणित और विज्ञान सभी में ऐसी अवधारणाएँ हैं जो भिन्न-भिन्न चीज़ों के स्वरूप को हमारे सामने उसी रूप में रख जाती हैं। जैसे - पृथ्वी गोल है (यहाँ गोल की धारणा हमारे सामने स्वत: बन जाती है।) दो रोटी, तीन भाई। हम रोटी को 'दो' से, भाई को 'तीन' से जोड़ पाते हैं। चार साल का बच्चा यह सब कर लेता है। कुर्सी की परिभाषा सबकी अपनी-अपनी और अलग-अलग होगी। एक धारणा के साथ और धारणाओं का संबंध किस तरह से बनता है, यह बात बच्चे जानते हैं और स्कूल में जो परिभाषाएँ दी जाती हैं, जिस तरह से दी जाती हैं, उनसे शायद संदेह उभरता है।

बच्चे की एक अपनी भाषा होती है जिसमें उसने अपना व्यक्तित्व गढ़ा है, एक समाज की भाषा है, फिर विषय की भाषा भी महत्वपूर्ण हो जाती है जिसमें उसे जानकारी उपलब्ध करनी है। जो भाषा बच्चे जानते हैं उसमें पढ़ना-लिखना, बातों को समझना आसान होता है। इसका क्रियान्वयन कैसे हो, यही हमें तय करना है। यदि पढ़ने-लिखने के शुरुआती सालों में अपनी समझ पैदा करने या बढ़ाने के लिए अपने शब्द मिलें तो चीज़ें आसान हो जाती हैं, छवि बनाना आसान हो जाता है।

तकनीकी शब्दावली और बच्चे की समझ

यहाँ पर हम बच्चे के पूर्वज्ञान का नए ज्ञान और नयी शब्दावली के साथ संबंध बनाना चाहते हैं। बेलनाकार की जगह 'चूड़ी आकार', 'गेंद आकार' जैसे शब्द क्यों नहीं लिए जा सकते। चुंबक के लिए आकर्षण-विकर्षण शब्द का इस्तेमाल करते हैं। ये शब्द सामान्य तौर पर इस्तेमाल नहीं किए जाते तो अनजाने शब्दों का भार क्यों बढ़ाया जाए। इसीलिए बच्चे की स्थिति यह है कि शक्ति, ताकत, बल और ऊर्जा इन सभी शब्दों का एक तरह से इस्तेमाल करते हैं जबकि तकनीकी इस्तेमाल में उनके अर्थ बदल जाते हैं। हम बच्चे के ज़ेहन को इस्तेमाल में ला सकते हैं? कुछ उदाहरण एन.सी.ई.आर.टी. की किताबों से दिए जा रहे हैं, जिससे सहज रूप में बच्चे गणित सीख रहे हैं और अपने आस-पास के जीवन से जुड़ रहे हैं —

सीमा का सैकड़ा

सीमा ने अलग-अलग तरह की बिंदियों से एक डिज़ाइन बनाया है।

- अलग-अलग समूहों को ध्यान से देखो और बिंदियों की कुल संख्या का अंदाज़ा लगाओ। .....

- कुछ और समूहों के चित्र बनाओ ताकि 100 बिंदियाँ पूरी हो जाएँ। तुम्हें कितनी और बिंदियाँ बनानी पड़ीं?...

गणित का जादू, पुस्तक 2, कक्षा 2, एन.सी.ई.आर.टी.

1.2.6 बहुभाषिकता का उद्देश्य और बहुभाषिक कक्षा

बहुभाषिकता हमारे जीवन का एक ज़रूरी हिस्सा है जो हमारी सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़ी हुई है। हम सभी बहुभाषी हैं और हमारा बहुभाषी होना हमें दूसरों से जुड़ने में और उनको समझने में मदद करता है। आज-कल एक देश से दूसरे देश में लोगों की आवाजाही हो रही है और वहाँ के आर्थिक, सामाजिक जीवन में भी जगह बना रहे हैं। इसलिए इस समय में एक राष्ट्र, एक भाषा और एक संस्कृति की अवधारणा का कोई स्थान नहीं है। यह बात सोचना न केवल बेमानी होगा, बल्कि पूरी दुनिया के ज्ञान से आँख मूँदने जैसा होगा।

यह बात हम समझते हैं और इसका भरपूर प्रयोग भी करते हैं। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता है कि यह बात बच्चों के जीवन से भी जुड़ी हुई है। बच्चों को समझने के लिए, उनसे रिश्ता कायम करने के लिए और उनको स्कूल से जोड़ने में इसकी अहम भूमिका है।

बच्चे मातृभाषा को जानते हैं आस-पास के परिवेश में उसका उपयोग होते हुए देख रहे हैं। अब ज़रूरत इस बात की है कि 'उनकी अपनी भाषा को मज़बूत आधार देकर उनकी भाषा और दूसरी भाषा के बीच एक पुल बनाया जाए'। इस तरह दो-तीन और भाषाओं में उन्हें पहुँचाया जा सके जिससे वे सहजता से शिक्षा ग्रहण कर सकें।

मातृभाषा का इस्तेमाल रीढ़ की हड्डी की तरह चलते रहना चाहिए। लिखना-पढ़ना हम एक ही बार सीखते हैं। मातृभाषा में यह कौशल पक्का हो जाए तो अन्य भाषाओं में लिखना-पढ़ना बहुत आसान हो जाता है। शिक्षा के ज़रिये व्यक्ति आसानी से बहुभाषिक हो जाता है। किसी भी भाषा को कैसे पढ़ाते हैं– इसके लिए हमें लिखने के विज्ञान को पहले समझना होगा। यहाँ दिमाग और हाथ का संयोजन/समन्वयन चाहिए। 5-6 साल की उम्र

तक यह विकास ठोस नहीं होता। इसलिए लिखने में मुश्किल होती है, पर शोध यह भी कहते हैं कि बच्चे के मन में प्रिंट या अन्य माध्यम अवधारणा या समझ बनाने के लिए पढ़ने के साथ लिखना भी शुरू करना चाहिए। यह लिखना रेखाओं में भी हो सकता है। यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि सुनना और बोलना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना समझना और अभिव्यक्त करना। गणित सिखाने की बात की जाए तो बच्चे गणित पहले से ही जानते हैं। टॉफ़ी बाँटना बिना सिखाए आ जाता है। इसी तरह से पानी के तीन रूप– ठोस, तरल और भाप, मातृभाषा के सहारे बेहतर ढंग से समझाए जा सकते हैं– पर बच्चे के मन में अवधारणा स्पष्ट होने के बाद। मातृभाषा के ज़रिये पारिभाषिक शब्दों का आदान-प्रदान भी हो सकता है। दूसरी-तीसरी भाषा दूसरे-तीसरे वर्षों में जुड़ जाए पर मातृभाषा का प्रयोग चलते रहना चाहिए। वे अपनी मातृभाषा के ज़रिये और भाषाओं को समझने लगते हैं। हमें तो केवल शिक्षा की नदी पर एक अच्छा मज़बूत पुल बनाना है।

> *"बर्लिट्ज़ भाषा स्कूल ... करके सीखने वालों के लिए संसाधनों का एक अच्छा उदाहरण है। ये स्कूल कानून बनाकर हमें मज़बूर नहीं करते कि हमें एक और भाषा सीखनी ही पड़ेगी। वे यह भी नहीं कहते कि एक और भाषा सीख लेने पर हमें बढ़िया नौकरी मिल जाएगी, या हम सफल व सम्पन्न हो जाएँगे, और न ही यह कहते हैं कि न सीखने पर हम असफल और गरीब हो जाएँगे। वे इस तरह का कोई वायदा नहीं करते या धमकी नहीं देते। वे सिर्फ़ इतना ही कहते हैं कि यदि हम एक और भाषा बोल सकें तो हम जीवन का लुत्फ़ उठा सकेंगे।"*
>
> *— शिक्षा की बजाय, जॉन होल्ट*

ध्यान देने की बात यह भी है कि हम वही सुनते और समझते हैं जो पहले से नहीं पता। बाकी सब कुछ मामूली-सा लगता है, हम उसे छोड़ देते हैं। ज़रूरत को ध्यान में रखते हुए ही जो लोग असम, पंजाब आदि जगहों में आते हैं वे वहाँ की भाषाएँ भी सीख लेते हैं।

अभ्यास प्रश्न

विषय से संवाद

1. छोटे समूह में बाँटकर, भारतीय भाषाओं के लिए निर्मित पोजीशन पेपर का अध्ययन और उस पर चर्चा कीजिए ।
2. भाषायी वर्चस्व से आप क्या समझते हैं ? वर्तमान संदर्भों में कौन सी भाषाएँ वर्चस्व की भाषाएँ कही जा रही हैं? वे कौन से कारक हैं जो किसी भी भाषा को वर्चस्व की भाषा के रूप में स्थापित करते हैं ?
3. कक्षा का बहुभाषी होना किस बात की ओर संकेत करता है?/कक्षा के बहुभाषी होने के क्या मायने हैं? इस स्थिति को सकारात्मक संदर्भों में लेने के क्या आधार हो सकते हैं ?
4. ''विज्ञान, गणित या अर्थशास्त्र जैसे विषयों के अध्यापन में देशज शब्दावली/घर की भाषा का प्रयोग विद्यार्थियों को मुख्यधारा से काटता है।'' इस विषय के पक्ष अथवा विपक्ष में अपने विचार लिखिए ।
5. ''भाषा एक अनूठे ढंग से सामाजिक वर्गीकरण का काम करती है।'' अपने विद्यालयी जीवन से उदाहरण देते हुए ऊपर लिखे कथन को स्पष्ट कीजिए।
6. भाषा विद्यार्थी की अस्मिता के किन-किन पक्षों को प्रभावित करती है ?
7. भाषा का उपयोग वर्गीय भेदभाव को व्यक्त करने में भी किया जाता है । स्कूल के भीतर की दुनिया से जुड़े अनुभवों के आधार पर इस कथन का मूल्यांकन कीजिए ।
8. कक्षा 6 -12 की किसी एक विषय की पाठ्यपुस्तक का भाषा और जेंडर के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण कीजिए ।
9. हिंदी भाषा के औपचारिक शिक्षण के काम से जुड़े पाँच अध्यापकों से मिलें और उनसे हिंदी शिक्षण के उद्देश्य व प्रचलित मान्यताओं के बारे में उनकी राय जानें । आप अपनी समझ और उनकी राय में किस प्रकार की भिन्नता या समानता पाते हैं ?
10. ''ये बच्चे क्या जानें उठने-बैठने का संस्कार । जिन घरों से ये आते हैं... इनसे कुछ उम्मीद करनी बेकार है ।''

    ''इन बच्चों के साथ मेहनत करने की क्या ज़रूरत है? बनना तो इन्हें वही है जो इनके कर्म हैं ।''

    ''कोटे से सुविधा-सहूलियत ही तो मिल सकती है, दिमाग तो वही रहेगा न ।'' ऊपर लिखे वाक्य किसी भी विद्यालय में बड़े सहज भाव से सुनने को मिल जाएँगे। यह वाक्य विद्यालय में किस तरह से अलगाव की स्थिति पैदा करते हैं, उदाहरण देकर बताइए।

प्रशिक्षण के दौरान

विज्ञान, समाज विज्ञान और गणित की कक्षा VI व VII की किताबों से कुछ अंश चुनकर निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण कीजिए —

1. विभिन्न भाषिक प्रयुक्तियों को कैसे प्रस्तुत किया गया है ?
2. उस अंश में प्रयुक्त भाषा विषय संबंधी भाव स्पष्ट करने में कहाँ तक समर्थ है ?
3. भाषा बच्चे के स्तर के अनुरूप है ?
4. क्या इसमें तकनीकी भाषा का बहुत इस्तेमाल किया गया है ?
5. क्या यह भाषा सीखने में सहायक है ?

कक्षा-शिक्षण के दौरान

1. कक्षा-शिक्षण के दौरान बच्चों के परिवेश और उनकी भाषा के बारे में जानकारी प्राप्त करें और बहुभाषिकता को स्रोत के रूप में इस्तेमाल करते हुए हिंदी शिक्षण की एक कक्षा-प्रविधि तैयार कीजिए ।

परियोजना कार्य

1. कक्षा छह से बारह तक के हिंदी की किताबों में जेंडर और शांति के लिए शिक्षा संबंधी बिंदुओं की सूची तैयार कर, उसके लिए कक्षा प्रविधि तैयार कीजिए ।
2. संविधान में भारतीय भाषा संबंधी अनुशंसाएँ तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, पी.ओ.ए. द्वारा संस्तुत भाषा संबंधी सिफ़ारिशों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए ।
3. अपने आस-पास के पाँच स्कूलों का दौरा कर यह जानकारी प्राप्त करते हुए एक रिपोर्ट तैयार करें कि त्रि-भाषा सूत्र की क्या स्थिति है ?
   - ✓ अखबार में प्रकाशित दो विज्ञापन लीजिए । उनमें से एक सरकारी संस्था का विज्ञापन हो तथा दूसरा किसी कंपनी का । दोनों में प्रयुक्त हिंदी शब्द प्रयोगों और वाक्य रचना आदि के परिप्रेक्ष्य में चर्चा कीजिए ।
   - ✓ भारत के संविधान में हिंदी को दो जगह स्थान दिया गया है । धारा 343 तथा आठवीं अनुसूची में । इन दो जगहों पर हिंदी को रखने का क्या तर्क होगा? उदाहरण सहित समझाइए ।

टिप्पणी

इकाई
2

भारत में भाषाओं की स्थिति

2.1 — हिंदी भाषा की स्थिति **36**

2.1.1 स्वतंत्रता से पहले की हिंदी 38

2.1.2 स्वतंत्रता के बाद की हिंदी 41

2.1.3 अन्य भाषाएँ और हिंदी 41

2.1.4 हिंदी का सच 43

2.1.5 हिंदी के विविध रूप 44

2.1.6 अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी 46

2.1.7 ज्ञान की भाषा के रूप में हिंदी 48

2.1.8 हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चुनौतियाँ और अवसर 49

2.2 — संविधान और शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ों में भाषा **53**

2.2.1 डॉ. राधाकृष्णन कमीशन (1948) 54

2.2.2 कोठारी आयोग (1964-66) 55

2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा कार्ययोजना (1992) 57

2.1 — हिंदी भाषा की स्थिति

हिंदी के मौजूदा स्वरूप के पीछे उसके बनने-सँवरने की सदियों पुरानी कथा निहित है। भारतीय प्रायद्वीप में यह भाषा अनेक युगांतकारी बदलावों की हमसफ़र रही है। आज व्यवहृत होने वाली खड़ी बोली हिंदी की आरंभिक उपस्थिति संभवत: सबसे पहले अमीर खुसरो में नज़र आई। अनेक सोपानों को तय करती हुई हिंदी आज़ादी की लड़ाई के दौरान परवान चढ़ी। चूँकि भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त रूप है, लिहाज़ा वह जनभावनाओं को समाहित कर अपनी विकास-यात्रा संभव करती है। यही कारण है कि भारतीय संदर्भ में अनेक बार भाषा की जड़ता से संघर्ष को युगधर्म माना गया और उसे मनुष्य मुक्ति के विभिन्न संदर्भों से जोड़ा गया। शायद भाषा की इसी महत्ता को लक्षित करते हुए भारतेंदु जैसे महत्वपूर्ण नवजागरणकालीन साहित्यकार ने कहा —

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।

— भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतेंदु समग्र, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1989:24

संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं (असमिया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू) के बीच हिंदी केंद्रीय महत्व की भाषा है। वह विस्तार की दृष्टि से देश के सबसे बड़े भू-भाग की भाषा है। भारत के ग्यारह प्रदेशों (उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली तथा अंडमान-निकोबार द्वीप समूह) की प्रधान भाषा होने का गौरव हिंदी को प्राप्त है। आबादी का 42.88 प्रतिशत हिस्सा हिंदी जनसंख्या है।

— भारत सरकार गृह मंत्रालय, जनगणना 2001

ज़ाहिर है वह समर्थ अभिव्यक्ति जिसमें जन आकांक्षाओं की तपिश हो वह किसी समाज की समग्र चिंताओं और सपनों में निर्णायक भूमिका अदा करती है। हिंदी भाषा ने भी भारतीय संदर्भ में आज़ादी की लड़ाई के दौरान अपनी इस भूमिका का बखूबी निर्वहन किया। आज़ादी के बाद विराट जन समूह की भाषा हिंदी ने कई सोपानों का सफ़र तय किया। आज हिंदी, चीनी के बाद विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली

भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। भारत के अलावा फिजी, मॉरिशस, गयाना और सूरीनाम जैसे देशों में रहने वाले तकरीबन साठ करोड़ लोगों की भाषा हिंदी है। हिंदी की वह विकास गाथा जो साम्राज्यवादी मंसूबों से संघर्ष की अभिव्यक्ति भाषा के रूप में परवान चढ़ी वह आज विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। इस यशस्वी यात्रा के साथ ही उन चुनौतियों को भी हम नहीं भूल सकते जो हिंदी के सामने विभिन्न रूपों में मौजूद हैं।

हिंदी भाषा के विभिन्न संदर्भों के बारे में जब हम विचार करते हैं तो कई सवाल सहसा हमारी आँखों के सामने उभरने लगते हैं, जैसे– कैसे स्वाधीनता की लड़ाई के आरंभिक दौर में ही भारत के राष्ट्रवादी नेताओं और विचारकों के मन में यह बात आई कि हम अपने अंत:प्रांतीय संपर्क के लिए हिंदी को चुनें। स्वाधीनता के बाद कैसे राष्ट्रभाषा हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई और फिर विभिन्न चुनौतियों से भी घिरी। कैसे समय की ज़रूरतों और नए तरह के अस्मिताबोध के आलोक में हिंदी के विविध रूप सामने आए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का कैसा फ़लक बना। ज्ञान की भाषा के रूप में हिंदी की स्वीकार्यता की क्या स्थिति बनी। हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की कौन सी चुनौतियाँ उभरीं और उनका निदान क्या है।

2001 की जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक भारत के राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में चार भाषा परिवारों (भारोपीय, द्रविड़, मुंडा या आस्ट्रिक और तिब्बती चीनी परिवार) की 234 मातृभाषाएँ, 100 वर्गीकृत भाषाएँ और 10 लिपियाँ हैं। ऐसे बहुभाषिक देश में निश्चित तौर पर भाषायी अस्मिता का सवाल बेहद संश्लिष्ट है। भाषायी अस्मिता का मतलब है– भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। भाषा की यही पहचान सत्ता के नियामक-तंत्र से भी जुड़ी है। भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के लिए जब एक भारतीय भाषा को प्रतीक रूप में स्वीकारने-पहचानने का गंभीर मसला सामने आया, तब हिंदीतर क्षेत्रों में हिंदी के पक्ष में आवाज़ें मुखर हुईं और स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हिंदी राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा के रूप में उभरी।

स्वाधीनता संग्राम की भाषा के रूप में हिंदी की सांस्कृतिक परंपरा और राष्ट्रीय अस्मिता ने ब्रितानी शासन के खिलाफ़ उसे राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा से जोड़ा। स्वाधीनता के बाद हिंदी की विकास यात्रा अतीत की गौरवशाली उपलब्धियों, नए राष्ट्र की शासकीय भाषा, अन्य भारतीय भाषाओं के बीच उसकी उपस्थिति, अंग्रेज़ी के यथार्थ, ज्ञानार्जन की भाषा, भूमंडलीकृत बाज़ार व्यवस्था के अनुरूप भाषा और जन आंदोलन की भाषा के साथ हिंदी अध्ययन-अध्यापन से जुड़े सरोकारों के साथ आगे बढ़ी। इन सबके बीच हिंदी के अनेक रूपों की मुखर उपलब्धियाँ हमारे सामने आईं।

हिंदी को राष्ट्रव्यापी भाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा बनने का गौरव मिला। व्यापार, जनसंचार एवं राजनीति की दृष्टि से वह देश की संपर्क भाषा है। उल्लिखित सभी संदर्भों में हिंदी को देखना-समझना बेहद विचारोत्तेजक और दिलचस्प अनुभव है।

2.1.1 स्वतंत्रता से पहले की हिंदी

यह एक दिलचस्प और उल्लेखनीय सच्चाई है कि हिंदी के विकास में केंद्रीय भूमिका हिंदीतर क्षेत्रों ने निभाई। मध्यकाल में यह केंद्र हैदराबाद था तो औपनिवेशिक काल में यह केंद्र कोलकाता बना। वहीं आज़ादी के बाद यह केंद्र बनने का अवसर मुंबई को मिला। मुगल शासन के उत्तरार्द्ध में शासन के प्रभाव में खड़ी बोली गद्य को फ़ारसी रंग में ढालने के बहुतेरे प्रयास किये गए। खड़ी बोली की उर्दू शैली के विकास के पीछे ऐसी ही परिस्थितियाँ मौजूद थीं। कहना न होगा उर्दू के पीछे कोई धार्मिक कारक मौजूद नहीं थे, बल्कि इसके पीछे सांस्कृतिक और प्रशासनिक कारक थे। ब्रितानी हुकूमत के दौरान शासन के राज-काज की भाषा अंग्रेज़ी हो गई। फ़ारसी और अंग्रेज़ी दोनों से भारत की बहुसंख्यक जनता को अपनापन महसूस नहीं होता था। साथ ही संस्कृत भी अपने आभिजात्यवादी रूप के कारण जनता के दु:ख-दर्द, आकांक्षा और प्रतिरोध की भाषा नहीं लगती थी। इन सबके बीच ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ़ भारतीयों में स्वाधीनता की चेतना उभरनी शुरू हुई। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के मनीषियों में जब नवजागरण की चेतना प्रतिरोध की संस्कृति में रूपांतरित होने लगी, तब ऐसी संपर्क भाषा की ज़रूरत महसूस हुई, जो न केवल पूरे भारत में संवाद भाषा की सामर्थ्य रखती हो, बल्कि जो विदेशी भाषा के समानांतर देशज भाषा की अस्मिता से भी संपन्न हो। यह सुखद संयोग था कि हिंदी के इस रूप को सबसे पहले जिन मनीषियों ने पहचाना वे हिंदीतर क्षेत्र के थे।

अखिल भारतीय संपर्क-भाषा की ऐतिहासिक ज़रूरत और हिंदी

यह एक तथ्यात्मक सच्चाई है कि हिंदी के विकास में राज्याश्रय का कोई योगदान नहीं रहा। इसके विपरीत हिंदी सर्वाधिक मुखर रूप में उस समय बलशाली होकर प्रकट हुई जब वह साम्राज्यवादी मंसूबों के खिलाफ़ उठी। राजनीतिक रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा के साथ ही हिंदी का राष्ट्रभाषा रूप सामने आया।

1857 के स्वाधीनता संघर्ष के बाद यह धारणा और बलवती हुई कि राष्ट्रीय सम्मान और राजनैतिक अभियान की दृष्टि से राष्ट्रभाषा के रूप में किसी एक भाषा को आपसी संवाद की भाषा का दर्जा दिया जाय। भावनात्मक एकता के लिए राज्याश्रय की अंग्रेज़ी के समांतर अपनी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण हिंदी ने अखिल भारतीय संपर्क-भाषा की ऐतिहासिक ज़रूरत को पूरा किया। राष्ट्रीय चेतना का जैसे सबसे पहले विकास बंगाल में हुआ, वैसे ही हिंदी के अखिल भारतीय संपर्क रूप की भी सबसे पहले पहचान बंगाल में ही हुई। हिंदी के सबसे पहले पत्र की शुरुआत भी कलकत्ता (कोलकाता) में ही हुई। कानपुर के पं. युगल किशोर शुक्ल ने 1826 में कलकत्ता से **"उदंत**

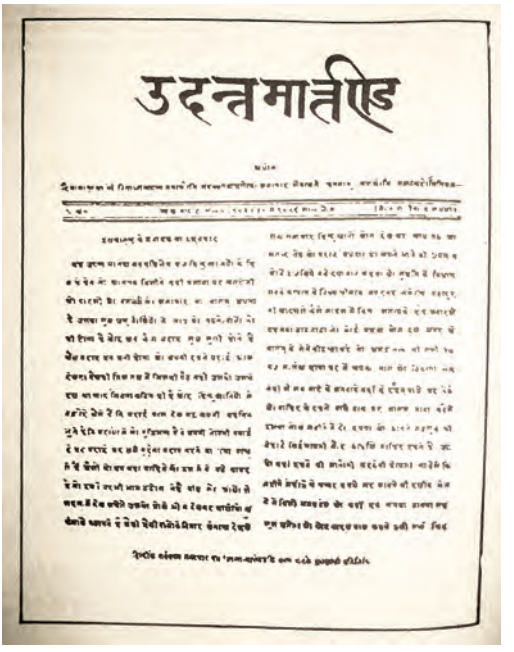
उदन्तमार्तण्ड

मार्तंड'' नामक पत्र निकाला। प्रसंगवश हिंदी के सबसे पहले छापेखाने की शुरुआत कलकत्ता में हुई और 'सबसे पहले हिंदी को एम.ए. के लिए एक स्वतंत्र विषय का दर्जा भी कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही मिला'।

ब्रह्म समाज के केशवचंद्र सेन ने 1873 में 'सुलभ समाचार' में राष्ट्रीय एकता के उपाय की चर्चा करते हुए लिखा, ... "उपाय है, सारे भारत में एक ही भाषा का व्यवहार, अभी जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं उनमें हिंदी भाषा लगभग सभी जगह प्रचलित है। इस हिंदी को अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाया जाय, तो यह काम सहज ही और शीघ्र संपन्न हो सकता है।" उसी तरह 'वंदेमातरम' के रचनाकार बंकिमचंद्र चटर्जी ने 'बंगदर्शन' में लिखा, "हिंदी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के मध्य में जो एक्य-बंधन संस्थापन करने में समर्थ होंगे, वही सच्चे 'भारत बंधु' पुकारे जाने के योग्य हैं।" [1] इस क्रम में उन विचारकों की लंबी फ़ेहरिस्त बनाई जा सकती है, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी, जैसे– श्री अरविंद, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, शिक्षाविद् टी. विजयराघवाचार्य, डॉ. भंडारकर, कन्हैयालाल मुंशी, रवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, दयानंद सरस्वती, सुभाषचंद्र बोस इत्यादि।

इस तरह हिंदी की जनोन्मुखता की शक्ति को पहचानते हुए 19वीं सदी में ही इसे संपर्क-भाषा के रूप में भारतीय मनीषा ने व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया

साम्राज्यवादी दमन बनाम प्रतिरोध की भाषा

महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन के पहले ही राष्ट्रभाषा हिंदी, स्वतंत्रता और सामान्य जन की अवधारणा को अभिन्न करार दिया और कहा, ''मेरे लिए हिंदी का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है।'' साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ़ हिंदी ने प्रतिरोध की भाषा की भूमिका को बखूबी निभाया। इसके पहले ही भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने युग के हिंदी साहित्य से एक नया भावबोध जोड़ा। यह भावबोध देशप्रेम था जो देश के यथार्थबोध पर आधारित था। भारतेंदु

1. स्रोत— डॉ. हरदेव बाहरी, हिंदी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद 2000:156-157

युग के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी की जनोन्मुख राष्ट्रीयता को विशिष्ट ढंग से प्रकट किया। हिंदी भाषा की चेतना के विकास में शुरुआती पत्र-पत्रिकाओं ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वयं भारतेंदु ने, *'कविवचन सुधा'*, *'हरिश्चंद्र मैगजीन'*, *'बालाबोधिनी'* जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी की प्रतिरोधी चेतना का विकास किया। राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग सभी महानायक किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से ज़रूर संबद्ध रहे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। इस अर्थ में हम गांधी को समकालीन भारत का सबसे बड़ा और यशस्वी पत्रकार कह सकते हैं। साम्राज्यवादी प्रतिरोध के इस हिंदी स्वरूप को हम गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, प्रताप नारायण मिश्र, शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद और रामवृक्ष बेनीपुरी के सरोकारों में बखूबी पहचान सकते हैं। उस समय की उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं में 'स्वतंत्र' (कलकत्ता), 'आज', 'सुधाकर', 'हंस' (बनारस), 'प्रताप' (कानपुर), 'कर्मवीर' (खंडवा), 'सैनिक', 'प्रजा हितैषी' (आगरा), 'केसरी' (पूना), 'जागरण' (झाँसी), 'सरस्वती' (इलाहाबाद) इत्यादि शामिल हैं।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विकास में कतिपय संस्थाओं ने अविस्मरणीय योगदान दिया। इन संस्थाओं में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति, हिंदी प्रचार सभा-मद्रास और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा के नाम उल्लेखनीय हैं। 'इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के समानांतर हिंदी पहले संपर्क भाषा और फिर संपूर्ण राष्ट्र की भाषा के रूप में विकसित-संवर्द्धित होती रही।' कालांतर में **14 सितंबर, 1949** को भारतीय संविधान सभा ने संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दी। यह हिंदी की राष्ट्रीय छवि का ही कमाल था कि एक हिंदीतर क्षेत्र के मनीषी श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने यह प्रस्ताव रखा था।

दिनकर ने इस सिलसिले में बेहद मूल्यवान टिप्पणी की, उन्होंने कहा, "वास्तव में स्थिति यह है कि भाषा के क्षेत्र में भारतीय एकता का जो महल तैयार हो रहा है, उसमें ईंट और पत्थर ढोने से लेकर गारा और चूना पहुँचाने तक का सारा कार्य अहिंदीभाषी लोग कर रहे हैं।"

राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता, नयी दिल्ली,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987

2.1.2 स्वतंत्रता के बाद की हिंदी

स्वाधीनता के बाद की हिंदी की विकास-यात्रा की अनेक तस्वीरें हैं। संविधान सभा ने उसे राजभाषा स्वीकार करने का निर्णय लिया। भारत में केवल एक परिवार की ही नहीं, बल्कि चार विश्वभाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। ये भाषा-परिवार आपस में इतने अलग हैं कि उनकी संरचना तक साफ़ तौर पर एक-दूसरे से अलग नज़र आती है। संविधान की आठवीं अनुसूची की संकल्पना द्वारा भाषाओं के सहअस्तित्वपूर्ण विकास की संकल्पना की गई। ज्ञान की भाषा के रूप में हिंदी विकसित हो इसके लिए अनेक प्रयास हुए।

एक सच्चाई यह भी है कि हिंदी में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण जब हुए और तत्समबहुल भाषा को नियामक भाषा के रूप में प्रयोग किया जाने लगा तब हिंदी के उस रूप के प्रति एक अविश्वास का भी माहौल बनने लगा जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। कहना न होगा हिंदी के इस सृजन-परिदृश्य में हिंदी के उस रूप का ध्यान नहीं रखा गया जिस रूप का स्वभावत: आज़ादी की लड़ाई के दौरान व्यापक भारतीयों द्वारा प्रयोग हुआ था या जिस हिंदी का प्रयोग गांधी जैसे राष्ट्रनायकों एवं भारतेंदु और प्रेमचंद जैसे रचनाकारों-विचारकों ने किया था। जिसे हिंदुस्तानी भी कहा जाता था। यहीं यह याद कर लेना प्रासंगिक होगा कि इस हिंदी के प्रति अविश्वास का एक बड़ा कारण परिधि में सीमित वह हिंदी रूप है जो आम आदमी की भाषा और संवेदना से दूर है। अब स्थितियों में व्यापक बदलाव आया है जहाँ हिंदी की मौजूदा स्थिति में वही स्वरूप मुख्य धारा के विमर्श का है जो संस्कृत के प्रभाव से मुक्त है। 'इस कामयाबी के सबूत के रूप में हम हिंदी साहित्य और पत्रकारिता की स्थापित और समाजविज्ञान की बनती हुई भाषा को ले सकते हैं।'

कृष्ण कुमार ने हिंदी के इस रूप के निहितार्थों और फलश्रुतियों का सटीक विश्लेषण 1990 में अपने शोध 'हिंदू रिवाइवलिज़्म एंड एजुकेशन इन नॉर्थ सेंट्रल इंडिया' में बखूबी किया है। इसी क्रम में आलोक राय की बहुउद्धृत पुस्तक 'हिंदी नैशनलिज़्म' का उल्लेख किया जा सकता है। (देखिए — कुमार कृष्ण, हिंदी का सपना, स्कूल की हिंदी, राजकमल प्रकाशन, 1996:129)

2.1.3 अन्य भाषाएँ और हिंदी

हिंदी एवं सहभाषाओं का संबंध

हिंदी भाषा और साहित्य के सागर में अनेक सहभाषाओं की नदियाँ मिलती हैं। जैसे —हिंदी के निर्माण में खड़ी बोली, कौरवी के साथ-साथ ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, राजस्थानी आदि भाषाओं का योगदान अविस्मरणीय है। मध्यकाल की साहित्यिक विरासत में अवधी, ब्रजभाषा और आधुनिक काल की विरासत में खड़ी बोली या कौरवी

की मौजूदगी को हम हिंदी एवं सहभाषाओं के संबंधों के आलोक में देख सकते हैं। हिंदी की विरासत में सहभाषाओं से उसका रिश्ता द्वंद्वात्मक कहा जा सकता है। (विस्तार इकाई 4 में देखें)।

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध

अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी के रिश्ते को हम अनेक संदर्भों में देख सकते हैं। अनेक भारतीय भाषाओं की लिपि और हिंदी की लिपि एक ही लिपि है। यानी हिंदी समेत संस्कृत, मराठी, नेपाली, मैथिली और गुजराती की लिपि **देवनागरी** लिपि है। उसी तरह हिंदी समेत अनेक भारतीय भाषाओं में संस्कृत से आए शब्दों की थाती है। मलयालम, तेलुगु, बांग्ला, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं में व्यवहृत होने वाले शब्दों का बड़ा भंडार संस्कृत से आया है। आरंभिक हिंदी पत्रकारिता में 'बाबूराव विष्णुराव पराड़कर' (मराठी) का 'योगदान मील का पत्थर है', उसी तरह बांग्लाभाषी क्षेत्र कोलकाता से ही हिंदी का पहला अखबार 'उदंत मार्तंड' प्रकाशित हुआ था। अन्य भारतीय भाषाओं और हिंदी के संबंध पर इस अध्याय में विभिन्न प्रसंगों में अन्य स्थानों पर भी चर्चा की गई है।

हिंदी-अंग्रेज़ी संबंध

हिंदी की इस यात्रा को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए ज़रूरी है कि हिंदी-अंग्रेज़ी के संश्लिष्ट रिश्ते पर भी एक नज़र डाली जाय। एन.सी.ई.आर.टी. ने 2008-2010 के दौरान एक राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन देश के विभिन्न हिस्सों में किया, जिसका विषय था– 'समझ का माध्यम'। इस दौरान जो अध्ययन और विश्लेषणजनित अनुभव हासिल हुए उनसे अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हुए। उनके आलोक में हिंदी-अंग्रेज़ी संबंधों को परखना 'मौजूँ' होगा। आज़ादी के पहले तक अंग्रेज़ों की खिलाफ़त तो हुई पर अंग्रेज़ी की नहीं। 'महात्मा गांधी, नेहरू, अंबेडकर, भगत सिंह अंग्रेज़ों की खिलाफ़त करते रहे पर अंग्रेज़ी की कभी नहीं की। आज़ादी के संघर्ष के दौरान सक्रिय स्वाधीनता सेनानी हिंदी और आज़ादी दोनों के प्रति समर्पित थे'।[2] उनके मन में अपनी भाषा के प्रति प्रेम था, जिसके लिए वे अनेक तरह से सक्रिय थे। पर वे अंग्रेज़ी से नफ़रत नहीं करते थे। इस दरमियान अनेक वैज्ञानिकों ने अपनी भाषा में रचना की। उदाहरण के लिए जगदीशचंद्र बसु ने अपनी भाषा बांग्ला में अनेक पुस्तकें लिखीं। पर आज़ादी के बाद स्थितियों में बदलाव आया। अधिकांश समाजवैज्ञानिकों, इतिहासकारों और वैज्ञानिकों ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी में लेखन किया। 1967 के बाद हिंदी-अंग्रेज़ी के रिश्ते में एक बड़े बदलाव को घटित होते देखा गया। अंग्रेज़ी के प्रति ज़बरदस्त घृणा का माहौल बना। बिहार और उत्तर प्रदेश में अंग्रेज़ी के खिलाफ़ आंदोलन चलाए गए। विद्यालयी शिक्षा में पहली से

2. स्रोत— प्रो. सिंह संध्या, समझ का माध्यम, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

पाँचवीं तक अंग्रेज़ी शामिल नहीं थी। इस दौर में समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया। एक वर्ग अंग्रेज़ी में काम करने वाला और दूसरा वर्ग इसकी मुखालफ़त करने वाला। यह दौर तकरीबन बीस वर्षों तक चला।

1987 के बाद एक अलग दौर की शुरुआत हुई। 'इलेक्ट्रॉनिक और नयी मीडिया की दुनिया का जनता पर ज़बर्दस्त असर दिखा'। लोगों को ऐसा लगने लगा कि अंग्रेज़ी के बिना उनके बच्चे पिछड़ जाएँगे। बच्चे अंग्रेज़ी गलत बोलें या सही पर फ़र्राटेदार बोलें। ऐसा लोगों को विश्वास हो गया कि 'बिना अंग्रेज़ी के जीवन में आर्थिक-सामाजिक हैसियत पाना संभव नहीं।' यह दौर अभी भी जारी है। पर असली सवाल यह है कि जो सामाजिक-आर्थिक संरचना तैयार हो रही है, उससे गुज़रकर रोजी-रोटी के लक्ष्य तो हासिल हो जाएँगे, पर समझ कैसे बन पायेगी? यह शोध का विषय हो सकता है कि 'भारत ने आज़ादी के बाद कितने वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री या समाजशास्त्री दिए।' विशेषज्ञों की राय है कि ऐसा इसलिए हुआ कि शुरुआती दौर में मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी गई।

अंग्रेज़ी-हिंदी के संश्लिष्ट संबंधों के विश्लेषण क्रम में कुछ ध्यान देने लायक बातें ज़रूर याद रखनी चाहिए। एक तो यह कि दुनिया में अनेक ऐसे देश हैं, जिन्होंने अपनी भाषा के प्रति सम्मानपूर्ण दृष्टि रखते हुए विकास की दौड़ में अपनी सार्थकता साबित की। दूसरे यह कि अपनी भाषा से प्रेम का यह अर्थ नहीं है कि अन्य भाषाओं के प्रति द्रोह रखा जाय। साथ ही यह भी कि दूसरी भाषाओं से संपर्क के क्रम में नए शब्द गढ़ने की रचनात्मकता बरकरार रखी जाय। जैसे - अंग्रेज़ी के ऑफ़िसर से हिंदी का अफ़सर बना या रिपोर्ट से रपट। पिछले कुछ दशकों से इस आत्मविश्वास में लगातार कमी आ रही है। उदाहरणस्वरूप अंग्रेज़ी के रशिया को रूस या केनेडा को कनाडा लिखने-कहने का चलन कम हो रहा है।

2.1.4 हिंदी का सच

सच तो यह है कि 'आज की हिंदी की पहुँच बहुत तेज़ी से बढ़ रही है।' कहना न होगा आत्मविश्वास से संपन्न इस हिंदी का स्वरूप पुरानी हिंदी से अलग है। दिनोदिन ऐसे कर्मियों की संख्या बढ़ रही है। यह हिंदी विस्तार का नया दौर है, जिसमें अनेक तथ्यात्मक सच्चाइयाँ शामिल हैं–देश के दस चोटी के दैनिकों में ऊपर के चार हिंदी के हैं। 'राजस्थान पत्रिका' जैसे हिंदी अखबार के स्थानीय संस्करण अहिंदीभाषी क्षेत्रों जैसे– चेन्नई, बंगलौर एवं कोलकाता से भी निकल रहे हैं। उसी तरह हिंदी के अनेक दैनिकों के अंतर्राष्ट्रीय संस्करण भी निकल रहे हैं। देश में सर्वाधिक समाचार और मनोरंजन चैनल हिंदी के ही हैं। हिंदी फ़िल्मों की व्यापक लोकप्रियता का बढ़ता फ़ैलाव हिंदी के एक अन्य सच का आख्यान है। केरल के मलयालम मनोरमा जैसे संस्थान हिंदी में अपनी वार्षिकी प्रकाशित कर रहे हैं। आज का एक सच यह भी है कि किसी भी साहित्यिक और अन्य अनुशासन

की गैर-हिंदी रचनाएँ जब तक हिंदी में अनूदित होकर नहीं छपती हैं, तब तक उनकी अखिल भारतीय पहचान नहीं बन पाती। तात्पर्य यह है कि तमाम चुनौतियों के बावज़ूद हिंदी के विकास की अनेक संभावनाएँ तेज़ी से विकसित होती नज़र आ रही हैं।

2.1.5 हिंदी के विविध रूप

हिंदी बहुरूपी है। संपर्क भाषा, राजभाषा, प्रयोजनमूलक भाषा, शिक्षायी हिंदी, अंतर्राष्ट्रीय भाषा, ज्ञान की भाषा और वाणिज्य-व्यवसाय की भाषा जैसे संदर्भों में हम हिंदी की पहचान बखूबी कर सकते हैं। हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में विभिन्न रूपों में विकसित हुई जो एक अर्थ में जनतांत्रिक विकास की विशिष्ट कसौटी कही जा सकती है। बांग्ला, असमिया

> *"रामशरण जोशी ने लिखा है, — यह हिंदी के उत्सव का समय है। बाज़ार ने हिंदी की व्याप्ति बढ़ाई है। इसकी उपलब्धियाँ हैं, समस्याएँ भी हैं। हिंदी प्रिंट मीडिया में विस्फोट है। नयी पीढ़ी हिंदी मीडिया में अपना प्रतिबिंब देखना चाहती है। यह सिर्फ़ हिंदी पट्टी की भाषा नहीं रह गई है। इसका अपना एक स्वतंत्र गणतंत्र बन चुका है। हिंदी एक उत्सव का नाम है। वे खुद को हिंदीकर्मी कहते हैं।"*
>
> *— जोशी रामशरण, आइए हिंदी का शोकगीत नहीं उत्सव गीत गाएँ, वाक्-2, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली*

और उड़िया के संपर्क में विकसित होने वाली हिंदी का स्वरूप अलग है तो पंजाबी एवं डोगरी जैसी पश्चिमोत्तर भाषाओं के संपर्क की हिंदी का रूप अन्य ढंग से विशिष्ट है। उसी तरह द्रविड़ भाषाओं जैसे तेलुगु के संपर्क की हिंदी और सुदूर पश्चिम की मराठी और कोंकणी के संपर्क की हिंदी का रूप अलग तरह की सुंदरता धारण किये हुए है। कुल मिलाकर हिंदी के मोटे तौर पर चार या पाँच रूप ऐसे हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में बने-सँवरे।

संपर्क भाषा वह भाषा है, जो समाज के विभिन्न तबकों के बीच संपर्क के लिए प्रयोग में लाई जाती है। हिंदी, इस लिहाज़ से हिंदी-प्रदेशों के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों में बतौर संपर्क भाषा व्यवहार में लाई जाती है। संपर्क भाषा का एक अन्य अर्थ में भी प्रयोग होता है। शासन के विभिन्न अंगों के बीच आपसी संवाद के लिए जिस राजभाषा का प्रयोग किया जाता है वह भी संपर्क भाषा ही है। हिंदी इस रूप में भी व्यवहार में लाई

जाती है। हम यह जानते हैं कि हिंदी औपचारिक रूप में बतौर राजभाषा प्रयोग में लाई जाती है। फिलहाल अनौपचारिक संदर्भ में हिंदी के संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग पर एक नज़र डालना मुनासिब होगा। भारत के सार्वजनिक जीवन में प्राय: हिंदी या अंग्रेज़ी ही बतौर संपर्क भाषा प्रयोग में लाई जाती है। इसके पीछे दरअसल वह विरासत मौजूद है जिसकी शुरुआत बीती शताब्दी के आरंभिक दशकों में हुई थी।

स्वैच्छिक हिंदी संस्थानों और स्कूली शिक्षा के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में हिंदी के व्यापक प्रशिक्षण दिए गए। बड़ी संख्या में लोगों ने हिंदी सीखी और हिंदी भाषा का व्यापक प्रसार हुआ। हिंदी के संपर्क भाषा के रूप में विकसित होने में हिंदी से संबंधित विभिन्न स्रोतों जैसे- सिनेमा और धारावाहिकों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा। वस्तुत: 'हिंदी भारत के सामूहिक मन की सशक्त अभिव्यक्ति है' जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 351 में लक्षित किया गया है– हिंदी देश की सामासिक संस्कृति की वाहक है।[3] 'हिंदी के **राजभाषा** रूप पर अनेक विचार प्रकट किए गए। फिलहाल इन चर्चाओं से अलग कुछ बुनियादी बातों को जान लेना आवश्यक होगा। संविधान के अनुसार हिंदी भारतीय गणराज्य की राजभाषा है। इस भूमिका में वह केंद्र सरकार के कार्यालयों की भाषा है, देश के कानून की भाषा है और उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय को' अभिलेखों के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है। यही कारण है कि संघ-शासन के इन तीनों अंगों से जुड़े हुए व्यक्तियों से यह उम्मीद की जाती है कि वे इसके भाषायी रूप से परिचित हों और इसके माध्यम से यथासंभव काम करें।

राजभाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने के लिए केंद्र सरकार ने अनेक योजनाएँ चलाईं। विधि, विज्ञान, प्रशासन तथा अन्य सरकारी उपक्रमों से जुड़े संदर्भों के लिए विभिन्न अनुवाद-आधारित पुस्तकें-पुस्तिकाएँ तथा निर्देश तैयार हुए। हिंदी के इस नए स्वरूप के प्रति लोगों के मन में सहज ही अपरिचय का बोध हुआ, लोगों को लगा कि यह बोलचाल की भाषा से अलग कोई भाषा है। इस कथन में संभव है सच्चाई भी हो, पर यहाँ यह समझ लेना ज़रूरी है कि प्रयोग के प्रति यदि संजीदा हुआ जाय तो एक हद तक समस्याएँ दूर होंगी और विकल्प के अवसर भी सुगमता से साथ निभाएँगे।

प्रयोजनमूलक भाषा का तात्पर्य हुआ 'हिंदी का वह रूप जिससे विशेष प्रयोजन हल होते हैं।' इसके लिए कई बार 'कामकाजी हिंदी' या 'व्यावहारिक हिंदी' जैसे पदों का प्रयोग भी किया जाता है। 'अब हिंदी केवल साहित्यिक भाषा नहीं रही। वह रोज़गार के अनेक अवसरों के लिए दक्ष बनाने वाली भाषा भी है'। इस उद्देश्य को साधने के लिए ही हिंदी का प्रयोजनमूलक रूप उभरा। प्रयोजनमूलक हिंदी के अनेक क्षेत्र हैं – प्रशासनिक हिंदी, कार्यालयी हिंदी, जनसंचार माध्यमों की हिंदी, विज्ञापनी हिंदी, तकनीकी हिंदी, वैज्ञानिक हिंदी, वाणिज्यिक हिंदी, विधिक हिंदी इत्यादि। विभिन्न शिक्षा संस्थानों में

3. स्रोत — बाहरी हरदेव, हिंदी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000:140

प्रयोजनमूलक हिंदी के लोकप्रिय पाठ्यक्रम इस बात के गवाह हैं कि पिछले कुछ दशकों में हिंदी में रोज़गार के अवसर बढ़े हैं। यह साफ़तौर पर महसूस किया जा सकता है कि बाज़ार की भाषा के रूप में भी हिंदी की स्वीकार्यता के नए क्षितिज उभरे हैं। टेलीविज़न के विज्ञापन, खबरिया चैनलों की तेज़ी से बढ़ती लोकप्रियता और धारावाहिकों का बढ़ता दायरा जैसे अनेक क्षेत्रों में रोज़गार की संभावनाओं के नए अवसरों ने हिंदी पठन-पाठन के सर्वथा नए संदर्भों का सृजन किया है।

हिंदी के विभिन्न रूपों पर विचार क्रम में यह भी देखने की कोशिश की जाय कि **ज्ञान-विज्ञान की भाषा** के रूप में हिंदी की स्थिति कैसी है? हिंदी क्षेत्र की ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में बढ़ती दिलचस्पी के आलोक में परिदृश्य को परखने की कोशिश की जाय। इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी और प्रबंध विज्ञान जैसे अनुशासनों पर हिंदी में पुस्तकें आ रही हैं। यद्यपि इनमें ज़्यादातर पुस्तकें अनूदित हैं, पर अब मौलिक पुस्तकों का लेखन भी शुरू हो चुका है। अब हिंदी के प्रकाशक साहित्येतर पुस्तकें प्रकाशित करने में खासी दिलचस्पी ले रहे हैं। अंग्रेज़ी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिखने वाले चिंतकों की यह ख्वाहिश होती है कि उनका लेखन हिंदी में ज़रूर प्रकाशित हो। फिर भी यह सच है कि आज हिंदी में मौलिक चिंतन तथा ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें बहुत कम लिखी जा रही हैं। संभवत: इसका कारण यह हो कि हमारे विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में भी शोध एवं ज्ञान-विज्ञान की भाषा मुख्यत: अंग्रेज़ी ही है। दूसरी बात यह कि अधिकांशत: रोज़गार की भाषा भी हिंदी या भारतीय भाषा नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी है। इससे हिंदी में मौलिक चिंतन तथा लेखन की क्षति होती है।

2.1.6 अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी

अंतर्राष्ट्रीय भाषा या **विश्वभाषा** किसे माना जाय, इसका कोई मान्य आधार नहीं है। एक विचार यह है कि 'जो भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्य हो, उसे विश्वभाषा कहें, लेकिन यदि इतिहास की तरफ़ नज़र डालें तो हम पाते हैं कि अनेक ऐसी भाषाएँ जिन्हें संयुक्त राष्ट्र

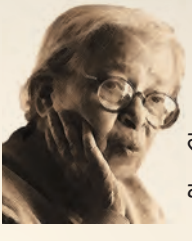

"मेरा सारा लेखन बांग्ला में है पर उनके हिंदी अनुवाद छपने के बाद ही मैं भारतीय लेखिका बन पाई। हिंदी में किताबों के छपते ही मैं भारत के कोने-कोने जानी गई।"

— देवी महाश्वेता, आइए हिंदी का शोकगीत नहीं उत्सव गीत गाएँ, वाक-2, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 70

संघ ने बहुत बाद में मान्यता दी उन्हें आरंभिक दौर में महज़ इसलिए विश्वभाषा का दर्ज़ा नहीं दिया गया क्योंकि वे पराजित राष्ट्रों की भाषाएँ थीं। इस क्रम में हम जर्मन और जापानी जैसी भाषाओं को याद कर सकते हैं। एकदम आरंभिक दौर में जिन पाँच भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मान्यता दी वे विजयी राष्ट्रों की भाषाएँ थीं। वे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और चीन की राजभाषाएँ थीं। यहाँ यह याद कर लेना भी ज़रूरी है कि इन देशों ने अपनी भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने के लिए व्यापक प्रयास भी किया। पर हिंदी के साथ ऐसी इच्छाशक्ति का प्राय: अभाव रहा। नागपुर से सूरीनाम और सूरीनाम से लंदन और लंदन से न्यूयार्क तक हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों के बावज़ूद हिंदी अभी भी संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषा का दर्ज़ा नहीं पा सकी। सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में यह बात ज़रूर उठाई गई कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषा का दर्जा दिलाने के लिए प्रयास किए जाएँ।

यह समझने की कोशिश की जाय कि क्या हिंदी में विश्वभाषा के गुण समाहित हैं ? भारत के अतिरिक्त *फीजी, मॉरिशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम* और *गुयाना* जैसे लगभग आधा दर्जन देशों में हिंदीभाषी बहुसंख्यक हैं। खाड़ी देशों में तीस लाख भारतीय हैं जिनकी नागरिकता भारत की है, उनमें अधिकांश लोगों की संवाद-भाषा हिंदी है। भारत के विभिन्न पड़ोसी देशों में तकरीबन बीस करोड़ लोग हिंदी समझते हैं और उनमें अधिकांश लोग बोल भी लेते हैं। दुनिया के लगभग पचास देशों में दो करोड़ से भी ज़्यादा भारतीय रहते हैं। भले ही उनकी ज़बान अन्य भारतीय भाषाएँ हों, पर उन्हें आपस में जोड़ने वाली भाषा हिंदी ही है। इस तरह संख्या-बल के आधार पर हिंदी दुनिया की महत्वपूर्ण भाषाओं में शुमार की जा सकती है।

मौजूदा दौर वैश्वीकरण का दौर कहा जाता है। यद्यपि प्रशासन और समाज में ऐसी राय रखने वाले बड़ी संख्या में हैं जो यह कहते नहीं अघाते कि 'हिंदी अपनी लड़ाई हार गई।'बावजूद इसके यह एक महत्वपूर्ण सच्चाई है कि किसी भी समाज निर्माण की एक प्रक्रिया होती है, जिसकी अनदेखी संभव नहीं। यह व्यावहारिक सच्चाई है कि यदि *अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी* या *मलेशिया* की कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी अपना उत्पाद भारतीय बाज़ार में बेचना चाहती है तो उसे अपने उत्पाद के बारे में विज्ञापन या समझ बनाने के लिए भारतीय भाषा पर ही आश्रित रहना होगा। यह अकारण नहीं है कि अमेरिका और जापान जैसे देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। बेशक उसके पीछे बाज़ार की सक्रिय भूमिका है।

आज हिंदी चैनल अंग्रेज़ी चैनलों के मुकाबले अधिक लोकप्रिय और व्यावसायिक रूप से सफ़ल हैं। एक दौर में यह भी लगा कि चैनलों के द्वारा जो हिंदी परोसी जा रही है वह भाषा संस्कार को क्षति पहुँचा रही है। उस भाषा के लिए 'हिंग्लिश' जैसी संज्ञा का प्रयोग किया गया। पर वह भाषा चली नहीं। 'मौजूदा दौर के हिंदी समाचार चैनलों की

भाषा हिंदी के नए दौर की वह सशक्त भाषा है जिससे हिंदी मन को अभिव्यक्त करना न केवल आसान है, बल्कि सटीक भी।' अंग्रेज़ी के समाचार पत्रों में महज़ दस साल पहले हिंदी के वाक्यांशों के प्रयोग की बात कोई सोच भी नहीं सकता था, पर अब 'अंग्रेज़ी के समाचार पत्रों में हिंदी शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग कोई अनोखी घटना नहीं रही'। पर यह भी सही है कि अभी भी हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनने की दिशा में गंभीर प्रयासों की ज़रूरत है। यह काम नामुमकिन तो नहीं पर मुश्किल ज़रूर है। हिंदी के विश्वभाषा स्वरूप पर विचार करने के पहले इन सभी पहलुओं से बाखबर होना ज़रूरी है।

2.1.7 ज्ञान की भाषा के रूप में हिंदी

वर्तमान शैक्षिक भाषा के रूप में हिंदी के बनने-सँवरने की एक लंबी कहानी है, जिसे विस्तार से समझने की ज़रूरत है। आधुनिक ढंग की भारतीय शिक्षा के मसले पर ब्रिटिश हुक्मरानों ने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सक्रिय हस्तक्षेप किया। हालाँकि इसके पहले पढ़ने-पढ़ाने के मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार ने 1813 में एक चार्टर जारी किया था। इस चार्टर को स्थायी पहचान 1854 के वुड्स डिस्पैच से मिली। यहाँ यह याद कर लेना लाज़मी होगा कि *वुड्स डिस्पैच* के पहले 'ईसाई मिशनरियों' ने शिक्षा प्रसार के लिए सरल हिंदी को अपना माध्यम बना लिया था। इन्हीं के द्वारा 1817 में 'कलकत्ता बुक सोसायटी' और इस प्रकार की अन्य संस्थाएँ 'आगरा बुक सोसायटी', 'नॉर्दन टेक्स्ट बुक सोसायटी' (इलाहाबाद) की स्थापना की गई थी। 1854 के वुड्स डिस्पैच के बाद सभी प्रांतों में अलग से शिक्षा विभाग बने। प्रारंभिक इतिहास से पता चलता है कि हिंदी की पाठ्यपुस्तकों के निर्माणकर्ता प्राय: शिक्षा विभाग के कर्मचारी ही रहे। सुप्रसिद्ध हिंदीसेवी 'राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद' इसी विभाग में *इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल* थे। 19वीं सदी के अंतिम वर्ष में देवनागरी को पश्चिमोत्तर प्रांत की कचहरी भाषा बनने का अवसर मिला।

1900 ई. में 'सरस्वती' के प्रकाशन से हिंदी भाषा और साहित्य को एक नयी दिशा मिली। 'आर्य समाज' ने हिंदी के लिए आर्य भाषा पदबंध का प्रयोग किया। हिंदी का संस्कृतनिष्ठ रूप आर्य समाज की सांस्कृतिक अस्मिता का अनिवार्य रूप था। इस बीच 1905 के बंग-भंग विभाजन के विरोध में उठे 'स्वदेशी' की भावना ने 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' की ज़रूरत को शिद्दत से महसूस किया। इसी कालखंड में मौजूदा हिंदी सर्वाधिक विश्वसनीय रूप से उभरी। इन परिस्थितियों में शिक्षायी हिंदी का जो रूप उभरा, उसे ही शिक्षायी हिंदी का पहला व्यवस्थित रूप माना जा सकता है। उभरते हुए राष्ट्र की भाषा के रूप में हिंदी की पहचान तो कर ली गई, लेकिन शिक्षायी हिंदी के विकास पर अंग्रेज़ी का प्रभाव रहा।

1920 के बाद का समय शिक्षायी हिंदी के लिए इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि 'इसी दौर में राष्ट्रीय आंदोलन की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को मान्यता मिली।' 1921 में जब ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ़ भारतीय जनता द्वारा **असहयोग आंदोलन** चलाया गया तब तत्कालीन सरकारी स्कूलों के समानांतर राष्ट्रीय विद्यापीठों (काशी, बिहार

> महात्मा गांधी ने काशी विद्यापीठ के स्थापना दिवस के अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा, "हमारी राष्ट्रीय भाषा हिंदुस्तानी है जिसे 21 करोड़ आदमी बोलते हैं।... हमें उर्दू और देवनागरी दोनों लिपि सीखना चाहिए। हमें वही हिंदी चलाना है, जिसमें संस्कृत और उर्दू मिली हो।"
>
> *— काशी विद्यापीठ पंचांग, 1922 ई.*

और गुजरात) की स्थापना की गई तब प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर हिंदी विषय अनिवार्य कर दिया गया। 1923 में पहली बार 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' में स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी की पढ़ाई आरंभ हुई। पर हिंदी का यह रूप कैसा था, इस पर एक नज़र डालना ज़रूरी है।

इस दिशा में वर्ष 1932 एक निर्णायक मोड़ है, जिसका सिरा तत्कालीन सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबद्ध है। 1932 के पहले तक हिंदी और उर्दू एक ही रीडर से पढ़ाई जाती थी। पाठों की विषयवस्तु और प्रस्तुति एक जैसी होती थी, केवल लिपि अलग-अलग हुआ करती थी। आगे चलकर ब्रितानी हुकूमत ने सहज ही उर्दू के अलग रीडर की माँग को स्वीकार कर लिया। इसी समय 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' ने हिंदी की अलग पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं। पढ़ाई की पहले से चली आ रही परिपाटियों में परिष्कार किया गया, जिन पर तत्कालीन सांस्कृतिक संदर्भों और विचाराधारा का प्रभाव पड़ा।

2.1.8 हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चुनौतियाँ और अवसर

हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चुनौतियों पर विचार करने के लिए ज़रूरी है कि उन पक्षों और ऐजेंसियों को रेखांकित किया जाए जो इसके साझेदार हैं। इसके साझेदारों में शिक्षक/शिक्षिकाएँ, अध्यापक-शिक्षा संस्थाएँ, पाठ्यपुस्तकें, भाषा की समझ आदि शामिल हैं। इसलिए हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चुनौतियों को समझने के लिए इनका या इनकी गतिविधियों का बारीकी से अवलोकन करने की आवश्यकता है। यहाँ पर हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की चार चुनौतियों पर विचार किया जा रहा है। विद्यार्थी-शिक्षक/शिक्षिकाएँ अन्य चुनौतियों की तलाश कर सकते/सकती हैं —

1. व्याकरण के प्रति दृष्टिकोण

हिंदी भाषा सीखने को उसके व्याकरणिक नियमों को सीखने के समतुल्य मानना एक ऐसी चुनौती है जिसका विस्तार व्यापक है। ऐसी समझ के पक्ष में हिंदी-शिक्षण से संबंधित साहित्य उपलब्ध है। इस प्रकार के साहित्य का उपयोग संदर्भ ग्रंथों के रूप में किया जाता है, जिसमें हिंदी के विविध उपयोगों की क्षमताओं का विकास करना हाशिए पर चला जाता है।

सवाल यह है कि यदि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि को जानना भाषा जानना है तो अपने अनुभवों का वर्णन कर सकना, तर्क कर सकना, प्रभावी तरीके से बात कहना आदि भाषा की बात है या नहीं? हिंदी सीखने को हिंदी का व्याकरण सीखना मानने का कक्षा में असर यह पड़ता है कि शिक्षक/ शिक्षिका का ध्यान व्याकरण संबंधी दोष निकालने पर अधिक जाता है और वे यह भूल जाते/ जाती हैं कि 'भाषा उपयोग की वस्तु है और कक्षा में उसके उपयोग के जितने अधिक अवसर मिलेंगे, भाषा उतनी ही समृद्ध होगी और उपयोग ही भाषा के रूप निर्धारित करता है।'

2. व्यवहारवादी मॉडल का दबाव

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2005 के बाद से ही भाषा के शिक्षण की प्रक्रिया को एक रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में समझने की बहस तेज़ हुई। हमारे कदम हिंदी की कक्षाओं को हिंदी के उपयोग तथा सृजन की कक्षाओं में बदलने की दिशा में अधिक तेज़ी से बढ़ने लगे, लेकिन इस प्रयास में व्यापक तौर पर स्वीकृत, शिक्षण का व्यवहारवादी मॉडल चुनौती पेश करता है। व्यवहारवादी मॉडल की बुनियादी मान्यता है कि विद्यार्थी को शिक्षक के द्वारा सिखाया जाता है। यानी वह बाहरी मदद के बिना कुछ भी नहीं सीख सकता/ सकती। किसी दिए गए वातावरण में विद्यार्थी की स्वयं जूझते हुए सीखने की क्षमता को यह मॉडल मान्यता नहीं देता। इस मॉडल के प्रभाव में हिंदी के शिक्षक/शिक्षिकाओं द्वारा किए जाने वाले अनेक व्यवहारों में से एक है - पाठ की व्याख्या करना। इस व्यवहार में यह मान्यताएँ निहित हैं कि–1) विद्यार्थी स्वयं नहीं समझ सकते/सकतीं, तथा 2) पाठ की एक ही व्याख्या संभव है। यह मॉडल एक ओर जहाँ विद्यार्थियों की जूझने की प्रवृत्ति को कमज़ोर करता है वहीं दूसरी ओर शिक्षक/शिक्षिका के भाषायी विकास में भी बाधा पहुँचाता है। इसलिए हिंदी पढ़ने-पढ़ाने के समक्ष यह चुनौती है कि शिक्षण के व्यवहारवादी मॉडल से निकलकर रचनात्मक और आलोचनात्मक मॉडलों की तरफ़ बढ़ा जाए।

रचनात्मक मॉडल शिक्षक और विद्यार्थी दोनों की भाषायी क्षमता को विकसित करने में मददगार हो सकता है। अर्थों को समझना, अर्थ संभावनाओं तक पहुँचना, समझने में लिखने वाले तथा पढ़ाने वाले के संदर्भों को ध्यान में रखना। इस प्रक्रिया में शब्दों की

विभिन्न शक्तियों का उपयोग करना आदि रचनात्मक मॉडल के आयाम हैं। रचनात्मक मॉडल को कक्षा - प्रक्रियाओं में शामिल करना एक चुनौतीपूर्ण काम है, क्योंकि रचनात्मक मॉडल की सतही व्याख्या काफ़ी प्रचलित हैं। इस व्याख्या में रचनात्मक मॉडल को दिखाई देने वाली भौतिक सक्रियता का पर्याय मान लिया जाता है। भाषा के शिक्षण में रचनात्मक मॉडल के परिप्रेक्ष्य को समझना स्वयं में एक चुनौती है। (इकाई तीन में विस्तार से चर्चा हुई है)

3. बहुभाषिकता और हिंदी

हिंदी सीखने-सिखाने के रास्ते में एक चुनौती है- हिंदी के समृद्ध और विविध भाषायी स्रोतों के प्रति बेरुखापन। हिंदी, विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं के साथ संवाद करते हुए विकसित हुई है, लेकिन विभिन्न भाषाओं के संवाद से युक्त हिंदी के कक्षा में उपयोग को आमतौर पर सराहा नहीं जाता। सराहना तो दूर की बात है, अनेक बार उसे उलाहना सहनी पड़ती है। इस बात को समझने के लिए आइए नीचे दिए वाक्यों पर विचार करते हैं —

वाक्य 1	''यद्यपि मेरा हाज़मा भी दुरुस्त है और मैंने डांटे की डीवाइना कमेडिया भी नहीं पढ़ी है फिर भी मैं सपना देख रहा हूँ।'' — भारती, 1998:95
वाक्य 2	''मछली मारकर लौटते समय रास्ते में रैयतों ने मिटिन किया था कि नए तहसीलदार के यहाँ नहीं जाएँगे। कुकरा का बेटा कालिया लीडरी करता है '' — रेणु, 1998:147
वाक्य 3	''विलियर्ड का राउंड समाप्त करके रावत अथितियों को लाउंज में ले गए। अगरवाला साहब ने तुरंत तारा के लिए पाइनेप्पल जूस का आर्डर दे दिया।'' — यशपाल, 2010:237

वाक्य 1, वाक्य 2, तथा वाक्य 3 हिंदी के समावेशी स्वरूप होने का प्रमाण हैं, लेकिन इस प्रकार की हिंदी के लिए आमतौर पर कक्षाओं में जगह नहीं होती, क्योंकि कक्षाओं में हिंदी की शब्द-संपदा के स्रोतों को सीमित किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह जान पड़ता है कि हिंदी की कक्षाओं में उस हिंदी को ही मान्यता देने की प्रथा चल पड़ी है, जिसका संबंध संविधान के अनुच्छेद 343 से है। यह अनुच्छेद हिंदी के राजभाषा होने से संबद्ध है। ऊपर जिन वाक्यों को दर्ज किया गया है वे संविधान की आठवीं अनुसूची में दर्ज हिंदी से अधिक संबद्ध हैं। जबतक कक्षाओं में हिंदी के सीखने को, हिंदी के राजभाषा के रूप में सीखने तक सीमित किया जाता रहेगा तबतक हमें उसके बहुभाषिक होने का उपयोग करने में मुश्किल पेश आएगी।

4. पाठ को लक्ष्य मानना

हिंदी की कक्षाओं में शिक्षण होता है या प्रशिक्षण ? इस प्रश्न के उत्तर को खोजने के लिए हमें कक्षाओं में पाठ के साथ किए जाने वाले व्यवहार का अवलोकन करना होगा। सामान्यत: यह पाया गया है कि पाठ को भाषा को समृद्ध करने के साधन के रूप में नहीं लिया जाता, बल्कि पाठ में दर्ज सूचनाओं को विद्यार्थियों तक पहुँचा देना ही लक्ष्य मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए पाठ के माध्यम से पढ़ने की क्षमताओं का विकास करने की बजाय पाठ का वाचन करना प्रमुख मान लिया जाता है। पाठ को केंद्र में रखकर पढ़ने की क्षमता को विकसित करने के लिए कुछ गतिविधियाँ की जा सकती हैं। *जैसे*– कहानी का मज़ा लेना, उसके किसी प्रसंग की व्याख्याएँ करना, उस प्रसंग को अपने तरीके से लिखना और उस प्रसंग में आई बात की विरोधी बात के आधार पर नए प्रसंग की रचना करना आदि, लेकिन ऐसा कम ही होता है। आमतौर से पाठ में दर्ज सूचनाओं को याद करवाना पाठ के होने का प्रमुख उद्देश्य मान लिया जाता है। पाठ के प्रति किए जाने वाले ऐसे तकनीकी व्यवहार को शैक्षणिक व्यवहार में रूपांतरित करना एक चुनौती है।

भाषाओं की बहुलता और कई महत्वपूर्ण कार्यों में अंग्रेज़ी की बढ़ती जा रही उपयोगिता ने साबित कर दिया है कि बहुभाषी समाज में भागीदारी सुनिश्चित कराने वाली और जनतांत्रिक व्यवस्था के बने रहने के लिए भाषा के मामले में कोई सीधा-सरल समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। औपनिवेशिक समय से लेकर अब तक अंग्रेज़ी ने इतना लंबा सफ़र तय कर लिया है कि इसके प्रति प्रतिक्रियावादी रुख में कमी आई है। अब रोज़गार के अवसर प्रदान कराने एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में बढ़ रहे इसके प्रयोग ने इसकी महत्ता को और बढ़ा दिया है। दूसरी तरफ़, देश की शैक्षणिक और सत्ता संरचनाओं में अनेक अल्पसंख्यक व आदिवासी भाषाएँ अपनी प्रबल दावेदारी के साथ शामिल होने के लिए उभरकर सामने आ रही हैं। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क तथा अन्य सरोकारों की भाषा के रूप में हिंदी भी लगातार फैल रही है।

2.2 — संविधान और शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ों में भाषा

भारत एक बहुभाषी देश है– यह एक जानी-मानी बात है। 1971 की जनगणना जिसे इस मामले में सबसे ज़्यादा अधिकारिक माना जा सकता है, ने हमारे देश में कुल *1652* भाषाओं की पहचान की, जो पाँच विभिन्न भाषा-परिवारों के तहत आती हैं। प्रिंट मीडिया में 87 से ज़्यादा भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं, रेडियो में 71 भाषाएँ और प्रशासन के स्तर पर 13 विभिन्न भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं, लेकिन बड़े दु:ख की बात है कि केवल 47 भाषाएँ ही स्कूलों में पठन-पाठन के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती हैं। (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, 2009:20)।

संविधान की 8वीं अनुसूची में निम्नलिखित भाषाएँ सम्मिलित की गई हैं — असमी/असोमिया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू।

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में अब तक 22 भाषाएँ शामिल की गई हैं। भविष्य में इसमें और भी भाषाएँ शामिल की जा सकती हैं। भारत की कुल आबादी के 96.56 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा इन्हीं भाषाओं में से कोई एक है, जबकि शेष 3.44 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा इन भाषाओं से इतर है।

संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान में धारा 343 से 351 तक तथा 8वीं अनुसूची में भाषाओं के मुद्दों को शामिल किया गया है। धारा 343 (1) के अनुसार, *"भारत की राजभाषा हिंदी तथा लिपि देवनागरी होगी"* इसका अर्थ यह हुआ कि केंद्र सरकार अपने काम देवनागरी लिपि का उपयोग करते हुए हिंदी भाषा में करेगी लेकिन धारा 343 (2) के अनुसार *"खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था"* ऐसा होने के बावजूद हिंदी के विकास के बारे में विशेष ध्यान दिया गया है। संविधान की धारा 351 संघ को यह

ज़िम्मेदारी देती है कि " वह हिंदी का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके ...।" यानी हिंदी के ऐसे रूप का विकास करना जो भारत की मिलीजुली संस्कृति को अभिव्यक्ति दे सके।

2.2.1 डॉ. राधाकृष्णन कमीशन (1948)

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन 4 नवंबर, 1948 में किया गया। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1949 में सरकार को सौंपी। इस आयोग को 'राधाकृष्णन आयोग' के नाम से भी जाना जाता है। इस आयोग में भाषा के मसले पर विस्तार से चर्चा की गयी है। उसने संघ की भाषा, विदेशी शब्दों को उच्चरित करने की प्रणाली, विद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर माध्यम भाषा, स्थानीय भाषाएँ, लिपि आदि से संबंधित सरोकारों पर चर्चा करने के बाद अपनी सिफ़ारिशें की हैं। नीचे आयोग द्वारा भाषाओं तथा लिपि के उपयोग तथा विकास के संबंध में की गई सिफ़ारिशों को दिया जा रहा है —

सिफ़ारिशें —

1. संघ की भाषा का विकास विभिन्न स्रोतों से आने वाले शब्दों को आत्मसात करते हुए किया जाना चाहिए। साथ ही उन शब्दों को भी संभालकर रखा जाए जो विभिन्न स्रोतों से भारतीय भाषाओं में जगह बना चुके हैं। इस तरह से संघ की भाषा को एकांगी बनने से बचाया जाए।
2. जो शब्द अन्य भाषाओं से आए हैं, उनको भारतीय भाषाओं के ध्वनि-तंत्र के अनुकूल उच्चरित करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय तकनीक तथा वैज्ञानिक शब्दावली को अपनाया जाए। उधार लिए गये शब्दों की वर्तनी को भारतीय भाषाओं के स्वर-प्रतीकों के अनुरूप तय किया जाए।
3. उच्च शिक्षा में माध्यम के रूप में जितना जल्दी हो सके अंग्रेज़ी के स्थान पर, संस्कृत को छोड़कर, भारतीय भाषाओं का उपयोग किया जाए।
4. (i) उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तरों पर विद्यार्थियों को तीन भाषाओं– स्थानीय भाषा, संघ की भाषा तथा अंग्रेज़ी (सीखने के क्रम में अंग्रेज़ी अंत में आएगी) को उपयोग कर सकने वाला/वाली बनाया जाए। (ii) उच्च शिक्षा के लिए स्थानीय भाषाओं का उपयोग किया जाए। साथ ही कुछ या सभी विषयों के लिए संघ की भाषा को माध्यम भाषा के रूप में उपयोग करने का विकल्प हो। संघ की भाषा के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया जाए तथा इसकी कमियों को दूर किया जाए।

5. संघ की भाषा तथा स्थानीय भाषाओं के विकास हेतु तत्काल कदम उठाए जाएँ।
6. लगातार विकसित हो रहे ज्ञान के साथ जुड़े रहने के लिए उच्च विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी पढ़ी जाए।

2.2.2 कोठारी आयोग (1964-66)

राष्ट्रीय विकास एवं लोकतांत्रिक समाज के गठन में शिक्षा की अहम भूमिका को समझते हुए भारत सरकार ने 1964 में एक शिक्षा आयोग का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष डॉ. डी. एस. कोठारी थे। कोठारी आयोग द्वारा दी गई टिप्पणियों में से सबसे महत्वपूर्ण टिप्पणी, 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास से संबंधित थी।' शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण तथा तात्कालिक आवश्यक सुधार करने की ज़रूरत यह है कि शिक्षा लोगों के जीवन, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से संबंधित हो ताकि वे राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त इंजन बन सकें। शिक्षा और भाषा नीति में भाषाओं के उपयोग की चर्चा करते हुए आयोग ने निम्नलिखित मुद्दों पर ज़ोर दिया —

1. शिक्षा प्रणाली के लिए उपयुक्त भाषा नीति का विकास करना।
2. पढ़ाने के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषा को अपनाना।
3. विशेष रूप से क्षेत्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकों एवं साहित्य के निर्माण के लिए ज़ोरदार कार्रवाई करना।
4. अखिल भारतीय संस्थानों में अंग्रेज़ी के प्रयोग को अनुदेशों के माध्यम में जारी रखना, कतिपय सुरक्षा उपायों के तहत यथा समय अंततः अपरिहार्य हिंदी को अपनाने पर विचार किया जाएगा।
5. शीघ्र संभावित समयावधि में संबंधित क्षेत्र के लिए क्षेत्रीय भाषाएँ प्रशासनिक भाषाएँ बनाई जाएँ।
6. स्कूल स्तर से ही अंग्रेज़ी के अध्ययन एवं इसके पाठन के संवर्धन को जारी रखा जाए।
7. बौद्धिक विचार-विमर्श के लिए तथा अकादमिक कार्य के लिए उच्चतर शिक्षा में अंग्रेज़ी भाषा एक संपर्क भाषा के रूप में कार्य करेगी, हमारी अधिकांश जनता के लिए हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में कार्य करेगी और गैर-हिंदी क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सभी प्रयास किए जाएँ।
8. बी.ए. तथा एम.ए. स्तर पर दो आधुनिक भारतीय भाषाओं का समायोजन।

भाषाओं का अध्ययन

स्कूल स्तर पर भाषाओं के अध्ययन के लिए कोठारी आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं —

1. स्कूल स्तर पर भाषा के अध्ययन की समीक्षा की जानी चाहिए और इस तथ्य के मद्देनज़र कि देश में अंग्रेज़ी भाषा एक अनिश्चित काल से एक संबद्ध सरकारी भाषा के रूप में इस्तेमाल होती आई है, एक नयी नीति बनाए जाने की ज़रूरत है।
2. त्रिभाषा फार्मूले में संशोधन निम्नलिखित सिद्धांतों के मद्देनज़र किया जाए —
   - (क) मातृभाषा के बाद ही संघ सरकार की सरकारी भाषा के रूप में हिंदी का महत्व है।
   - (ख) अंग्रेज़ी का कामचलाऊ ज्ञान विद्यार्थियों के लिए फ़ायदेमंद रहेगा।
   - (ग) एक भाषा में प्रवीणता प्राप्त करना समयावधि तथा अध्यापकों के स्तर पर निर्भर करता है।
   - (घ) इन भाषाओं को सीखने का सबसे उपयुक्त समय कक्षा 8-10 तक होना चाहिए।
   - (ङ) दो अतिरिक्त भाषाओं को अलग-अलग समय पर सीखने की ज़रूरत है।
   - (च) हिंदी या अंग्रेज़ी की शुरुआत उस समय की जानी चाहिए जब इनकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत एवं अभिप्रेरणा हो।
   - (छ) किसी भी स्तर पर चार भाषाओं को सीखना ज़रूरी नहीं रखा जाना चाहिए।

त्रिभाषा सूत्र

स्कूली स्तर पर कितनी भाषाएँ पढ़ाई जाएँ यह सवाल आज़ादी के बाद से ही नीति निर्माताओं के सामने एक चुनौती पेश करता रहा है। इसी परिस्थिति की जटिलता का एक हल 1966 में कोठारी आयोग ने त्रिभाषा सूत्र को प्रस्तावित किया। कोठारी आयोग की सिफ़ारिशों को 1968 में नीतिगत रूप से अपना लिया गया। 1968 की नीति के अनुसार– स्कूल में **पहली भाषा** जो पढ़ाई जाए वह मातृभाषा हो या क्षेत्रीय भाषा।

द्वितीय भाषा

- हिंदीभाषी राज्यों में द्वितीय भाषा कोई भी अन्य आधुनिक भाषा हो या अंग्रेज़ी और
- गैर-हिंदीभाषी राज्यों में द्वितीय भाषा हिंदी या अंग्रेज़ी होगी।

तृतीय भाषा

- हिंदीभाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेज़ी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।
- गैर- हिंदीभाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेज़ी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।

त्रिभाषा सूत्र के उपर्युक्त प्रावधानों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि भारत की कोई बच्ची या बच्चा बिना हिंदी पढ़े हुए भी स्कूली शिक्षा पूरी कर सकती/सकता है। यानी पहली से बारहवीं कक्षा तक, हिंदी को पढ़ने को लेकर किसी प्रकार की अनिवार्यता नहीं है। जबकि किसी बच्चे या बच्ची को पहली से बारहवीं कक्षा तक किसी-न-किसी रूप में अंग्रेज़ी पढ़नी ही होगी।

इस बात को हिंदीभाषी तथा गैर हिंदीभाषी राज्यों के एक-एक उदाहरण से समझा जा सकता है। **राममूर्ति समिति** के पृष्ठ 232 पर उपलब्ध विवरण को आधार बनाकर महाराष्ट्र के मामले पर विचार करते हैं। महाराष्ट्र में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाषा के उपलब्ध विकल्पों में से कोई बच्ची मराठी, अंग्रेज़ी तथा उर्दू को क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाषा के रूप में चुन सकती है।

राममूर्ति समिति के पृष्ठ 229 पर उपलब्ध विवरण को आधार बनाकर आंध्र प्रदेश के मामले पर विचार करते हैं। आंध्र प्रदेश में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाषा के उपलब्ध विकल्पों में से कोई बच्चा उर्दू, अंग्रेज़ी तथा तेलुगु को क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाषा के रूप में चुन सकता है। त्रिभाषा सूत्र केवल विषय के रूप में भाषाओं के बारे में नीतिगत निर्देश देता है। माध्यम के रूप में भाषाओं के उपयोग के बारे में इसमें कोई प्रस्ताव नहीं है।

2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा कार्ययोजना (1992)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार — "1968 की शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था। उस नीति की मूल सिफ़ारिशों में सुधार की गुंजाइश शायद ही हो और वे जितनी प्रासंगिक पहले थीं उतनी ही आज भी हैं।" (पैरा 8.7)। इस नीति में कहा गया कि 1968 की सिफ़ारिशों को अधिक सक्रियता से लागू किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन के लिए 1992 में एक कार्ययोजना बनी जिसमें निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं —1986 की शिक्षा नीति ने 1968 की शिक्षा नीति के आधार पर भाषा शिक्षा संबंधी मुद्दों पर चर्चा की है। यह नीति उच्च शिक्षा के स्तर पर

भी क्षेत्रीय भाषा को ही माध्यम भाषा के रूप में इस्तेमाल करने पर ज़ोर देती है — त्रिभाषा सूत्र को पुरज़ोर तरीके से लागू किया जाए; शिक्षा में हर स्तर पर बच्चों के भाषिक विकास पर ध्यान दिया जाए। अंग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं की पढ़ाई की सुविधा मुहैया कराई जाए और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को विकसित किया जाए जैसा कि संविधान की धारा 351 में निहित है। एक भाषा से दूसरी भाषा में किताबों के अनुवाद तथा द्विभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों पर गंभीरता से काम किए जाने की ज़रूरत है। (*क्रियान्वयन का कार्यक्रम-1992:94)* / 1986 की नीति-क्रियान्वयन के सुझावों में भारतीय भाषाओं के विकास से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव हैं —

1. आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्यसामग्री/संदर्भ पुस्तकें तैयार कर प्रकाशित की जाएँ।
2. विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का अभिमुखीकरण किया जाए।
3. पाठ्यपुस्तकों और संदर्भ पुस्तकों के अनुवाद अंग्रेज़ी से भारतीय भाषाओं में किए जाएँ। किए जाने वाले कार्यों की निरंतर मॉनीटरिंग हो।

व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र का आधार

व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र के निर्माण में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांतों से सहायता मिल सकती है —

1. जबतक अंग्रेज़ी विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का मुख्य माध्यम और केंद्र तथा अनेक राज्यों में प्रशासन की भाषा बनी रहेगी तबतक उसको ऊँचा स्थान मिलता रहेगा। विश्वविद्यालयों में प्रांतीय भाषाओं के उच्चतर शिक्षा का माध्यम बन जाने के बाद भी सभी छात्रों के लिए अंग्रेज़ी का व्यावहारिक ज्ञान बहुत ही उपयोगी होगा और विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वालों के लिए उसमें काफ़ी योग्य होना आवश्यक होगा।
2. स्कूल में किसी भाषा के अध्ययन में कितनी योग्यता प्राप्त की जा सकती है, यह बात केवल इस पर ही निर्भर नहीं है कि कोई भाषा कितने वर्षों तक सीखी जाती है, अपितु इस पर भी निर्भर है कि छात्रों के सामने क्या अभिप्रेरणा है, भाषा किस अवस्था पर सीखी जा रही है तथा उपलब्ध शिक्षक और उपागम और शिक्षण-पद्धतियाँ किस प्रकार की हैं। उचित सुविधाओं के अभाव में लंबी अवधि तक भाषा पढ़ाने से भी अच्छे परिणाम नहीं निकलते जबकि अनुकूल परिस्थितियों के होने पर कम समय में भी अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। यद्यपि बहुत कम आयु में ही बच्चे को दूसरी भाषा सिखाने के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, लेकिन हमारे विचार से प्राथमिक

स्कूलों में लाखों छात्रों को भाषा की शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षकों की व्यवस्था करना बहुत कठिन काम होगा।

3. हिंदी या अंग्रेज़ी को दूसरी भाषा के रूप में अनिवार्यत: किस अवस्था से शुरू किया जाए और वह कितनी अवधि तक सिखाई जाए। यह स्थानीय अभिप्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करता है और इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

4. किसी भी अवस्था पर चार भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए, लेकिन स्वेच्छा से चार या और भी अधिक भाषाओं के अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।

संपर्क भाषा के संवर्धन के अलावा, एक भाषा से दूसरी भाषा में पुस्तकों के अनुवाद को बढ़ावा देने के लिए कार्यक्रम शुरू किए जाएँगे तथा बहुभाषिक शब्दकोश छपवाया जाएगा। इंडोलॉजी (भारत शास्त्र), मानवशास्त्र और सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान को पर्याप्त सहायता मिलेगी, ज्ञान को परस्पर जोड़ने के लिए अंतर्विषय शोध को बढ़ावा दिया जाएगा। प्राचीन भारतीय ज्ञान में खोज के प्रयास किए जाएँगे और इसे समकालीन वास्तविकता से संबद्ध किया जाएगा। इस प्रयास से संस्कृत और अन्य पुरानी (क्लासिकल) भाषाओं के गहन अध्ययन के लिए सुविधाओं का विकास होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 का एक मुख्य सरोकर भाषा-शिक्षण है। भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर तैयार फ़ोकस की रिपोर्ट में भी इस पर ध्यान दिया गया है। यह बच्चों में अंतर्निहित भाषायी क्षमता को रेखांकित करती है और यह भी कि हमारी भाषाएँ दिन-प्रतिदिन के आपसी विमर्श के दौरान सांस्कृतिक, सामाजिक रूप से बनती और बदलती हैं। इसके अनुसार शिक्षा की भाषा ऐसे महत्वपूर्ण संसाधनों के आधार पर ही आगे बढ़ सकती है जिसे अकादमिक ज्ञान के लिए साक्षरता (ब्रेल लिपि व सांस्कृतिक भाषा समेत) से और समृद्ध किया जा सकता है। इसमें इस बात पर भी विचार किया गया है कि भारत में भाषा की चुनौतियों के संदर्भ में त्रिभाषा सूत्र भी एक अच्छा प्रयास है। त्रिभाषा सूत्र का मुख्य उद्देश्य 'राष्ट्रीय एकता तथा बहुभाषिकता को बढ़ावा देना है।' इसमें निम्नलिखित सुझाव भी दिए गए हैं —

1. बच्चों को कक्षा में जो भाषाएँ पढ़ाई जा रही हैं, केवल वे पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि भाषा शिक्षण में ऐसी तरकीब ईजाद की जानी चाहिए, जिससे कि कक्षा का भी एक संसाधन के रूप में बहुभाषिकता को बढ़ाने में इस्तेमाल हो।

2. बच्चों के घरों पर बोली जाने वाली भाषा स्कूलों में पढ़ने का माध्यम हो।

3. यदि किसी स्कूल की बड़ी कक्षाओं में बच्चों के घर की भाषा में पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा नहीं है तो कम से कम प्राथमिक शिक्षा तो हर हालत में उनके घर की भाषा में ही दी जानी चाहिए। संविधान की धारा 350ए के अनुसार यह राज्य और उससे जुड़े लोगों का कर्त्तव्य है कि प्राथमिक शिक्षा उन्हीं की मातृभाषा में हो, वे चाहे कितने भी भाषायी अल्पसंख्यक क्यों न हों।

गतिविधि - 10

क्या भिन्न रूप से सक्षम बच्चे जिन्हें भाषा संबंधी कठिनाई है, उन्हें त्रिभाषा सूत्र से मुक्त कर देना चाहिए? इस मुद्दे पर आप कक्षा में चर्चा करें।

4. बच्चों को शुरुआत से ही बहुभाषा में शिक्षा दी जाएगी। त्रिभाषा सूत्र की आत्मा को लागू करने की ज़रूरत है जो बहुभाषी संवाद को बढ़ाने में मदद करे।

5. भाषा शिक्षण सिर्फ़ कक्षा तक ही सीमित नहीं रह जाना चाहिए, बच्चों के लिए विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षा भी भाषा की कक्षा है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 और भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर तैयार फ़ोकस की रिपोर्ट में भाषा-शिक्षण के विचार को देश के सामाजिक और बहुभाषिक परिप्रेक्ष्य में समझा गया है। इस संदर्भ में मातृभाषा वह है जो घर, गली, पड़ोस, सड़क, दोस्त और रिश्तेदारी के बीच बोली जाती है। क्षेत्रीय भाषा वह है जो विशेष तौर पर राज्यों में बोली जाती है और प्रांतीय भाषा वह है जिसे उस राज्य विशेष में सरकारी दर्जा प्राप्त है। हिंदी राजभाषा और संपर्क भाषा तथा अंग्रेज़ी रोज़मर्रा की सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क भाषा की पृष्ठभूमि के बीच यह रास्ता निकाला गया है।

इस संदर्भ में यह भी सुझाव दिया गया है कि स्कूल की सारी पढ़ाई-लिखाई का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए और प्राइमरी स्कूल में तो हर हालत में, *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्* द्वारा 1986 में भाषा के अध्ययन के लिए गठित कार्यकारी समूह ने भी प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा में होने की बात कही है। भारत के संदर्भ में इसकी ज़रूरत निम्न कारणों से और भी ज़रूरी है —

- इससे राष्ट्र के पुनर्निर्माण में लोगों की भागीदारी बढ़ती है।
- यह ज्ञान को चंद संभ्रांत लोगों के चंगुल से आज़ाद करती है।
- इससे आपसी संवाद भी बढ़ता है और समाज की परस्पर निर्भरता भी।

- इससे समाज के बड़े हिस्से को अपनी बात कहने-सुनने का अवसर मिलता है और इससे लोकतंत्र मज़बूत होता है
- इससे सूचना का विकेंद्रीकरण होता है और ज्ञान सर्वसाधारण को सुलभ होता है। इसी वजह से ज़्यादातर लोग शिक्षा और व्यक्तिगत विकास में शामिल हो सकते हैं।

स्कूली पाठ्यचर्या में भाषा संबंधी अन्य मुद्दे

भाषा-शिक्षण संबंधी कार्यक्रमों को बहुभाषी संदर्भ में देखने की ज़रूरत है। बहुभाषिकता एक प्राकृतिक परिघटना है, जिसका संज्ञानात्मक लचीलेपन और विद्वत उपलब्धि के साथ सकारात्मक संबंध होता है। ज़रूरत इस बात की है कि पाठ्यचर्या निर्माता, पाठ्यपुस्तक लिखने वाले शिक्षक और माता-पिता/अभिभावक बहुभाषिकता की महत्ता को समझें ताकि वे बच्चों को अपने इर्द-गिर्द मौजूद सांस्कृतिक और भाषिक विविधता के प्रति सुग्राही (सेंसिटाइज़) बनाएँ, और उन्हें अपने विकास के संसाधन के रूप में प्रयुक्त करने के प्रति प्रोत्साहित करें।

इस अध्याय में अल्पसंख्यकों व आदिवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं और विलुप्ति के कगार पर खड़ी भाषाओं की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। ये भाषाएँ हमारी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं और ज्ञान व्यवस्था का खज़ाना हैं और हमें उन्हें जीवंत रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। विद्यालयी पाठ्यचर्या में इनके लिए प्रावधान रखकर ही हम इस कार्य को संपन्न कर सकते हैं। विशेष तरजीह उर्दू को दी गई है, इसका कारण यह है कि यह भारतीय भाषाओं में विशिष्ट स्थान रखती है, क्योंकि यह भौगोलिक क्षेत्र-आधारित भाषा नहीं है जिसे वहाँ के लोग बचाने के लिए संघर्ष करते। यह किसी राज्य की भाषा नहीं है। हमने शास्त्रीय भाषाओं, खासकर संस्कृत को सीखने की ज़रूरत पर भी इस खंड में बात की है। साथ ही भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में विदेशी भाषाओं को अपनाने की विशेषता रही है। यह दस्तावेज़ इसे जारी रखने की पुरज़ोर वकालत करता हैं।

शास्त्रीय भाषाएँ

आज की सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ अतीत से रोशनी पाती हैं और क्लासिकल भाषाएँ उनके वाहन का काम करती हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत सारी शास्त्रीय भाषाओं के प्रति हमेशा से ही उदार रही है, जिसमें संस्कृत, तमिल, लैटिन, अरबी और फ़ारसी शामिल हैं।

उर्दू

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार उर्दू और हिंदी के बीच कोई आधारभूत अंतर नहीं है। दोनों की वाक्य संरचनाएँ एक-सी हैं। साथ ही फ़ोनोलॉजी, मार्फ़ोलॉजी और लेक्सिकन स्तर पर दोनों में बहुत कुछ साझा है। यह तो पिछले पचास वर्षों के दौरान हिंदी को संस्कृत और उर्दू को अरबी/फ़ारसी के रंग में रँगने की ऐसी कोशिश चली कि आज ये दोनों ही एक रेखा के दो छोरों पर पहुँचकर रह गई हैं। हिंदी के साथ देवनागरी लिपि और उर्दू के साथ अरबी/फ़ारसी लिपि को इस तरह से जोड़कर देखा जाता है कि हम सोच ही नहीं सकते कि इन्हें और अन्य तरीकों से भी लिखा जा सकता है। उर्दू (सिंधी के साथ) अपने आप में अकेली भाषा है जो देशभर में बोली जाती है, लेकिन किसी भी राज्य में यह बहुसंख्यक भाषा नहीं है।

अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ

अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं को बोलने वाले प्राय: अपनी भाषा से वंचित कर दिए जाने के शिकार होते हैं जबकि हमें यह भली-भाँति जान लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी सहित इस देश की प्रमुख भाषाएँ, इनके साथ रहकर ही फल-फूल सकती हैं न कि इनकी कीमत पर। यह धारणा कि एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में भी सहायक होता है, इससे हम उम्मीद कर सकते हैं कि भाषिक विविधता वाले आदिवासी इलाकों के मामले में कुछ भाषाओं का विकास शेष भाषाओं को बल प्रदान कर सकता है, साथ ही इनको बोलने वालों को सचेतन रूप से इस ओर रुख करने के लिए प्रेरित भी। बहुत सारी भाषाएँ खतरे में हैं। बहुभाषिकतावाद को बनाए रखने के हमारे दावों के बावजूद कुछ भाषाएँ वास्तव में भारतीय-भाषिक मंच से गायब हो गईं। एक भाषा को खोने का अर्थ है– इसके साथ संबद्ध पूरी-की-पूरी साहित्यिक व सांस्कृतिक परंपरा का नष्ट होना।

विदेशी भाषाएँ

'वे भाषाएँ जो कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं और जहाँ उनको बोलने वाले, सीखने वालों के साथ न हों और अजनबी हों तो उन्हें विदेशी भाषाएँ कहा जा सकता है।' मातृभाषाओं और अन्य भारतीय भाषाओं के सिवाय हमारी पाठ्यचर्या में विदेशी भाषा के रूप में जर्मन व फ्रेंच को भी जगह दी गई है। हर नयी भाषा दुनिया के बारे में नयी जानकारी देती है और सीखने वाले के संज्ञानात्मक विकास में सहायक होती है। चूँकि विदेशी भाषा, सीखने वाले के परिचित वातावरण में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए इसके लिए मातृभाषा व द्वितीय भाषा को पढ़ाने के लिए विकसित तरीकों से भिन्न रणनीति की ज़रूरत पड़ेगी।

यदि मातृभाषा में शिक्षा दी जाए तो उस भाषा विशेष के साथ सांस्कृतिक दूरी को भी कम किया जा सकता है जो स्कूल और घर की अलग भाषा होने पर पैदा होती है। भाषा केवल संस्कृति का एक हिस्सा नहीं है, वह संस्कृति का वाहक भी है, यदि पढ़ाई का माध्यम मातृभाषा हो तो घर की भाषा से स्कूल की भाषा तक पहुँचना बहुत आसान बन सकता है।

झिंगरन (2005) कहते हैं कि 12 प्रतिशत बच्चों पर अपनी भाषाओं में शिक्षा उपलब्ध न होने के कारण विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 और भाषा पर बनाए राष्ट्रीय फ़ोकस ग्रुप का सुझाव है कि इस बात की पर्याप्त सावधानी रखी जाए कि बच्चों की भाषा में ही पाठ्यपुस्तक तैयार हों न कि उन्हें अंग्रेज़ी की किताबों के आधार पर बनाया जाए। केवल इसी रास्ते से हम तेज़ी से खोते परंपरागत ज्ञान को बचा सकते हैं। इसके साथ ही साथ इन भाषाओं में नए ज्ञान निर्माण के रास्ते भी खुलेंगे।

> संस्कृत को कर्मकांडों की या नैतिक मूल्यों को फैलाने वाली भाषा के रूप में लिया जाता रहा, इससे इसके सौंदर्यबोधात्मक पक्ष और विविध साहित्य भी नज़रअंदाज़ होते रहे। हाल के शोधों ने उच्च संस्कृति की अभिव्यक्तियों के नीचे दबे हुए स्तरों की उच्च किस्मों को सामने प्रस्तुत किया।
>
> — भारतीय भाषाओं का शिक्षण

स्कूली शिक्षा में माध्यमिक या इससे ऊँची कक्षाओं में धीरे-धीरे शिक्षा का माध्यम मातृभाषा से प्रांतीय भाषा या हिंदी और इंगलिश हो सकती हैं। जैसा कि हमारा मानना है कि प्राथमिक शिक्षा बुनियादी रूप से भाषा-शिक्षण है। इसलिए मातृभाषा या प्रांतीय भाषा को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।

मुनष्य के अंदर अपने शुरुआती जीवन में भाषा सीखने की अनंत संभावनाएँ होती हैं। प्राथमिक स्कूल में यदि पर्याप्त सुविधाएँ मौजूद हों तो अंग्रेज़ी को थोड़ा-बहुत शुरू किया जा सकता है। राष्ट्रीय फ़ोकस ग्रुप इस बात की सिफ़ारिश करता है कि अंग्रेज़ी की शिक्षा को बहुभाषी क्लास रूप में पढ़ाने की पद्धतियों में शामिल किया जाना चाहिए। भाषाएँ एक-दूसरे की सोहबत में बेहतर सीखी जा सकती हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के अनुसार हमारी स्कूली शिक्षा पद्धति में अंग्रेज़ी अकेली नहीं रहनी चाहिए। उन्हें पढ़ाने का उद्देश्य ऐसी बहुभाषिकता को बढ़ावा देना है जिससे हमारी भाषायी समृद्धि हो। अलग-अलग राज्यों में अंग्रेज़ी को दूसरी भाषाओं के साथ जगह देने की ज़रूरत है।

स्पष्टत: त्रिभाषा सूत्र कम-से-कम तीन भाषाओं को पढ़ने-पढ़ाने के लिए है। आप चाहें तो उससे ज़्यादा भी पढ़ सकते हैं। संस्कृत को एक आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए और तब इसे प्राचीन भाषा के रूप से अलग रखने की ज़रूरत है। संस्कृत का इस्तेमाल त्रिभाषा सूत्र फार्मूले से बचने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

> चूँकि विदेशी भाषा, सीखने वाले के परिचित वातावरण में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए इसके लिए मातृभाषा व द्वितीय भाषा को पढ़ाने के लिए विकसित तरीकों से भिन्न रणनीति की ज़रूरत पड़ती है। यह संभव है कि व्याकरण को पढ़ाने पर ध्यान धीरे-धीरे ज़्यादा केंद्रित होता जाए, जैसे-जैसे हम पहली भाषा से दूसरी भाषा की ओर बढ़ें और अंतत: विदेशी भाषा की ओर।
>
> — भारतीय भाषाओं का शिक्षण

प्रांतीय और विदेशी भाषाएँ अपनी-अपनी जगह हैं। इनकी व्याकरणिक जटिलताएँ अलग हैं। इन भाषाओं के माध्यम से हम उन परंपराओं, संस्कृति और जनता के पास पहुँचते हैं जिन तक हमारी अन्यथा पहुँच नहीं होती। जैसा कि राष्ट्रीय फ़ोकस ग्रुप की सिफ़ारिश में कहा गया है - हमें भाषा शिक्षण को एक बहुभाषी संदर्भ में रखने की ज़रूरत है। बहुभाषिकता बड़ी सहज प्रक्रिया है जो हमें एक लचीलेपन के साथ दुनिया के ज्ञान से जोड़ती है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि पाठ्यक्रम निर्माता, लेखक, शिक्षक और अभिभावक बहुभाषिकता के महत्व को समझें जिससे कि एक बहुभाषी वैविध्य वाले देश में बच्चों के विकास में बहुभाषिकता को प्रोत्साहन मिले। भाषा शिक्षण से जुड़े सभी लोग इस बात पर सहमति जताते हैं कि स्कूली शिक्षा के दौरान द्विभाषिकता को बनाए रखना चाहिए। इसलिए यह ज़रूरी है कि पढ़ने और पढ़ाने की नीतियाँ बनाते वक्त भाषा के इन संदर्भों का ध्यान रखा जाए। ये सभी भाषाएँ समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं और ज्ञान का भंडार हैं और इनको हर हालत में जीवित रखा जाना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब स्कूली पाठ्यक्रम में इन्हें पर्याप्त स्थान मिले।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 और राष्ट्रीय फ़ोकस ग्रुप इसलिए बार-बार बहुभाषिकता की बात करते है, क्योंकि बहुभाषिकता पहचान का एक मुख्य घटक है। कभी-कभी जिन्हें हम दूर देहात के गाँव में एक बोली तक ही सीमित मानते हैं, उनके पास भी अलग-अलग लोगों से बतियाने की पर्याप्त भाषिक क्षमता होती है। भारतीय समाज की सरंचना में ऐसा सामाजिक और भाषिक संवाद और सहयोग लाज़मी होता है और अध्ययन भी यह बताते हैं कि द्विभाषिकता उसके पूरे विकास और ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती है।

भारत जैसे विविधताओं वाले बड़े देश में सामाजिक सद्भाव तभी संभव है जब हम दूसरी भाषा और संस्कृति के प्रति सम्मान रखें। ऐसा सम्मान केवल ज्ञान के आधार पर ही संभव है। अज्ञान के कारण नफ़रत और असहिष्णुता पैदा होती है और यह राष्ट्रीयता के लिए सबसे ज़्यादा घातक है। हर राज्य में एक भाषा की प्रभुता के कारण एक विशेष जुड़ाव होना स्वाभाविक है। इसकी वजह से कई बार लोगों के विचार और परस्पर आवाजाही में भी बाधा होती है। सच में नया करना, सोचना या उसको आधुनिक बनाने में भी कुछ बाधाएँ खड़ी होती हैं। यह जानने-समझने के बाद कि बहुभाषिकता शैक्षिक और सामाजिक विकास को बढ़ाने में एक अच्छी भूमिका निभाती है, हमें इसके लिए अपने स्कूलों में बहुभाषिकता को हर हालत में प्रमुखता देने की ज़रूरत है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 और राष्ट्रीय फ़ोकस की सिफ़ारिश में कुछ मूलभूत सिद्धांतों की बात कही गई है जिनसे हमारे भाषायी शिक्षण तरीकों के बारे में जानकारी मिल सकती है और सुझाव दिया गया है कि प्रत्येक अध्यापक पढ़ाने की अपनी एक विशिष्ट शैली अपनाएगा, जिसमें विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, भाषायी तथा कक्षा में विभिन्न स्तरानुसार बच्चों की रुचियों इत्यादि का ध्यान रखा जाएगा। इस नए विधान से अध्यापक को कक्षा में अधिक प्रभावशाली तथा नायाब तरीके से पढ़ाने में मदद मिलेगी। कुछ मूल सिद्धांतों में से निम्नलिखित शामिल हैं —

छात्र-कक्षा में पढ़ाने के जो भी माध्यम अपनाए जाएँ, विद्यार्थी को खाली ज्ञान का ग्राहक न समझा जाए, उसे पठन-पाठन का केंद्रबिंदु होना चाहिए। अध्यापक धीरे-धीरे छात्र की रुचि और संज्ञानात्मक क्षमता को निखारेगा और तदनुसार, वह अपनी पठनात्मक भाषा पद्धति को अपनाएगा।

मनोवृत्ति – जब अध्यापक सकारात्मक रूप से जाति, रंग, धर्म, जेंडर के बगैर सभी बच्चों के प्रति प्रेरित होगा, तभी बच्चे अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित होंगे।

पाठ्य-सामग्री – क्रेशेयन (1981, 1982) का अनुसरण करते हुए हमारा सुझाव है कि 'पाठ्य-सामग्री समृद्ध, रुचिकर तथा चुनौतीपूर्ण होनी चाहिए और विषय इस तरह से बनाए जाएँ जिससे कि मिलजुलकर पढ़ने को बढ़ावा मिले (पियर ग्रुप लर्निंग)।' इस संदर्भ में स्कूलों को आधुनिक प्रोद्योगिकी से काफ़ी मदद मिल सकती है, अध्यापक धीरे-धीरे छात्र की रुचि और संज्ञानात्मक क्षमता को निखारेगा और तदनुसार वह अपनी पठनात्मक भाषा पद्धति को अपनाएगा।

बहुभाषीय संसाधन के रूप में – जैसे कि हमने इन दस्तावेज़ों में एक जगह चर्चा की है, भाषायी शिक्षण साधन कक्षा में उपलब्ध बहुतेरी भाषाओं के उपयोग के लिए प्रमुख

स्थल हो सकते हैं। कक्षा में बच्चों के सहयोग से प्राप्त बहुभाषाओं के गहन विश्लेषण से अध्यापकों तथा बच्चों दोनों शब्द बनाने की जानकारी (मेटल लिंगुइस्टिक) प्राप्त हो सकती है। इस संबंध में अनुवाद बहुत सशक्त साधन हो सकता है।

जेंडर और वातावरण संबंधी मुद्दे – यह आवश्यक है कि आधुनिक भाषायी शिक्षण साधनों से बच्चों में जेंडर और वातावरण के बारे में जानकारी सृजित की जाए। संयम और संवेदनशील तरीके से भाषा-शिक्षण उपायों को अपनाकर इन मुद्दों को प्रभावशाली तरीके से समझाया जा सकता है।

मूल्यांकन – सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के मूल्यांकन के लिए हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए। जब कभी हम जाँच/परीक्षा के लिए सामान्य कक्षा प्रक्रिया का उल्लंघन करते हैं, तब हम छात्रों में चिंता पैदा करते हैं और शिक्षा-प्रक्रिया में काफ़ी बाधा पहुँचती है।

अभ्यास प्रश्न

भाषा से संवाद

1. हिंदी के विकास में किन क्षेत्रों तथा किन लोगों ने केंद्रीय भूमिका निभाई ?
2. हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रिश्तों का पाठ्यपुस्तकों की हिंदी के आधार पर विश्लेषण कीजिए ।
3. हिंदी की संवैधानिक स्थिति पर एक टिप्पणी लिखिए ।
4. हिंदी के विविध रूप कौन से हैं ? इनमें से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए ।
5. किसी भाषा को विश्वभाषा का दर्जा देने की शर्तें कौन-कौन सी हो सकती हैं ?

गतिविधि/पोर्टफ़ोलियो

प्रशिक्षण के दौरान

1. स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिंदी की भूमिका पर समूह में चर्चा कीजिए ।
2. 'जब शब्द नहीं रहते तब शस्त्र उठते हैं'– विषय पर परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

कक्षा शिक्षण के दौरान

1. चुने हुए कुछ कक्षाओं में बच्चों की भाषा का जायज़ा लेते हुए हिंदी के विविध रूपों पर एक रिपोर्ट तैयार करें ।
2. रोज़मर्रा की ज़िंदगी में प्रयोग होने वाली कम-से-कम बीस क्रियाओं (जैसे–नहाना, आना, पकाना, जाना आदि) को कक्षा में मौजूद बच्चे किस-किस तरह से प्रयोग करते हैं– इस आधार पर सूची बनाइए ।

परियोजना कार्य

1. इस इकाई में दिए गए विषयों को ध्यान में रखते हुए एक प्रश्नावली तैयार करें, दस व्यक्तियों का साक्षात्कार करें; इस साक्षात्कार के आधार पर हिंदी की स्थिति पर एक रिपोर्ट लिखें ।
2. हिंदी भाषा के विकास में क्षेत्रीय जनपदीय हिंदी की भूमिका पर आलेख पाठ तैयार कीजिए । (हरेक विद्यार्थी अपने क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखते हुए आलेख तैयार करे ।)

इकाई

3

भाषा शिक्षण पर एक दृष्टि

3.1 — भाषा सीखने-सिखाने की विभिन्न दृष्टियाँ **70**

3.1.1 भाषा अर्जन और सीखने-सिखाने का आधार 71

3.1.2 समावेशी कक्षा और भाषा शिक्षण दृष्टि 72

3.1.3 समग्र भाषा दृष्टि 73

3.1.4 रचनात्मक दृष्टि 78

3.1.5 भारतीय भाषा दृष्टि 87

3.2 — भाषा शिक्षण की प्रचलित विधियाँ/ प्रणालियाँ और उनका विश्लेषण **95**

3.2.1 व्याकरण-अनुवाद विधि 96

3.2.2 प्रत्यक्ष विधि 97

3.2.3 प्राकृतिक विधि 98

3.2.4 संप्रेषणात्मक विधि 99

3.2.5 आलोचनात्मक विधि 101

3.1— भाषा सीखने-सिखाने की विभिन्न दृष्टियाँ

भाषा विद्यालयी पाठ्यक्रम का अनिवार्य तत्व है। इसके शिक्षण पर विचार करते हुए इस बात को समझना आवश्यक है कि भाषा से हमारा मतलब क्या है ? इस सवाल के उत्तर से हमें उस दिशा का बोध होगा जिस ओर भाषा के शिक्षण को ले जाना है। भाषा से क्या अर्थ लिया जा रहा है ? इस सवाल पर विचार करना उन कामों को समझने में मददगार होगा जो भाषा के द्वारा लिए जाने हैं। भाषा के द्वारा कौन-कौन से काम लिए जाते हैं ? इस सवाल पर जितनी स्पष्टता होगी भाषा के शिक्षण के स्वरूप और दायरे को समझने में उतनी ही मदद मिलेगी। क्या भाषा ध्वनि मात्र है ? भाषा मात्र ध्वनि नहीं है। वह सार्थक ध्वनि है। जिस ध्वनि से किसी वस्तु, व्यक्ति, कार्य, घटना, प्रक्रिया आदि का बोध होता हो वह भाषा के अंतर्गत आएगी। 'पेड़' बोलने से पेड़ की आकृति का बोध होता है। 'इकबाल' बोलने से किसी व्यक्ति का बोध होता है, इसलिए ये ध्वनियाँ भाषा के दायरे में आएँगी। हमारे चारों ओर अनेक प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं। वे सभी भाषा के अंतर्गत नहीं आती।

क्या भाषा, व्याकरण है? प्रत्येक भाषा के व्याकरणिक नियम होते हैं। भाषा उन नियमों को लेकर चलती है, लेकिन व्याकरणिक नियम मात्र से किसी भाषा का बने रहना संभव नहीं। जो भाषाएँ लुप्त हो गई हैं उनका भी व्याकरण रहा होगा, लेकिन क्या कारण है कि वे स्वयं को बनाए नहीं रख पाईं ?

भाषा, व्याकरण के होने की पूर्वशर्त है। उपयोग में आने से भाषा विकसित होती है और प्रयोग किए जाने वाले नियमों से व्याकरण बनता है। अगर भाषा का उपयोग नहीं होता है तो उसका व्याकरण उपलब्ध होने पर भी भाषा मृतप्राय या लुप्त हो जाती है। ऐसा संभव है कि व्याकरणिक नियम पर खरा उतरने वाला वाक्य बोला जाए और वह निरर्थक हो। चाम्स्की ने भाषा को व्याकरण का पर्याय मानने वाले विचार को चुनौती देते हुए कहा है कि वे ऐसे वाक्यों की रचना कर सकते हैं जो व्याकरणिक दृष्टि से सही होने पर भी निरर्थक हों। इसलिए भाषा को व्याकरण का पर्याय नहीं माना जा सकता। जैसे– मच्छर ने लोहे की प्लेट पी और बाहर जाकर भूरा सपना देखने लगा।

उपर्युक्त वाक्य व्याकरणिक तत्वों पर खरा है। हिंदी वाक्य की संरचना के अनुसार सभी पद उपयुक्त स्थान पर हैं, लेकिन फिर भी यह वाक्य निरर्थक है।

व्यागोत्सकी की मानें तो भाषा का केंद्रीय तत्व अर्थ है। उनके अनुसार भाषा सीखने का मतलब है अर्थ तथा अर्थ देने की प्रक्रिया को सीखना। किसी ध्वनि में निहित अर्थ संसार को समझना ही भाषा का मुख्य कार्य है। 'रामकुमार खाना खा रहा है' सुनकर अर्थ को समझ लेना भाषा को समझने का सबूत है। भले ही कोई 'रामकुमार' और 'खाने' के बीच व्याकरणिक संबंधों को न जानता हो। अर्थ भाषा का केंद्रीय तत्व है। भाषा शिक्षण में इसी तत्व को केंद्र में रखना अपेक्षित है।

3.1.1 भाषा अर्जन और सीखने-सिखाने का आधार

भाषा सीखना एक सामाजिक ज़रूरत है। भाषा के द्वारा इंसान अपनी अभिव्यक्ति संबंधी ज़रूरतों को पूरा करता है। ये अभिव्यक्तियाँ किसी तात्कालिक काम को निकलवा लेने से लेकर दार्शनिक किस्म की हो सकती हैं। *'मुझे पानी पिला दो'* एक तात्कालिक ज़रूरत की अभिव्यक्ति है। *'अच्छा क्या है ?'* एक दार्शनिक अभिव्यक्ति है। 'गर्म होने पर पानी का क्या होता है' एक भौतिक समस्या की अभिव्यक्ति है। *'क्या होता अगर इंसान का एक ही हाथ होता ?'* एक काल्पनिक सवाल की अभिव्यक्ति है।

भाषा का दायरा वहाँ तक होता है जहाँ तक व्यक्ति या समाज की सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक ज़रूरतें होती हैं। यदि दार्शनिक चिंतन करना किसी व्यक्ति, समूह या संस्था की ज़रूरतों के अंतर्गत नहीं आता तो वह दार्शनिक ज़रूरतों को पूरा करने वाली भाषा के निर्माण की ओर भी नहीं जाएगी। भाषा, व्यक्ति, समाज तथा संस्था की ठोस, काल्पनिक या दार्शनिक ज़रूरतों को पूरा करने के काम में लाई जाती है।

भाषा में सामाजिक ज़रूरतों का पक्ष प्रबल होता है। कल तक कंप्यूटर संबंधी भाषा न जानने वाला समाज इसे जानने की ओर दौड़ा जा रहा है, क्यों ?, क्योंकि कंप्यूटर संबंधी भाषा उसकी रोजी-रोटी, मंनोरजन, समय की बचत, स्थानाभाव से निपटने और सूचनाओं के व्यापक संग्रहण की ज़रूरतों को पूरा करती है। भाषा के सीखने में रुचि का तत्व भी महत्वपूर्ण होता है। रुचि अनेक बार ज़रूरतों से आकार ग्रहण करती है। *मारिया मांटेसरी* का मानना है कि 'जो ध्वनियाँ बच्चे के काम की होती हैं उनका उपयोग करने में उसकी रुचि विकसित हो जाती है।' अरुचिपूर्ण बातें सीखने की प्रेरणा नहीं जागती। भाषा शिक्षण के संदर्भ में रुचि के तत्व पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी कारण साहित्य का विशेष स्थान है। साहित्य विचारों की अभिव्यक्ति है और सृजनात्मक होने के कारण वह आकर्षण का भाव जगाता है।

छोटी सी उम्र में ही बच्चा भाषा का उपयोग करने लगता है। उसे सायास तौर पर भाषा सिखाई नहीं जाती। वह अपने आस-पास भाषा का उपयोग होते देखता है। बहुत जल्दी ही उसे लगने लगता है कि भाषा को उपयोग में लाया जा सकता है। वह भाषा को समाज से ग्रहण करता है और उसका उपयोग करता है। ग्रहण करना सायास न होकर सहज होता है। भाषा को ग्रहण करने में दो पहलू महत्वपूर्ण हैं। पहला मनुष्य होने के कारण बच्चे की भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता, तथा सहज भाषायी दूसरा वातावरण। 'किसी भाषा या भाषा के किसी रूप को सायास तौर पर सीखने की स्थिति को भाषा-अधिगम की स्थिति कहते हैं।' मातृभाषा या परिवेश की भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा को सीखना सामान्यत: भाषा-अधिगम कहलाता है। बच्चे के द्वारा एक भाषा के व्यवहार में लाए जाने वाले रूप को सीखना भी भाषा-अधिगम के अंतर्गत माना जाता है।

मान लें किसी बच्चे के परिवेश में हिंदी के तद्भव रूप का उपयोग होता है। वह बच्चा हिंदी के तद्भव रूप को ग्रहण कर लेगा, लेकिन हिंदी के तत्सम् रूप को सीखने के लिए उसे प्रयास करना पड़ेगा। प्रयास द्वारा हिंदी के तत्सम् रूप को सीखना, भाषा-अधिगम के अंतर्गत आएगा। किसी अन्य के लिए हिंदी के तद्भव रूप को सीखना भी भाषा-अधिगम के अंतर्गत आ सकता है। भाषा के शिक्षण की दृष्टि से भाषा-अर्जन के वातावरण का निर्माण करना यानी संदर्भ देना अधिक उपयुक्त तथा आनंददायक माना गया है। संदर्भयुक्त भाषा शिक्षण समग्र दृष्टि की ओर ले जाता है।

3.1.2 समावेशी कक्षा और भाषा शिक्षण दृष्टि

जब हम समावेशी शिक्षा की बात करते हैं तो यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि हर बच्चे की ज़रूरत, समझ, समझ के तरीके, शारीरिक और मानसिक विशेषताओं तथा सामाजिक, भाषिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए पढ़ाने के तरीके में भी बदलाव की ज़रूरत करनी होगी। दरअसल समावेशी शिक्षा जैसी अवधारणा के मूल में ही विविधता का समावेश निहित है। बहुलता/विविधता वादी संस्कृति, समाज, भाषा ही हमारे देश को विशेष और अहम स्वरूप देते हैं। ज़ाहिर है कि इस अहम और विशेष स्वरूप को बनाए रखने के लिए हमारे स्कूली स्वरूप को भी बहुभाषायी, बहुसांस्कृतिक और बहुसमाजी होने के साथ-साथ हर बच्चे को सीखने का अवसर भी देना होगा और जब हम भाषा की कक्षा की बात करते हैं तो हमारे बच्चे बहुभाषी तो हों ही, इसके साथ-साथ सबकी भाषा (सांकेतिक भाषा) को समझने के तरीके पर सोचना होगा। सुनना-बोलना, समझकर व्यक्त करना और पढ़ने-लिखने के जाने-पहचाने स्वरूप का फैलाव इन्हीं सांकेतिक या अन्य भाषा की समझ से संभव होगा। मान लीजिए कि हम किसी रचना या फिर खास या पसंदीदा अनुभव/स्थान के अनुभवों को कक्षा में चर्चा का विषय बनाते हैं तो हमें बच्चों के विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों का माध्यम समझना होगा। हमें कक्षा में उपस्थित उन बच्चों का भी ध्यान रखना होगा जो सुन या बोल नहीं पाते हैं और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम या तो सांकेतिक भाषा है या फिर वे किसी अन्य तरीके से अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे– भाषा बोर्ड का प्रयोग कर अभिव्यक्त करते हैं। अगर कोई बच्ची ब्रेल लिपि के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है। तो उसको भी अवसर देते हुए उसे विभिन्न गतिविधियों में शामिल करना होगा, क्योंकि विद्यार्थी जिन संकेतों के ज़रिये अपनी बात कहेगा/कहेगी वह भाषा अभिव्यक्ति का एक तरीका है– इस बात को कक्षा के अन्य बच्चों को भी समझना होगा। पसंदीदा स्थान के अनुभवों को कक्षा में चर्चा का विषय बनाते हैं तो इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की भाषायी क्षमता और उनके तरीके को भी सुनना और देखना सभी विद्यार्थियों की भाषा का विस्तार करेगा।

एक समावेशी कक्षा में कई तरह के बदलाव करने होंगे —

पारंपरिक सोच		बदलाव	
•	अलग-अलग समाज अलग-अलग पढ़ाई	•	सबके लिए (चुनौतीपूर्ण बच्चे सहित) एक साथ शिक्षा
•	ज्ञान पहले से तय	•	लचीलापन
•	सीखने के लिए विशेष वातावरण	•	विविधता में सीखना
•	सबके लिए सीखने का एक ही तरीका	•	हर विद्यार्थी की ज़रूरत के लिए अलग शिक्षण युक्ति
•	पढ़ाने पर ज़ोर	•	पढ़ाना सीखने पर ज़ोर
•	सीमित बच्चों को अवसर	•	सबके लिए सीखने का अवसर

3.1.3 समग्र भाषा दृष्टि

समग्र भाषा का विचार सीखने-सिखाने की ऐसी दार्शनिक संकल्पना है जो ज्ञान को टुकड़ों में तोड़ने के खिलाफ़ है। इस विचार के अनुसार बच्चे वातावरण में घट रही घटनाओं को घटना के रूप में देखते हैं। वे घटना का विवरण समग्रता में देते हैं– एक बच्ची मैदान में खेल रही है। मैदान के अनुभव का विवरण वह टुकड़ों में न देकर पूरी समग्रता से देती है। वह उन तमाम बातों को बताने की भरसक कोशिश करती है जो उसने कहीं सुनीं, देखीं तथा की। इस प्रकार के तथ्यों को आधार बनाकर वायगोत्स्की ने कहा कि लिखित भाषा का विकास भी वाचिक भाषा की तरह ही होता है, यही समग्र-भाषा दृष्टि का सार है। संदर्भ व्यक्त करना, सीखना सहज होता है उसी प्रकार संदर्भ में लिखना, सीखना भी आसान हो जाता है। जैसे - बोलना सिखाने के लिए वर्णों का अलग-अलग प्रयोग नहीं सिखाया जाता। बच्चा जीवन के विभिन्न संदर्भों में जीते हुए बोलने की समग्रता को आत्मसात् करता है। ऐसे ही लिखना सीखने के लिए उसके ठोस संदर्भों को आधार बनाया जाए तो लिखने की कुशलता का विकास न होकर क्षमता का विकास होगा।

समग्र भाषा, कौशल-आधारित शिक्षण के विरुद्ध है। भाषा सीखने को कौशलों में बाँटकर नहीं देखा जाना चाहिए। पढ़ने तथा लिखने को समग्रता की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। पढ़ने और लिखने की क्षमता का विकास अनुभव द्वारा होना चाहिए न कि अनुदेशन द्वारा। समग्र भाषा की संकल्पना प्याजे, वायगोत्स्की, चाम्स्की आदि के शोध पर आधारित है। यह इस विचार का खंडन करती है कि किसी पाठ में एक ही अर्थ होता है।

इसके अनुसार पाठक, पाठ (टेक्स्ट) का अर्थ भिन्न-भिन्न निकाल सकते हैं। यह बात पाठक के संदर्भों पर निर्भर करती है। इस प्रकार समग्र भाषा पढ़ने तथा लिखने के शिक्षण की ऐसी पद्धति है जिसमें अलग-अलग ध्वनियों का अभ्यास करवाने की बजाय अर्थपूर्ण संदर्भों में पूरे शब्द या वाक्याशों पर बल दिया जाता है।

समग्र भाषा में विश्वास करने वाले शिक्षक यह मानते हैं कि भाषा का तंत्र परस्पर गुँथा हुआ है। वे भाषा को टुकड़ों में तोड़कर हर टुकड़े को किसी विशिष्ट अनुदेश के साथ जोड़ देने के खिलाफ़ हैं। इसलिए समग्र भाषा के आधार पर हर बच्चा सीखने वाला होता है, क्योंकि प्रत्येक बच्चा अपने वातावरण को देखता, समझता तथा उसके साथ संवाद करता है।

भाषा के संदर्भ में बोलने तथा लिखने की योग्यताओं के विकास के लिए उपयोग के आधार पर समग्र भाषा के उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं —

- विद्यार्थियों को अपने जीवन संबंधी अनुभवों पर बात करने को भाषायी पाठ्यक्रम का आधार बनाया जाए।
- वास्तविक अनुभवों को ही लिखना सिखाने का आधार बनाया जाए।
- उनकी अपनी भाषा को सीखने का आधार बनाया जाए।

गतिविधि - 11

- यदि हमारे आस-पास भाषाएँ बोली न जा रही होतीं तब बोलना सीखने के कौन से तरीके काम में लाए जा रहे होते ?
- यदि किसी बच्चे के परिवेश में भाषा के लिखित रूप प्रचुर मात्रा में बिखरे हुए हों तब पढ़ना सीखने में बच्चे को किस प्रकार की मदद मिलेगी ?

बहुभाषिक दृष्टि

भारतीय समाज बहुभाषिक है। इस समाज का प्रत्येक बच्चा बहुभाषिक होता है, लेकिन कक्षाओं में समाज की भाषिक वास्तविकता को नज़रअंदाज करके उन पर लक्ष्य भाषा के रूप लाद दिए जाते हैं। इससे बच्चों की सृजनात्मकता तथा समझ पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। समाज बहुभाषिक होता है। उसमें रहने वाले बच्चे भी बहुभाषिक होते हैं। कक्षाओं में बच्चों की बहुभाषिक क्षमताओं का उपयोग करना सीखने-सिखाने की बहुभाषिक दृष्टि का महत्वपूर्ण पहलू है।

बहुभाषिकता ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक से अधिक भाषाओं के उपयोग को स्वीकार किया जाता है। एक ही समय में मातृभाषा के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषा/भाषाओं तथा अन्य भाषा को सुनने व समझने, बोलने व व्यक्त करने, लिखने तथा पढ़ने को महत्व दिया जाना बहुभाषिकता का उद्देश्य है। बहुभाषिकता का क्रियान्वयन कई तरह के विचारों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है —

पहला – एक से अधिक भाषाओं का ऐसा शैक्षिक कार्यक्रम चलाना, जिसमें विद्यार्थी शामिल की गईं सभी भाषाओं में समान स्तर तक योग्यता प्राप्त कर ले।

दूसरा – एक से अधिक भाषाओं का ऐसा शैक्षिक कार्यक्रम चलाना, जिसमें विद्यार्थी किसी एक भाषा में उच्च भाषायी योग्यता तथा बाकी भाषाओं में कामचलाऊ दक्षता प्राप्त कर ले।

तीसरा – सीखने-सिखाने के माध्यम के रूप में किसी भाषा के बहुभाषिक स्वभाव को अपनाना।

चौथा – सीखने-सिखाने के माध्यम के रूप में सहजता तथा संदर्भानुसार एक से अधिक भाषाओं का उपयोग करना।

बहुभाषिकता की आधारभूत मान्यता

बहुभाषिकता का शैक्षिक महत्व समझने के लिए इसकी आधारभूत मान्यताओं को समझना मददगार होगा। भाषाविदों का मानना है कि कोई भी भाषा अन्य भाषाओं से मिलकर विकसित होती है। भाषा के विकास का मतलब इसके शब्द भंडार में वृद्धि का होना, उसकी अभिव्यक्ति की विधाओं का विस्तार होना, उसमें ज्ञान के नए अवसरों की संभावनाओं का खुलना आदि होता है। जो घटना भाषाओं के स्तर पर घटित होती है वही व्यक्ति के स्तर पर भी घटित होती है। एक से अधिक भाषाओं में भाषिक-व्यवहार करने वालों के पास बिंब, विधा, शब्द-चयन, उदाहरण आदि का भंडार एक ही भाषा जानने वाले की तुलना में अधिक होता है। "हाल के अध्ययनों ने दिखलाया है कि द्विभाषिकता का संज्ञानात्मक विकास व विद्वत-उपलब्धि से गहरा सकारात्मक संबंध है।" (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, 2009:20)।

भारत में 1652 भाषाओं को पहचाना गया है। भाषा की ऐसी विविधता में अंतर्निहित ज्ञान की विभिन्न बातों को समझने के लिए इन भाषाओं को व्यवहार में लाना आवश्यक है। विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान को साझा करने की दृष्टि से अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को सीखना ज़रूरी होता है।

बहुभाषिकता हमारे देश की खासियत है। इस खासियत को पहचानकर शैक्षिक कार्यक्रम के रूप में अपनाना विद्यार्थी तथा राष्ट्र दोनों के लिए हितकारी हो सकता है। जब किसी बच्चे की भाषा को नकारा जाता है तब उसके समूचे व्यक्तित्व को नकारा जा रहा होता है। बच्चे की भाषा को स्वीकारने का अर्थ, उसके व्यक्तित्व को सम्मान देना है। 'बच्चे की भाषा में उसकी अनुभूत दुनिया पैबस्त होती है।' उसकी भाषा को नकारते समय उसके अनुभवों को नकारा जा रहा होता है। विद्यार्थी के आत्मविश्वास के लिए यह ज़रूरी है कि उसे उसकी भाषा में सुना जाए। उसके बाद ही उसकी भाषा तथा किसी अन्य भाषा में आदान-प्रदान का वातावरण बनाया जाए। यह बात शैक्षणिक महत्व की है कि भाषा विशेष के विकास के लिए बच्चे की भाषा को नकारा न जाए।

गतिविधि - 12

शिक्षिका ने पूछा कि पानी हमारे किस-किस काम आता है? विद्यार्थी ने अपनी मातृभाषा मिश्रित हिंदी में उत्तर देना शुरू किया। इस पर आपत्ति करते हुए शिक्षिका ने उसे मानक हिंदी में बोलने के लिए कहा।

उपर्युक्त घटना को ध्यान में रखते हुए बच्चे के बौद्धिक विकास, शिक्षिका-विद्यार्थी संबंध आदि के पहलुओं पर परस्पर चर्चा कीजिए।

यदि हम चाहते हैं कि ऐसा जनतंत्र पनपे जिसमें सभी की भागीदारी संभव हो सके तो हमें प्रत्येक बच्चे को उसकी भाषा में सुनना होगा। दो भाषा बोलने वाले बच्चे न केवल अन्य भाषाओं पर नियंत्रण रखते हैं, बल्कि अकादमिक स्तर पर भी वे रचनात्मकता दिखाते हैं, साथ ही उनमें ज़्यादा सामाजिक सहिष्णुता भी पाई गई है। भाषिक खजाने की व्यापक व्यवस्था पर उनका नियंत्रण उन्हें विविध प्रकार की एवं विविध स्तर की सामाजिक परिस्थितियों से ज़्यादा अच्छी तरह जूझने में सहायक होते हैं। साथ ही इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि 'द्विभाषीय' विविध सोच में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। इसलिए स्कूली पाठ्यचर्या में द्विभाषिकता को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। हमें यह मालूम होना चाहिए कि विविध भाषिक कुशलताएँ अवचेतन स्तर पर आसानी से एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित हो जाती हैं और इसके लिए किसी भी प्रकार के अतिरिक्त प्रयास की ज़रूरत नहीं होती।

— भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, पृ० 21-22

राष्ट्र के स्तर पर लोकतंत्र की मज़बूती के लिए बहुभाषिकता को अपनाना अनिवार्य है। जो जिस भाषा में देश के हालातों को समझता है उसे उस भाषा में अभिव्यक्ति के अवसर न मिलें तो लोकतंत्र में जनता की भागीदारी के क्या मायने रह जाएँगे?

बहुभाषिकता के प्रत्यक्ष लाभ

बहुभाषिकता से होने वाले लाभों को नीचे सूत्रबद्ध किया गया है —

- **चिंतन की नयी संभावनाएँ** – बहुभाषिकता से चिंतन की नयी संभावनाएँ सामने आती हैं, क्योंकि प्रत्येक भाषा सोचने-समझने के विशेष औज़ारों से भी संबद्ध होती है।
- **नए संबंध** – आमतौर पर देखा गया है कि संबंधों के बनने में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक से अधिक भाषाएँ जानने से व्यक्ति के संबंधों का दायरा विस्तृत होता है तथा संबंधों में विविधता आती है।
- चिंतन में लचीलापन तथा विविधता आती है।
- आत्म-विश्वास में वृद्धि होती है।
- **आर्थिक** – अलग-अलग भाषाओं में दक्षता एवं योग्यता हासिल करने से व्यक्ति अनेक आर्थिक गतिविधियों में भागीदार हो सकता है। बहुभाषिकता का एक अर्थ तो एक से अधिक भाषाओं में भाषिक-व्यवहार की दक्षता और योग्यता हासिल करने से लिया जाता है।

बहुभाषिकता का अन्य अर्थ कई तरह की संवादात्मक परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता का होना भी है। जब एक ही भाषा को विभिन्न जेंडर, जातीय, धार्मिक, उम्र, आर्थिक स्थितियों आदि संदर्भों में अलग-अलग तरह से उपयोग में लाया जाता है तब भाषा के ऐसे उपयोग को भी बहुभाषिकता की श्रेणी में लिया जाता है।

कक्षाओं में अनेक बार ऐसी स्थितियाँ आती हैं जब किसी एक भाषा के माध्यम से परस्पर संवाद संभव नहीं हो पाता। ऐसे में संवाद को संभव बनाने के लिए अन्य भाषाओं का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। कक्षाओं में इस प्रकार की स्थितियों में बहुभाषिक दृष्टि से शिक्षण करना सहायक होता है।

सावधानियाँ

बहुभाषिकता को शिक्षणशास्त्रीय विचार के रूप में अपनाते समय कुछ सावधानियाँ बरतने की आवश्यकता है। बहुभाषिकता को स्वीकार करना तथा अनुचित या अप्रचलित संदर्भों में एक भाषा में लिखने-बोलने के दौरान बलात् एक से अधिक भाषाओं के शब्दों का

उपयोग करने में अंतर है। जैसे – **मैं ट्रेन से आऊँगा** या **मैं सफ़ेद पायजामा पहनता हूँ** बहुभाषिक वाक्यों के उदाहरण हैं, लेकिन **मैं व्हाइट ट्राऊज़र वीयर करता हूँ** वर्तमान में हिंदी के संदर्भ में बहुभाषिकता का उदाहरण नहीं माना जा सकता।

3.1.4 रचनात्मक दृष्टि

रचनात्मक शिक्षण को समझने के लिए आइए एक कक्षा में चल रही प्रक्रियाओं से उपजे कुछ दृश्यों पर विचार करते हैं —

दृश्य-1

एक स्कूल में बी.एड. का कोर्स कर रही एक विद्यार्थी-अध्यापिका आठवीं कक्षा को हिंदी पढ़ा रही है। इस कक्षा के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार पाठ्यपुस्तक के पाठ 'पानी की कहानी' पर कक्षा ली जा रही है। विद्यार्थी अध्यापिका ने सूचित किया कि इस पाठ में पानी के जीवन चक्र के बारे में बताया गया है। उसने सूचित किया कि पानी भाप बनकर उठता है, बादल बन जाता है और बरसकर फिर पानी बनता है। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। विद्यार्थी-अध्यापिका ने श्याम-पटट् पर 'जल चक्र' लिखकर उसके नीचे तीर के निशानों की मदद से पानी के भाप, बादल, बारिश और फिर पानी बनने की प्रक्रिया को दर्शाया। विद्यार्थियों की ग्रहण करने की क्षमता का तत्काल मूल्यांकन करने के उद्देश्य से उसने विद्यार्थियों से प्रश्न पूछने शुरू किए– पानी पहले कहाँ था ? उसके बाद क्या हुआ? बादल बनकर क्या हुआ ? और आखिर में क्या हुआ ? विद्यार्थियों को सूचनाएँ वापस लौटाता देख विद्यार्थी-अध्यापिका का चेहरा खुशी से खिल उठा। मारे खुशी के वह बार-बार शाबाश-शाबाश कह रही थी और साथ ही 'इनाम' पाने की उम्मीद से पीछे बैठे सुपरवाइज़र, की तरफ़ भी देख रही थी। कक्षा के समाप्त होने पर विद्यार्थी-अध्यापिका तथा सुपरवाइज़र बाहर निकले। विद्यार्थी अध्यापिका ने चेहरे पर संतोष का भाव लाते हुए कहा– "सर, विद्यार्थियों ने सब बता दिया।"

दृश्य-2

दृश्य-1 में वर्णित स्कूल एवं कक्षा। वही विद्यार्थी-अध्यापिका 'पानी की कहानी' पाठ को ही आगे पढ़ा रही है। विद्यार्थी-अध्यापिका ने विद्यार्थियों से किताबें खोलने को कहा। जब किताबें खुल गईं तो उसने एक विद्यार्थी से पाठ का वाचन करने के लिए कहा। बाकी विद्यार्थियों से कहा कि वे अपनी-अपनी किताबों पर ध्यान दें। जिससे कहा गया था उस विद्यार्थी ने पढ़ना शुरू किया। बीच-बीच में विद्यार्थी-अध्यापिका वाचन करने वाले के द्वारा किए जा रहे 'अमानक (शुद्ध नहीं) उच्चारण' के मानक स्वरूप का वाचन कर रही थी। कुछ पंक्ति का वाचन करने के बाद दूसरे विद्यार्थी को वाचन की ज़िम्मेदारी दी गई। यह सिलसिला घंटी के बज जाने तक चलता रहा।

दृश्य- 3

दृश्य-2 वाली कक्षा। उसी विद्यार्थी-अध्यापिका द्वारा उसी पाठ का वाचन करवाया जा रहा है। आज की कक्षा में एक अतिरिक्त काम किया जा रहा है। विद्यार्थियों को पाठ में आ रहे संज्ञा एवं सर्वनाम पदों की पहचान करवाई जा रही है।

उपरोक्त दृश्य भाषा शिक्षण के क्षेत्र में वर्चस्व एवं प्रभुत्व प्राप्त कर चुकी दृष्टि का एक उदाहरण है। ऐसा नहीं कि इस प्रकार का शिक्षण मात्र उसी स्कूल में हो रहा था। ऐसा अन्य स्कूलों में भी हो रहा है जिनमें प्रतिष्ठित निजी विद्यालय भी शामिल हैं।

इस दृष्टि को *भाषा शिक्षण की तकनीकी दृष्टि* का नाम दिया जा सकता है। इसमें भाषा के शिक्षण को पाठ में दर्ज सूचनाओं को पहचानने तथा सूचनाओं को याद करने की तकनीक में ढाल दिया गया है। सूचनाओं को केंद्र में रखकर किए जा रहे शिक्षण में भाषा को तकनीकी विषय बनाकर उसमें निहित स्वतंत्रता के तत्व को दबा दिया गया है। उपरोक्त दृश्यों में व्याकरण के पक्ष को शामिल किया गया है जो कि भाषा का अन्य तकनीकी पक्ष है।

तकनीकी दृष्टि से आशय शिक्षणशास्त्र की उस दृष्टि से है, जिसमें पाठ की सूचनाओं को ज्ञान का एकमात्र स्रोत माना जाता है। जिसमें सोच में भिन्नता की गुंजाइश नहीं होती। जिसमें उपलब्धि के मानक सूचनाओं पर केंद्रित होते हैं।

तकनीकी दृष्टि में सीखने का वैयक्तिक पक्ष खो जाता है, क्योंकि ज्ञान को वस्तुनिष्ठ तत्वों एवं सूचनाओं के रूप में पेश किया जाता है। ज्ञान को वस्तुनिष्ठ मानने के कारण मान लिया जाता है कि ज्ञान व्यक्ति के बाहर होता है जिसे व्यक्ति पर थोपा जाता है। विशेषकर भाषा के संदर्भ में ज्ञान को व्यक्ति से बाहर एवं वस्तुनिष्ठ मानने के दो खतरनाक परिणाम निकलते हैं। पहला, ज्ञान क्या है? तथा ऐसा ही ज्ञान क्यों है? जैसे सवालों के स्थान पर दिए गए ज्ञान को व्यक्ति पर लादने के तरीके महत्व हासिल कर लेते हैं, तथा दूसरा तकनीकी दृष्टि में ज्ञान को इंसानी देन न मानकर प्राकृतिक मानने का भ्रम बनता है।

ऊपर जिन दृश्यों का ज़िक्र किया गया है उनमें सीखने वाले केवल ग्रहण करने वालों की भूमिका में हैं। भाषा की इन कक्षाओं में सूचनाओं को सुनने तथा याद करने एवं याद की गई सूचनाओं को दोहरा देने में सीखने वालों को सहभागी बनाया जा रहा है। इन दृश्यों में भाषायी सृजनशीलता की प्रक्रिया पूरी तरह से अनुपस्थित है।

उपरोक्त दृश्यों में भाषा के शिक्षण को सूचनाएँ पहुँचाने का ज़रिया मान लिया गया है। ऐसे में शिक्षक का काम पाठ के साथ विभिन्न स्तरों पर जूझना नहीं होता, बल्कि पाठ को सूचनाओं के पैकेज में बदल देना भर होता है। इस दृष्टि से किए गए शिक्षण में मूल्यांकन भी तकनीकी पक्षों का ही किया जाता है। शिक्षण की तकनीकी दृष्टि में शिक्षक के भाषायी

स्तर पर सृजनशील होने की संभावनाएँ अत्यंत क्षीण हैं। ऐसे में शिक्षक के पास उपलब्ध सूचनाओं को संचरित करने का अनुभव तो होगा, लेकिन भाषा को सृजनशील औज़ार की तरह उपयोग करने का अनुभव नहीं होगा।

वैकल्पिक दृष्टि – रचनात्मक दृष्टि

ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से 'पाठ' के साथ उपरोक्त दृश्यों में किए गए व्यवहार को कार्टिशियनवाद की संज्ञा दी जाती है। कार्टिशियनवाद में ज्ञान को व्यक्ति से स्वतंत्र माना जाता है। इसमें यह माना जाता है कि ज्ञान की सत्ता जानने वाले से स्वतंत्र है इसलिए ज्ञान का स्वरूप स्थायी होता है।

उपरोक्त दृश्यों में जिस पाठ को 'पढ़ाया' जा रहा है अगर उसे 'पढ़ाने वाले' और 'पढ़ने वाले' के बदल जाने पर भी कक्षा में चलने वाली शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जिन सूचनाओं को विद्यार्थियों तक पहुँचाया जा रहा है वे स्थायी हैं। इसलिए शिक्षण शास्त्रीय दृष्टि से ऐसी कक्षाएँ कार्टिशियनवाद की कोटि में रखने योग्य हैं। इस प्रकार की कक्षाओं में भाषा का शिक्षण सूचनाओं के संप्रेक्षण तथा सूचनाओं को याद करने का माध्यम बन जाता है।

रचनात्मक गैर-रचनात्मक

गैर-रचनात्मकता के विचार को चुनौती देने वाले विचारकों में जॉन डिवी (1859-1952) महत्वपूर्ण विचारक थे। डिवी के कार्टिशियनवाद से असंतोष के चार प्रमुख कारण थे —

1. गैर-रचनात्मक ज्ञान को निरपेक्ष रूप से निश्चित विश्वासों तथा स्वप्रमाणित अंत:प्रज्ञ ज्ञान पर आधारित मानता है, लेकिन गैर-बुद्धिवादी (प्रयोजनवाद/उपकरणवाद) मानते हैं, कि हमारे सभी विश्वास संदेह के घेरे में रहते हैं तथा संशोधनीय होते हैं, इसलिए ज्ञानमीमांसा का काम प्रमाणिक तथा निश्चित ज्ञान देना नहीं, बल्कि तार्किक ज्ञान देना है। इसी वजह से डिवी ने स्वयं को ज्ञान के सिद्धांतकार के स्थान पर खोज के सिद्धांतकार के रूप में प्रस्तुत किया।

2. प्रयोजनवादी, जानने वाले या खोजने वाले को, तार्किक विश्वास की खोज करने वाले को सक्रिय व्यक्ति मानते हैं। व्यक्ति किन्हीं सिद्धांतों का अनुसरणकर्ता मात्र नहीं होता। डिवी 'ज्ञान के दृष्टा' सिद्धांत के खिलाफ़ थे। संसार के विषय में हमारे तार्किक विश्वास किसी ऐसे चमत्कार तथा निष्क्रिय प्राप्ति का परिणाम नहीं हैं जिन्हें हमने निजी तौर पर तैयार किया हो तथा जो हमारे अपने मस्तिष्क की कंदराओं में व्यवस्थित हुआ हो, बल्कि वे वातावरण के साथ हमारे सायास तथा प्रयोगात्मक अंत:क्रिया का फल होते हैं। बौद्धिक उपकरण जिनसे हम संसार का सामना करते हैं,

आरोपित नहीं होते। वे हमारी ज़रूरतों तथा उद्देश्यों के दबाव में हमारे द्वारा ही सृजित किए जाते हैं।

3. ज्ञान या तार्किक विश्वास को प्राप्त करने वाला कोई शुद्ध मस्तिष्क या चेतना नहीं होता जैसा कि गैर-रचनावादी मानते हैं। डिवी के अनुसार 'वह एक समझदार प्राणी होता है जोकि प्राथमिक तौर पर दैहिक उद्देश्यों द्वारा परिचालित होता है तथा संसार के बारे में तार्किक विश्वास अपने चारों ओर के वातावरण के साथ दैहिक अंत:क्रिया द्वारा निर्मित करता है।'

4. गैर-रचनात्मकता के विरोधी तार्किक विश्वास की खोज को एक आवश्यक सामाजिक उपक्रम मानते हैं। यह विचार गैर-रचनात्मक विचार से भिन्न है तथा इसमें जानने वाले के वैयक्तिक एकाकीपन को जानने का आधार माना गया है। ज्ञान या तार्किक विश्वास एक सामाजिक उत्पाद है, उभयनिष्ठ बौद्धिक संपदा का एकत्रीकरण है। डिवी जिसे 'संचित अनुभव' *(फंडिड एक्सपीरियंस)* कहना पसंद करते हैं। (रावत, 2014:68-69)

रचनात्मक दृष्टि *(कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रेस्पेक्टिव)* से भाषा के शिक्षण में दिए गए ज्ञान की सत्ता व्यक्ति के सोच की क्षमता पर हावी नहीं रहती। इस दृष्टि से उपर्युक्त विद्यार्थियों के समक्ष अंतिम सच की तरह नहीं रखा जा सकता, बल्कि उस 'पाठ' से भाषा में निहित स्वतंत्रता का बोध करते हुए पानी के साथ-साथ किन्हीं अन्य वस्तुओं की कहानी या विवरण आदि की रचना करवाने की आवश्यकता है। रचना करने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की भाषा में विविधता आएगी और साथ ही वे अपने आस-पास उपलब्ध भाषा के विविध प्रयोग सीखेंगे। ऐसे में वे जान सकते हैं कि 'लिखने, सुनने तथा सोचने में गहरे अंतर्संबंध होते हैं।' ऐसे में वे समझ सकते हैं कि सोचे गए प्रमाण लिखित या मौखिक अभिव्यक्ति रचना के स्तर पर किसी बात को कहना तथा उसे अधिक असरदार तरह से कहना क्या होता है।

भाषायी विकास के संदर्भ में प्याजे का मानना है कि क्रियाओं के कारण भाषा का विकास होता है। उनका मानना है कि बच्चे की भाषा के विकास में उसके द्वारा पूर्व में की गई क्रियाएँ होती हैं। क्रियाओं को आत्मसात् करने की ज़रूरत को पूरा करने के लिए भाषा विकसित होती है। वे जानने को संक्रिया करने के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके लिए जानने का अर्थ वस्तु या घटना पर इस प्रकार संक्रिया करना कि उनमें बदलाव आए। इसके साथ ही बदलाव के कारण को समझना-जानना है।

भाषा के संदर्भ में जानने का अर्थ हुआ उपलब्ध भाषा पर संक्रिया करना। उसका उपयोग करना, उपयोग में बदलाव करना तथा बदलाव से पड़ने वाले फ़र्क को समझना।

प्याजे के अनुसार जानने के दो पक्ष होते हैं– आकृतिमूलक (figurative) तथा क्रियामूलक (operative) आकृतिमूलक का अर्थ है कोई वस्तु इंद्रियों को जैसी लग रही है। क्रियामूलक का अर्थ है वस्तु में परिवर्तन हेतु उस पर क्रिया करना। प्याजे सीखने तथा भाषा के विकास की दृष्टि से क्रियामूलक पक्ष को महत्वपूर्ण मानते हैं। आकृतिमूलक पक्ष तो कच्चा माल है जिस पर क्रिया करके नए रूप प्रदान करने से सीखना संभव होता है।

उपरोक्त चारों दृश्य सीखने के आकृतिमूलक पक्ष के उदाहरण हैं। उनमें विद्यार्थी सुन और देख रहे हैं। सुने और देखे पर क्रिया नहीं कर रहे। रचनात्मक शिक्षण के लिए ज़रूरी है कि विद्यार्थी 'पानी की कहानी' की तर्ज़ पर किसी अन्य वस्तु या घटना का विवरण सोचें, सुनाएँ तथा उनके विवरणों पर चर्चा करें। ऐसा किया जाना सीखने के क्रियामूलक पक्ष को जीवंत करना होगा। इस प्रक्रिया में वे अपने विवरण तैयार करने हेतु उनके पास उपलब्ध भाषा में से चुनाव करेंगे, उसका उपयोग करेंगे, उसका मूल्यांकन करेंगे और दूसरों से साझा करेंगे। इस सक्रियता में भाषा का शिक्षण सार्थक तरीके से होगा। 'पानी की कहानी' पाठ को रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में उपयोग करने हेतु कुछ विषय इस प्रकार हो सकते हैं —

- गेहूँ की कहानी
- सोफ़े की कहानी
- तवे की कहानी
- पेंसिल की कहानी

ये सारे विषय उनकी आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

विद्यार्थी अपनी मानसिक संरचना के अनुसार किसी स्वीकृत वस्तु का चयन करके उसकी कहानी सोच सकते हैं। दूसरों से साझा करने की प्रक्रिया में वे अपनी कहानी में परिवर्तन करेंगे। परिवर्तन की प्रक्रिया सीखने का प्रमाण है।

विचार की व्याख्या भाषा के आधार पर नहीं की जा सकती, क्योंकि विचार वे भी करते हैं जो सुन-बोल नहीं सकते। विचार तथा भाषा के मूल भिन्न हैं। विचार का जन्म अनेक क्रियाओं द्वारा होता है जिनमें भाषा भी एक हो सकती है। विचार स्वयं के कामों का अमूर्तीकरण करने से निकलता है। (प्याजे. 1980-XVI)। यानी विभिन्न संक्रियाओं में समानता, असमानता एवं विरोध आदि के आधार पर वस्तुओं और घटनाओं को अमूर्त कोटियों में रखने की प्रक्रिया से विचार निकलता है।

उदाहरण के लिए *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्* द्वारा तैयार नवीं कक्षा के पाठ 'प्रेमचंद के फटे जूते' पर विचार करें। तकनीकी दृष्टि से भाषा का शिक्षण

करने पर पाठ में दर्ज सूचनाएँ महत्वपूर्ण हो जाएँगी, लेकिन रचनात्मक शिक्षण की दृष्टि से किसी व्यक्ति, तसवीर, वस्तु, दृश्य आदि का व्यंग्यात्मक विवरण तैयार करने हेतु प्रेरित करना अपेक्षित होगा। पाठ से विवरण तैयार करने की अंतर्दृष्टि लेकर कक्षा के साथ मिलकर किसी तसवीर का विवरण तैयार किया जाए। तैयार विवरण पर चर्चा की जाए तथा उसकी शैली तथा प्रभाव को सुधारने हेतु प्रयास किए जाएँ। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर विद्यार्थियों से व्यक्तिगत तौर पर या समूह में किन्हीं तसवीरों के विवरण तैयार करवाकर चर्चा करवाई जाए तथा विवरणों में सुधार किया जाए। इस प्रकार विद्यार्थी भाषिक गतिविधि में सक्रिय होकर भाषा का बेहतर विकास कर सकेंगे।

भाषा शिक्षण की रचनात्मक दृष्टि के अनुसार सोचना, भाषिक कुशलताओं से महत्वपूर्ण है। इसलिए लिखने तथा बोलने की क्षमताओं में सुधार तभी संभव है जब चिंतन को विकसित (मेकनेली:143) किया जाए। इसके लिए भाषा का प्रयोग करने का वातावरण उपलब्ध करवाना अनिवार्य शर्त है। नीचे जानने के आकृतिमूलक तथा क्रियामूलक पक्षों के समन्वय की कुछ गतिविधियाँ दी गई हैं —

कुछ गतिविधियाँ - 13

यहाँ केवल थोड़ी-सी गतिविधियाँ दी जा रही हैं जिन्हें कोई भी अध्यापक एक साधारण कक्षा में आयोजित कर सकता है। हर बार किसी गतिविधि में थोड़ी सा फेरबदल करने से बच्चे पिछली बार के मुकाबले और ज़्यादा उत्साह महसूस करेंगे। इसलिए इन गतिविधियों को बार-बार कीजिए और हर बार इनमें कुछ नया जोड़िए। आप जो चीज़ें जोड़ें उनका ब्योरा रखिए ताकि आप किसी नए सहयोगी को अपने प्रयोगों की जानकारी दे सकें। यहाँ दी गई लगभग हरेक गतिविधि दर्जनों नयी संभावनाओं की शुरुआत बन सकती है।

एक — क्या देखा?

पहला चरण– एक बच्चे से कहिए कि वह बाहर जाए, देखे कि बाहर क्या-क्या हो रहा है और लौटकर दूसरों को बताए। उदाहरण के लिए वह बताएगा कि उसने एक ठेला, दो दुकानें और एक साइकिल देखी।

दूसरा चरण – अब बाकी बच्चे उससे सवाल पूछेंगे। बच्चे गोल घेरे में बैठें और एक बच्चा एक ही सवाल पूछे। उदाहरण के लिए एक बच्चा पूछ सकता है, 'साइकिल के हैंडिल से क्या लटका था?' जवाब है, 'एक टोकरी लटकी थी।' अगला सवाल, 'टोकरी का रंग कैसा था?'

जारी है...

तीसरा चरण – जब सारे बच्चे एक-एक सवाल पूछ लें तो अध्यापक उस बच्चे से पूछे जो बाहर गया था कि उसे कौन-सा प्रश्न सबसे अच्छा लगा। मान लीजिए कि उसका जवाब हो– शशि का सवाल सबसे अच्छा था– तो अगला सवाल पूछिए– वह सवाल क्या था ?'

चौथा चरण – अब खेल के अगले दौर की शुरुआत शशि से होगी। उससे कोई ऐसी चीज़ देखने को कहिए जो पहले बच्चे ने नहीं देखी थी। शशि के वापस आने पर बच्चों से कहें कि वे सवाल पूछें– ऐसे सवाल जो पहले किसी ने नहीं पूछे।

दो — खोजियों की खबर

पाँच या छह बच्चों की टोली को स्कूल की इमारत के आस-पास या भीतर किसी निश्चित चीज़ या जगह का अध्ययन करने के लिए भेजिए। जैसे- वे पेड़ों के एक झुंड, चाय की गुमटी, टूटे हुए पुल या घोंसले का मुआयना करने जा सकते हैं। उनसे कहिए कि वे सावधानी से उस चीज़ की खोजबीन करें और अपने देखे हुए पर आपस में चर्चा करें।

जिस समय खोजी-दल बाहर गया हो, बाकी बच्चों को उस चीज़ के बारे में विस्तार से बताएँ। जैसे - यदि खोजी-दल चाय की गुमटी का अध्ययन करने गया है तो बच्चों को बताएँ कि वहाँ क्या-क्या चीज़ें उपलब्ध हैं (बच्चों से पूछें भी), उसे कौन चलाता है, वहाँ उपलब्ध चीज़ें, कहाँ-कहाँ से आती हैं, आदि।

वापस आने पर खोजी-दल कक्षा के सवालों का सामना करे। प्रश्न पूछने में अध्यापक की बारी भी आनी चाहिए।

अगली बार किन्हीं और बच्चों का खोजी-दल बनाइए।

तीन - बूझो, मैंने क्या देखा?

एक बच्चा बाहर जाए, दरवाज़े पर या कक्षा से कुछ दूर खड़े होकर आस-पास दिखाई दे रही सैकड़ों चीज़ों में से कोई एक चुन ले। वह चीज़ कुछ भी हो सकती है– पेड़, पत्ता, गिलहरी, चिड़िया, तार, खंबा, पत्थर। लौट कर वह उस चीज़ के बारे में सिर्फ़ एक वाक्य बोले, जैसे- 'मैंने एक भूरी चीज़ देखी।' अब इस बच्चे से एक प्रश्न पूछ कर उस चीज़ का अनुमान लगाने का

मौका कक्षा के हर बच्चे को मिलेगा। उदाहरण के लिए —

पहला बच्चा– 'क्या वह पतली है ?'	**उत्तर**– 'नहीं'।
दूसरा बच्चा– 'वह कितनी बड़ी है ?'	**उत्तर**– 'वह काफ़ी बड़ी है।'
तीसरा बच्चा– 'क्या वह कुर्सी जितनी बड़ी है ?'	**उत्तर**– 'नहीं, कुर्सी से छोटी है ।'
चौथा बच्चा– 'क्या वह मुड़ सकती है ?'	

अंत में सही अनुमान लग चुकने के बाद कुछ बच्चों को अपने प्रश्नों के उत्तरों से आपत्ति हो सकती है। उदाहरण के लिए किसी को यह आपत्ति हो सकती है कि रंग भूरा नहीं, मिट्टी जैसा था। ऐसी स्थिति में बारीक अंतर देख पाने में अध्यापक को बच्चों की मदद करनी होगी।

— कुमार, 1986:16-17

रचनात्मक शिक्षण छतरी या बिंदु

रचनात्मक शिक्षण एक बिंदु न होकर छतरी है । इस छतरी के नीचे अनेक प्रकार के रचनात्मक विचार पनाह लिए हुए हैं । इनमें परस्पर साम्यता के साथ-साथ अलगाव भी है । अगली कुछ पंक्तियों में इनमें साम्यता तथा अलगाव को समझाने का प्रयास किया गया है ।

रचनात्मक शिक्षण की तमाम धाराओं में इस बात पर सहमति है कि सीखने वाला सक्रिय होकर सीखता है । इस बात पर भी सहमति है कि सीखने में अनुभवों का गहरा महत्व है। इस बात पर भी सहमति है कि सीखने की प्रक्रिया में ऐसी बातों का केंद्रीय महत्व है जिनमें सीखने वाले में रुचि पैदा हो और इस बात पर भी सहमति है कि सक्रिय होने का मतलब दिमागी रूप से सक्रिय होना है । यानी शारीरिक सक्रियता का तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक उसे दिमागी सक्रियता का आधार न बनाया जाए । इस बात पर भी सहमति है कि भाषा का विकास उस तरह से नहीं होता जिस प्रकार व्यवहारवाद द्वारा बताया जाता है। यानी भाषा के विकास की व्याख्या उद्दीपन-प्रतिक्रिया उपागम द्वारा नहीं की जा सकती। उपर्युक्त अंश का मकसद इस तथ्य को उजागर करना है कि रचनात्मक शिक्षण के तहत आने वाली धाराओं में सहमति तथा विरोध के स्वरों को पहचान कर उपयोग किया जाए ।

डिवी का विचार है कि 'सीखना उद्देश्यपरक होता है ।' प्याजे इस विचार पर इस शर्त के साथ सहमति जताते हैं कि 'उद्देश्य' तथा 'रुचि' को पर्यायवाची माना जाए तथा उद्देश्य का अर्थ किसी काम को रुचिपूर्वक करने से लिया जाए। प्याजे के लिए किसी उद्देश्य को रुचिविहीन होकर पूरा करना मनुष्य के सक्रिय होने का सबूत नहीं है ।

डिवी और प्याजे में एक अंतर यह है कि डिवी की चिंता वैज्ञानिक पद्धति से समस्या का समाधान करने की थी, लेकिन प्याजे रोज़मर्रा की समस्या समाधान की बजाए संज्ञानात्मक संरचनाओं के विकास को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं ।

डिवी के प्रयोजन का सिद्ध हो जाना ज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । उनके अनुसार ज्ञान का मूल्य तब है जब उससे किसी प्रयोजन को सिद्ध किया जा सके । उनके लिए प्रमाणिक ज्ञान की कसौटी यह है कि ज्ञान को इस्तेमाल में लाने पर यदि उससे समस्या का समाधान हो जाता है तभी उसे प्रमाणिक माना जा सकता है ।

प्याजे ज्ञान का स्रोत मानसिक संरचनाओं में बदलाव को मानते हैं । उनके अनुसार मानसिक संरचना में बदलाव होना बंद हो जाए और एक संतुलन बनने लगे तो वह स्थिति 'सीखना' है ।

प्याजे सीखने को व्यक्ति (बच्चे) के वातावरण के साथ अंत:क्रिया के रूप में व्याख्यायित करते हैं । उनके लिए व्यक्ति के वातावरण पर की गई संक्रियाओं से सीखना संभव होता है । वायगोत्सकी सीखने को सांस्कृतिक संदर्भों में समझाते हैं तथा इसके लिए वयस्क की सहायता को महत्व देते हैं । उनके अनुसार बच्चा जिस स्थिति में होता है, उस स्थिति में 'कुछ कठिनाइयाँ और हताशाएँ' जोड़ देने से भाषा के विकास की गति बढ़ जाती है । (वायगोत्सकी, 2007:37) । इसलिए वायगोत्सकी शिक्षक (वयस्क) की भूमिका को हस्तक्षेपकारी मानते हैं। वे बताते हैं कि जब हम बच्चे को व्यवस्थित रूप से ज्ञान प्रदान करते हैं तब हम उसे ऐसा बहुत कुछ सिखाते हैं जिसे वह सीधे देख या अनुभव नहीं कर सकता ।

प्याजे के लिए अनुदेशन एक अनावश्यक तत्व है । प्याजे के लिए बच्चे के विकास के स्तर का आकलन यह नहीं है कि उसने अनुदेशों के माध्यम से क्या सीखा, बल्कि सोचने का वह तरीका है जिससे उन विषयों के बारे में सोचता है जिनके बारे में कुछ भी नहीं सिखाया गया ।

— वही-21-22

3.1.5 भारतीय भाषा दृष्टि

भारत मे भाषा चिंतन की लंबी परंपरा रही है। भर्तृहरि से लेकर (छठी सदी), पाणिनी-भाषा का व्याकरण-(आठवी सदी), भारतेंदु हरिश्चंद्र (अठारहवी सदी) तक। ये सभी चिंतन संदर्भ में भाषा-शिक्षण के महत्व को स्वीकार करते हैं। संपूर्णता में भाषा के महत्व की बात तो भर्तृहरि ने भी की है जो रचनात्मक भाषा-शिक्षण (कंस्ट्रक्टविस्ट एप्रोच) का आधार है।

पदे न वर्णा विद्यन्ते
वर्णेषु अवयवा न च
वाक्यातिरिक्तपदानां
प्रविवेको न कश्चन

— भर्तृहरि, वाक्यपदीयम्

(जिस प्रकार वर्णों के कोई अवयव (टुकड़े) नहीं होते वैसे ही वर्ण पदों के अवयव नहीं होते और पद भी वाक्य के अवयव नहीं होते।)

गांधी जी और भाषा शिक्षण

भाषा के बारे में गांधी जी के विचारों को समझने के सामान्यत: दो रास्ते हो सकते हैं। एक रास्ता वह है जिसमें उनके सामाजिक दर्शन तथा राजनैतिक विचारों को समझा जाए। इस रास्ते पर चलते हुए हम उन विचारों के संसार से गुजरेंगे जो गांधी जी ने सभ्यता, देश एवं अहिंसा आदि के बारे में कहे हैं। उन्होंने एक ऐसे समाज की रचना करने में जीवन लगाया जिसमें लोग अच्छी और शैतानी सभ्यता के बीच अंतर करना सोचेंगे। उनके अनुसार अच्छी सभ्यता की कई निशानियों में से एक निशानी यह है कि उसमें मूल तत्व को केंद्र में रखा जाता है।

गांधी जी के भाषा संबंधी विचारों को समझने के लिए हम सीधे उन बातों का विश्लेषण कर सकते हैं जो उन्होंने भाषा के संदर्भ में कही हैं। जीवन और समाज की सरलता की ही तरह वे भाषा की सरलता में विश्वास करते थे। गांधी जी भाषा को इस या उस समाज की न मानकर पूरे समाज की मानते थे। वे मानते थे कि भाषा लोगों तक अपनी बात पहुँचाने का एक माध्यम है और साथ ही लोगों की बात को सुनने का भी माध्यम है। वे उस भाषा पर बल देते थे जिसमें बात को सरलता के साथ लोगों तक पहुँचाया जा सके। ऐसा करने के लिए आवश्यक था कि वे भाषा को जटिल बनाने वाले कारणों की पहचान कर उन्हें दूर करने का तरीका समझाएँ। उनकी समझ से भाषा को अप्रचलित शब्दों से लाद देना उसे जटिल बना देता है। उनका मानना था कि भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सुनने और पढ़ने वाले को आसानी से समझ आ जाए।

राष्ट्रभाषा-हिंदी या हिंदुस्तानी

सवाल–हमारी राष्ट्रभाषा क्या होगी? हिंदी या हिंदुस्तानी ?
जवाब–अगर हम सांप्रदायिक दृष्टिकोण छोड़ दें और साइंस की नज़र से इस सवाल पर विचार करें, तो हम खुद ही इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि हिंदुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा बनाने में हमारा हित है । वह न तो संस्कृत शब्दों से लदी हुई हिंदी हो, न फ़ारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू, बल्कि इन दोनों ज़बानों का सुंदर मेल हो । उसमें अलग-अलग प्रांतीय भाषाओं और विदेशी भाषा के शब्द भी, उनके अर्थ, मिठास या संबंध की दृष्टि से आज़ादी के साथ शामिल किए जाएँ, बशर्ते कि वे हमारी राष्ट्रभाषा का एक ताकतवर साधन बनें, जिसके ज़रिये इंसान के सारे विचार और भाव प्रकट किए जा सकें । सिर्फ़ हिंदी या उर्दू तक अपने को सीमित रखना समझदारी और राष्ट्रीयता के खिलाफ़ गुनाह करना होगा । अंग्रेज़ी भाषा दुनिया की सारी भाषाओं से सिर्फ़ इसलिए धनवान है कि उसने सभी भाषाओं से *शब्द उधार लिये* हैं । अगर अंग्रेज़ी में इटली, ग्रीस और जर्मनी वगैरा की भाषाओं के शब्द लिये जा सकते हैं, तो व्याकरण की दृष्टि से कोई फेरबदल किए बगैर हम अपनी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्द लेने में क्यों हिचकिचाएँ? साथ ही हमें दो लिपियाँ सीखने से क्यों घबराना चाहिए?

— गांधी वाङ्मय, 1992:231

गांधी जी ने जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का सपना देखा था और जिसको स्थापित करने हेतु उन्होंने प्रयास किए उसके केंद्र में मुख्यत: ग्रामीण उद्योग थे। उनका मानना था कि इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करने से स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता का विकास होगा। यदि वे ग्रामीण उद्योगों को शिक्षा के लिए केंद्रीय महत्व का मानते थे तो इसके लिए आवश्यक था कि शिक्षा की भाषा वह हो जो गाँव-देहातों में प्रयोग की जाती है। उस भाषा में वे शब्द हों जो उन उद्योगों में इस्तेमाल होते हैं, जिन्हें शिक्षा के केंद्र में रखा जाना है। ऐसी भाषा से ही विद्यार्थी में समझने तथा स्वयं को व्यक्त करने का आत्मविश्वास विकसित हो सकता है। आत्मविश्वास का गुण इस बात से भी संबंधित है कि शिक्षा की भाषा कैसी है।

गांधी जी के लिए भाषा का सवाल एक राष्ट्रीय सवाल भी था। वे चाहते थे कि बच्चों को ऐसी भाषा में शिक्षा दी जाए जो संस्कृत या फ़ारसी के शब्दों से लदी हुई न हो। अगर ऐसा होता है तो लोग भाषा को साधने का माध्यम बनाने की बजाए अपने-अपने संप्रदायों से जुड़ने का ज़रिया बना सकते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वे उस समाज को

सभ्य समाज मानते हैं जो सहजता की बुनियाद पर टिका हो। इसी तर्क के आधार पर गांधी जी भाषा को बोझिल होने से बचाते हुए सरल बनाने की दिशा में बढ़ते हुए देखना चाहते थे।

> *"भारतवर्ष में सात लाख देहात हैं। सारे कार्य देहातों पर निर्भर हैं। इसलिए जिसे वे लोग समझ सकें ऐसी भाषा का प्रयोग करने की आवश्यकता है।"*
>
> *— रेड्डी, 2000:27*

गांधी जी के लिए भाषा विचारों की मौलिकता का स्रोत है। जिस भाषा में काम किए जाते हैं उसी भाषा में अनुभवों का संचय होता है। अगर उपयोग की भाषा तथा शिक्षा की भाषा में अलगाव हो तो नुकसान मौलिकता का होता है। जिन विचारों के लिए लोगों के पास पहले से शब्द मौजूद हैं उन्हीं विचारों को व्यक्त करने के लिए यदि पहले शब्द या वर्णों को रटने में समय तथा शक्ति खर्च करनी पड़े तो विचार करने की प्रक्रिया मंद पड़ते-पड़ते कुंद भी हो सकती है।

> *"हमारे विरुद्ध आरोप यह है कि इसमें मौलिकता नहीं है, स्वतंत्र आरंभ की शक्ति नहीं है। वह हो कैसे, यदि हमें अपने मूल्यवान वर्ष एक विदेशी भाषा पर काबू पाने में लगाने पड़ें ?"*
>
> *— महात्मा गांधी, 1956:61-62*

> *"राष्ट्र को होने वाली उस असीम हानि का हिसाब कौन लगा सकता है, जो उसके हज़ारों नौजवानों को एक विदेशी भाषा और उसके मुहावरे पर प्रभुत्व पाने में– जिसका उनके दैनिक जीवन में अत्यंत थोड़ा उपयोग है और जिसे सीखने में उन्हें स्वयं अपनी मातृभाषा और अपने साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है– वर्षों बरबाद करने के लिए मजबूर होने से होती है? जिससे बड़ा कोई अंधविश्वास कभी नहीं देखा गया कि किसी भाषा-विशेष में विकास की अथवा सूक्ष्म या वैज्ञानिक विचारों को प्रकट करने की क्षमता नहीं हो सकती।"*
>
> *— महात्मा गांधी, 1956:63*

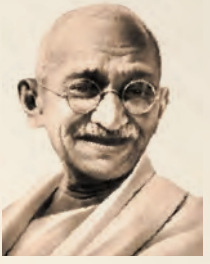

"मैं उस भाषा को हिंदी कहता हूँ, जिसे उत्तर भारत के हिंदू और मुसलमान बोल सकते हैं और जो देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है। जिस व्याख्या पर थोड़ी आपत्ति की गई है। दलील यह की जाती है कि हिंदी और उर्दू भिन्न भाषाएँ हैं। यह वाज़िब दलील नहीं है। भारत के उत्तरी भागों में मुसलमान और हिंदू एक ही ज़बान बोलते हैं। भेद पढ़े-लिखे वर्गों ने पैदा किया है, विद्वान हिंदुओं ने हिंदी को संस्कृतमय बना दिया है। इसलिए मुसलमान उसे नहीं समझ पाते। लखनऊ के मुसलमानों ने अपनी भाषा को फ़ारसीमय करके हिंदुओं की समझ में आने लायक नहीं रखा है। इस एक ही भाषा के ये दो उग्र रूप हैं। आम लोगों की बोली में उनकी कोई जगह नहीं है। मैं उत्तर में रहा हूँ, मैं हिंदुओं और मुसलमानों से आज़ादी के साथ मिला हूँ और मेरा हिंदी का ज्ञान तो बहुत थोड़ा है, लेकिन उनके साथ व्यवहार करने में मुझे कभी कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई। उत्तर की भाषा को आप उर्दू या हिंदी कुछ भी कहिए, है वह एक ही। अगर आप उसे उर्दू अक्षरों में लिखें तो उर्दू मान लीजिए। उसी को नागरी लिपि में लिख दीजिए तो वह हिंदी हो जाएगी।"

— गांधी वाङ्मय, 1959:74

गिजुभाई और भाषा-शिक्षा

गिजुभाई के संदर्भ में भाषा के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर बात करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि उनका प्रयोग प्राथमिक स्तर के बच्चों के साथ था। बच्चों की शिक्षा के सिद्धांतों को उन्होंने मारिया मांटेसरी से ग्रहण किया था।

भाषा शिक्षण के संदर्भ में मांटेसरी की दो बातों को रेखांकित करना आवश्यक है। पहली बात भाषा तथा लिपि के परस्पर संबंध में है तथा दूसरी भाषा और आवश्यकताओं के संबंध के बारे में। उनके अनुसार भाषा तथा लिपि में कोई तर्कयुक्त संबंध नहीं होता। इनके बीच संबंध मनमाना है जिसे मनुष्यों के समुदाय ने मान लिया है। उनका विचार है कि भाषा के विकास में मानसिक आवश्यकताओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

> *"भाषा की आवाज़ें स्वयं में अर्थहीन हैं । सामने रखा हुआ लोटा, और 'लौटा' शब्द में कोई तर्कयुक्त संबंध नहीं है। इस आवाज़ का अर्थ इसलिए है, क्योंकि मनुष्यों ने इसे एक विशेष अर्थ देना स्वीकार कर लिया है । यही बात सब शब्दों के लिए कही जा सकती है । ये किसी मानव समाज के सदस्यों के बीच समझौते की अभिव्यक्ति है और जो इस समझौते से परिचित हैं, वे ही इसे समझ सकते हैं। दूसरे समुदाय, भिन्न आवाज़ों से इन्हीं विचारों को व्यक्त करते हैं, जिसके लिए उनमें सहमति होती है ।*
>
> *... मनुष्य जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह उसकी मानसिक आवश्यकताओं द्वारा विकसित होती है। हम कह सकते हैं कि भाषा, मानव विचारों के साथ विकसित होती है ।"*
>
> *— मांटेसरी, 2010:87*

उपर्युक्त उद्धरण में मांटेसरी ने स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया है कि भाषा के विकास तथा आवश्यकता के बीच सकारात्मक रिश्ता होता है। पाठ्यक्रम के लिए इसके निहितार्थ यह है कि भाषा की कक्षाएँ विद्यार्थियों की मानसिक आवश्यकताओं पर केंद्रित होनी चाहिए।

गिजुभाई, मांटेसरी की इस बात को आत्मसात करते हुए प्रतीत होते हैं जब वे लिखते हैं कि "विद्यार्थियों के पास अपने निजी विचार लिखने के लिए नहीं होते, वरन् वे निबंध-संग्रह के विचार लिखते हैं। दया, नीति या स्वदेशाभिमान जैसे विषयों पर सातवीं कक्षा के विद्यार्थी जब निबंध लिखने बैठते हैं तो कहिए कि वे अपने या दूसरों के ही सही, आत्मसात् किए हुए ऐसे किन अनुभवों पर लिखेंगे? ऐसे में निबंध-लेखन में गड़बड़ न होगी तो क्या होगा ?

भाषा के शिक्षण में अभिव्यक्ति का बहुत महत्व है। अभिव्यक्ति स्वविचारों की हो सकती है। स्वविचारों के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी को विचार करने का अवसर मिले। विचार करने हेतु ऐसे विषय उपलब्ध हों जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हों। अमूर्त और उसकी मानसिक आवश्यकताओं से दूर की बातों में उसे रस न आएगा और इसकी अनुपस्थिति में रटना तो संभव है, लेकिन विचार प्रक्रिया को तेज़ करना संभव नहीं है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति के विकास के लिए विद्यार्थियों की ज़रूरतों को कहने-सुनने का आधार बनाना ज़रूरी है। इस बात को समझने के लिए गिजुभाई के *दिवास्वप्न* से एक प्रसंग पर विचार करना सहायक होगा —

एक दिन हमारी पाठशाला में एक परमहंस साधु आए । साथ में प्रधानाध्यापक भी थे । प्रधानाध्यापक ने उनका परिचय कराते हुए मुझसे कहा-"ये महाराज एक अच्छे धर्मोपदेशक हैं । विद्यार्थियों से इन्हें बड़ा प्रेम है । हर एक राज्य की पाठशालाओं में छात्रों को उपदेश देने की सुविधाएँ इन्हें प्राप्त हैं। आज ये साहब की चिट्ठी लेकर हमारी पाठशाला के छात्रों को उपदेश देने आए हैं ।"

मैंने आदरपूर्वक उनको नमस्कार किया, कुर्सी दी और कहा–"तो भगवन्, आप अपना कार्य आरंभ कीजिए ।"

लड़के तो महाराज के मुँड़े हुए सिर और मुँह की ओर ही देख रहे थे । उनका दुबला-पतला शरीर, कांतिपूर्ण मुख-मुद्रा और हाथ का कमंडल लड़कों का कौतूहल जगाने के लिए काफ़ी थे ।

मैंने विद्यार्थियों से कहा–"देखो बच्चो! ये स्वामीजी तुम्हें उपदेश देंगे, तुम सब ध्यान देकर सुनो ।"

लड़के अब मेरी आज्ञा समझने लगे थे । वे शांति से बैठ गए ।

स्वामीजी उपदेश देने लगे–"विद्यार्थियो! इस जगत में ईश्वर ही सबसे बड़ा है। यह दुनिया उसी ने पैदा की है । उसी के कारण यह जग है और वही हमारा आदि कारण है ।"

इस तरह ईश्वर की महिमा कही जाने लगी। मैं चुप बैठा था । मेरे विद्यार्थी शांत थे। लेकिन धीरे-धीरे उनमें अशांति फैल रही थी । कोई उदासीन होने लगा, कोई तख्ती पर कंकर से रेखाएँ खींचने और बिंदु बनाने लगा, कोई किताबें उलटने-पलटने लगा, किसी की आँखें कुछ-कुछ लाल होने लगीं, कोई एक उँगली दिखाकर बाहर चला गया । एक गया तो उसके पीछे दूसरा भी गया। एक-दो छात्र आपस में बातें करते जा रहे थे । मैंने उन्हें चुप रहने का इशारा किया और वे चुप को गए ।

स्वामीजी से मैंने विनयपूर्वक कहा-"महाराज! कोई सरल-सी बात कहिए जिसे ये छात्र समझ सकें ।"

वैसे, स्वामीजी बड़े सरल स्वभाव के थे। तत्काल उन्होंने हिंदू-धर्म व उसके ग्रंथों के विषय में चर्चा शुरू की। लेकिन छात्रों को उसमें भी मज़ा नहीं आया ।

मैं मन-ही-मन विचार कर रहा था– क्या धर्मोपदेश इसी तरह किया जाता है? क्या धर्म का तत्व जो अति गूढ है और जिसको जानने के लिए सारा जीवन खपा देना पड़ता है, इसी तरह समझाया जा सकता है? क्या यही धर्म की शिक्षा और धार्मिक ज्ञान है? क्या धर्म का यह ज्ञान थोथा और निरुपयोगी नहीं होता ?

मैं यह विचार कर ही रहा था कि इतने में स्वामीजी ने कुछ श्लोक पढ़ने शुरू किए ।

विद्यार्थी मन मारे उनकी बातें सुन रहे थे, लेकिन समझ नहीं सकते थे, और इसीलिए अधिकतर केवल मनोविनोद की दृष्टि से हुँकार दे रहे थे ।

सचमुच स्वामीजी बड़े गंभीर भाव से अपनी बातें कह रहे थे । उनके विचार में उनका यह कार्य आवश्यक और पवित्र था । वे अपने कर्त्तव्य का ठीक ही पालन कर रहे थे । लेकिन लड़कों के लिए तो यह सब भैंस के आगे बीन बजाने जैसा ही था । अब स्वामीजी ने श्लोकों का अर्थ समझाना शुरू किया। लड़कों को वह भी सुनना पड़ा। फिर उन्होंने अर्थ को तख्ते पर लिखा और लड़कों से कहा कि वे इन्हें अपनी कापी पर उतार लें। इसके बाद स्वामीजी ने कहा–"इन श्लोकों को तुम प्रतिदिन प्रात: उठकर पढ़ा करो, साँझ को सोते समय भी इनको पढ़ो । इससे तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी, बल बढ़ेगा, तेजस्वी बनोगे ।"

मेरी कक्षा के दस-दस, बारह-बारह वर्ष के ये बालक! भला इन्हें क्या पड़ी है धर्म और श्लोकों से ? लेकिन उन्होंने श्लोक लिखे और उनके अर्थ भी लिखे ।

मेरे विचारों की शृंखला टूटी नहीं थी– क्या धार्मिक शिक्षा के लिए दूसरी कोई जगह नहीं रही कि अब वह पाठशालाओं में दी जा रही है ? पहले तो देवालयों में प्रवचन हुआ करते थे और घरों में माता-पिता कहे अनुसार अपना व्यवहार करते थे । घर के ये आचार-विचार लड़कों को धार्मिक शिक्षा का काम देते थे, लेकिन अब या तो लोगों को धार्मिक प्रवचन सुनने की फ़ुरसत नहीं है, या बड़े-बूढ़े उन्हें सुन-सुनकर इतने तृप्त हो गए हैं या ऐसा और कुछ हुआ है कि अब यह काम पाठशाला का एक अंग बन कर रह गया है। मैं यह सब सोच ही रहा था कि इतने में घंटी बज गई ।

— गिजुभाई, 1997:30-32

उपर्युक्त प्रसंग में भाषा के शिक्षण के संदर्भ में कौन-कौन से प्रश्नों को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए —

प्रश्न 1. विद्यार्थी सुने इसके लिए विषय के चुनाव के आधार कौन से हों?

प्रश्न 2. रुचिपूर्ण विषय तथा सुनने के कौशल के बीच क्या संबंध है?

प्रश्न 3. रुचिपूर्ण विषय को सुनने तथा विचार करने के बीच क्या संबंध है?

प्रश्न 4. विचार करने तथा अभिव्यक्ति की क्षमता के बीच क्या संबंध है ?

प्रश्न 5. स्वतंत्र अभिव्यक्ति की क्षमता तथा लिखने के बीच क्या संबंध है ?

गिजुभाई के हवाले से जो चर्चा की गई उसके आधार पर भाषा के सीखने-सिखाने के संदर्भ में निम्नलिखित को सार रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

- भाषा के पाठ्यक्रम के केंद्र में विद्यार्थियों की मानसिक आवश्यकताएँ होनी चाहिए।
- कहने या लिखने का संबंध कहने या लिखने की जिज्ञासा से है।
- जिज्ञासा जाग्रत करने के लिए विद्यार्थियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं को आधार बनाया जाना चाहिए।

"वस्तुत: जिसके पास अपने निजी विचार नहीं होते, उसे लिखने की ज़रूरत ही नहीं है, उसे लिखना भी नहीं चाहिए, ऐसी कोई कोशिश करके उपहास का पात्र बनने की ज़रूरत नहीं। लेकिन यदि किसी व्यक्ति के पास अपने अंत:करण से उपजे विचार हों, तो वह उन्हें व्यक्त कर सकता है–वे व्यक्त हो जाते हैं। फिर चाहे वे किसी पत्र के रूप में हों या बड़े ग्रंथ के रूप में। लेकिन परीक्षा के लिए तैयार किए गए निबंध की बजाय पत्र का महत्व ज़्यादा है। आंतरिक उद्गारों के रूप में जो भी लिखा जाता है, वह सब निबंध-रूप है। अनुभव भी यही बताता है। यदि हम ऐसा आदेश जारी करा दें कि जिनके हृदय में विचार प्रस्फुटित न होते हों, वे हरगिज़ न लिखें, तो निबंध-लेखन का काम आसान हो जाए और साथ ही आज साहित्य में जो ढेर-सारा कूड़ा इकट्ठा हो गया है, वह भी साफ़ हो जाए।"

— बधेका, 2008:59

3.2 — भाषा शिक्षण की प्रचलित विधियाँ/ प्रणालियाँ और उनका विश्लेषण

भाषाओं को सीखने तथा सिखाने के संदर्भ में समय के साथ-साथ अनेक विधियाँ विकसित हुईं। अपने समय तथा विशेष समूहों की ज़रूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से ही इन अलग-अलग विधियों का सृजन किया गया या खोजा गया। हर विधि अपने आप में भाषा शिक्षण की किन्हीं चुनौतियों का सामना करने का प्रयास है।

यहाँ भाषा शिक्षण की कुछ प्रचलित विधियों का परिचय दिया जा रहा है। भाषा शिक्षण की रचनात्मक विधियों तथा प्रचलित विधियों को आवश्यकतानुसार एकांगी तथा समेकित रूप से उपयोग में लाया जा सकता है।

पाठ्यक्रम के इस भाग में आप सीखने-सिखाने की सात विधियों/उपागमों के बारे में पढ़ेंगे। ये तमाम विधियाँ सीखने-सिखाने की अलग-अलग चुनौतियों के संदर्भ में लोगों द्वारा विकसित की गईं। इनको भाषा शिक्षण की अलग-अलग चुनौतियों तथा उद्देश्यों के संदर्भ में समझा जाना ही उचित होगा। कक्षा में एक शिक्षक के पास अनेक तरह के विद्यार्थी होते हैं। किसी को जल्दी समझ में आ जाता है, किसी को थोड़ी देर में, किसी को एक उदाहरण से समझ में आता है, किसी और को दूसरे उदाहरण से, किसी को एक तरीके से समझ में आता है तो किसी को दूसरे तरीके से। इसलिए शिक्षण-पद्धतियों को विद्यार्थियों की समस्याएँ दूर करने के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। ये पंक्तियाँ एन.सी.ई.आर.टी द्वारा प्रकाशित 10वीं कक्षा की किताब से 'नौबतखाने में इबादत' से उद्धृत हैं। आइए इस पाठ की इन पंक्तियों पर विचार करें —

> *"मुहर्रम के गमज़दा माहौल से अलग, कभी-कभी सुकून के क्षणों में वे अपनी जवानी के दिनों को याद करते हैं। वे अपने रियाज़ को कम, उन दिनों के अपने जुनून को याद करते हैं।"*
>
> *— क्षितिज, भाग 2 : 118*

उद्धृत गद्यांश को ऐसे विद्यार्थियों के साथ पढ़ना हो जो इसमें शामिल अनेक शब्दों से अपरिचित हों तो ऐसे में आवश्यक है कि सबसे पहले अपरिचित शब्दों को परिचित शब्दों में अनूदित किया जाए। यानी यहाँ 'अनुवाद विधि' का उपयोग किया जाना सहायक होगा।

इसी कक्षा में जो विद्यार्थी गद्यांश में आए तमाम शब्दों से परिचित हैं और उनका उपयोग करते हैं तो उनके लिए 'प्रत्यक्ष-विधि' का उपयोग अधिक उपयुक्त होगा। यानी एक ही समय में एक ही कक्षा में एक ही शिक्षक द्वारा एकाधिक विधियों का उपयोग करने की संभावनाएँ हैं। इसलिए इन विधियों को एक-दूसरे के आमने-सामने न मानकर पूरक समझा जाना चाहिए।

3.2.1 व्याकरण-अनुवाद विधि

अधिकांश विधियों की ही तरह व्याकरण-अनुवाद विधि का जन्म भी द्वितीय भाषाएँ सीखने-सिखाने के क्रम में हुआ। इस विधि का उपयोग प्रथम भाषा शिक्षण में भी किया जाता है। जब कबीर के दोहों को समझना होता है, तब हिंदी के एक रूप का अनुवाद उसके दूसरे रूप में किया जाता है। ऐसा किए बिना हिंदी के अनेक रूपों में लिखे साहित्य को समझ पाना कठिन होता है। अनुवाद विधि का उपयोग करके आदिकालीन, भक्तिकालीन और छायावादी साहित्य के साथ-साथ संस्कृतनिष्ठ हिंदी में लिखे गए पाठों को समझना संभव हो पाता है।

अनुवाद विधि सीख ली गई भाषा तथा अपेक्षित भाषा के बीच संवाद को संभव बनाती है। हिंदी के एक रूप को यानी अपेक्षित रूप को समझने के लिए, हिंदी के ही सीख लिए गए रूप को आधार बनाया जाता है। इस प्रकार यह ज्ञात से अज्ञात के सिद्धांत पर टिकी विधि है। इस विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसमें अपेक्षित भाषा को समझ लिया जाता है, लेकिन अपेक्षित भाषा में व्यवहार करने की क्षमता को पूरी तरह से छोड़ दिया जाता है।

हिंदी की तरह की वे भाषाएँ जिनके अनेक रूप हैं उनके शिक्षण में किसी-न-किसी भाषा में अनुवाद विधि का उपयोग लाभप्रद है।

अनुवाद विधि का उपयोग कविता शिक्षण में दो रूपों में किया जा सकता है। पहले पद्य को गद्य में रूपांतरित करने में। किसी भी पद्य को पद्य के रूप में न समझकर गद्य के रूप में समझा जाता है। ऐसा अनुवाद की मदद से किया जाता है। दूसरा यदि पद्य हिंदी के ऐसे रूप में हो जिसे समझना किसी समूह विशेष के विद्यार्थियों के लिए कठिन है तो अनुवाद विधि का उपयोग करके उसे विद्यार्थियों को समझ में आ सकने वाले रूप में ढाला जाता है।

उदाहरण के लिए 'क्षितिज भाग-2' के पृ.20 पर दिए गए 'सवैया' पर विचार करें —

सवैया

पाँयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि के धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर, श्रीब्रजदूलह 'देव' सहाई।।

इस 'सवैया' के शिक्षण में अनुवाद विधि का उपयोग दो रूपों में किया जा सकता है। पहला इसमें आए शब्दों के ऐसे पर्याय बताकर जो विद्यार्थियों के लिए सहज हों। दूसरा इस 'सवैया' को सहज गद्य रूप में प्रस्तुत करके।

अनुवाद विधि हमारी भाषा संबंधी सीमाओं की ओर भी इशारा करती है। हिंदी के जिस रूप का उपयोग सवैया में किया गया है उस रूप का उपयोग शिक्षण में करने में, सामान्यत: शिक्षक असमर्थ होते हैं। यदि कोई शिक्षक ऐसा करने में समर्थ भी हो तो विद्यार्थी हिंदी के इस रूप में किए जाने वाले शिक्षण में सहजता का अनुभव नहीं करेंगे। इस कारण भी अनुवाद विधि का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

इसके उपयोग की औपनिवेशिक सीमा को समझते हुए अपेक्षित भाषा में लिखे का अनुवाद करने मात्र से आगे बढ़कर उसमें कही गई बातों में अंतर्निहित विभिन्न संदेशों को संदर्भगत करना आवश्यक है। वरना इस पद्धति के प्रभाव से आलोचनात्मक क्षमता कमज़ोर हो सकती है। हमें याद रखना होगा कि —

व्याकरण-अनुवाद (ग्रामर-ट्रांसलेशन) का तरीका व्यवहारवादी-मनोविज्ञान और संरचनावादी भाषा विज्ञान के तहत औपनिवेशिक ताकतों की ज़रूरत पूरी करने के क्रम में जन्मा और पनपा। (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, 2009:23)।

3.2.2 प्रत्यक्ष विधि

प्रत्यक्ष विधि का उपयोग ज़्यादातर द्वितीय भाषा शिक्षण में किया जाता रहा है। मान लीजिए कि विद्यार्थियों का एक समूह हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ रहा है। उस समूह को हिंदी, अनुवाद विधि द्वारा पढ़ाई जा सकती है। यानी हिंदी के पाठों का अनुवाद उनकी भाषा में करते हुए पाठ को समझने में मदद की जा सकती है, लेकिन उन विद्यार्थियों के बारे में सोचिए जिनकी भाषा तथा पाठ्यक्रम की भाषा में बहुत अंतर न हो। उन विद्यार्थियों को द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाने के लिए प्रत्यक्ष विधि का उपयोग किया जा सकता है। इस विधि में लक्षित भाषा को विद्यार्थियों की मातृभाषा या प्रथम भाषा में अनुवाद नहीं किया जाता। इसमें लक्षित भाषा को पढ़ाने के लिए लक्षित भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

इस विधि में सीखी जाने वाली भाषा के लिए उसी भाषा में वातावरण बनाया जाता है। शिक्षक को भाषा के उपयोग में सावधानियाँ बरतनी होती हैं। उसे भाषा का स्पष्ट प्रयोग करना होता है। साथ ही शब्दों के स्थान पर वाक्यों का प्रयोग करना होता है, क्योंकि उसके सामने ऐसे विद्यार्थी हैं जिन्होंने हिंदी का अध्ययन मातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में नहीं किया है इसलिए उसे पढ़ाने की गति को विद्यार्थियों के अनुसार ढालना होता है। प्रत्यक्ष विधि का ज़ोर इस बात पर होता है कि कक्षायी वातावरण को लक्षित भाषामय बनाया जाए। प्रत्यक्ष विधि का उपयोग प्रथम भाषा शिक्षण में अधिक प्रभावकारी होता है, क्योंकि इस स्थिति में शिक्षक के साथ-साथ विद्यार्थी भी लक्षित भाषा से परिचित होते हैं, इस कारण विद्यार्थी की भागीदारी हासिल करना सरल होता है।

प्रथम भाषा शिक्षण में प्रत्यक्ष-विधि का उपयोग उस समय चुनौती पेश करता है जब प्रथम भाषा के कम प्रचलित रूप का शिक्षण करना हो। उदाहरण के लिए आदिकालीन या भक्तिकालीन साहित्य पर आधारित पाठों को प्रत्यक्ष विधि द्वारा पढ़ाने के लिए शिक्षिका का साहित्य की इस भाषा पर अधिकार होना आवश्यक है। यदि पाठ्यक्रम में अवधी, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी, ब्रज आदि भाषाओं की अधिकता लिए पाठ हो तो शिक्षिका को इन भाषाओं में दक्ष होना होगा तभी वह प्रत्यक्ष विधि का उपयोग कर सकती है।

3.2.3 प्राकृतिक विधि

भाषा शिक्षण की प्राकृतिक विधि उस प्रक्रिया को आधार बनाती है जिससे गुज़रकर मातृभाषा ग्रहण की जाती है। मातृभाषा को ग्रहण करने वाला उसके बोले गए रूप को ग्रहण करता है। इसी के आधार पर प्राकृतिक विधि के अनुसार 'विद्यार्थियों को रुचिकर तथा समझ में आने वाली विषय-वस्तु वाचिक तौर पर उपलब्ध करवाई जाएँ।' विषय वस्तुएँ कठिनाई के अनुसार एक शृंखला में व्यवस्थित की जाएँ। यह विधि, द्वितीय भाषा शिक्षण की एक विधि है। जो विद्यार्थी हिंदी को अन्य भाषा के रूप में पढ़ रहे हैं उनके लिए यह विधि कारगर हो सकती है। ऐसे विद्यार्थियों को पहले हिंदी में सुनना तथा बोलना सिखाना चाहिए ताकि वे हिंदी के वाचिक रूप से परिचित हो जाएँ। इस प्रकार वे हिंदी को द्वितीय या अन्य भाषा के रूप में पढ़ते हुए उसी तरह की प्रक्रिया से गुज़रेंगे जिस तरह की प्रक्रिया से वे अपनी भाषा ग्रहण करते हुए गुज़रे।

इस विधि को उपयोग में लाने के लिए रुचिपूर्ण विषय-वस्तु की आवश्यकता होगी, विषय-वस्तु को कक्षा में सुनाया जाएगा तथा विद्यार्थी सहभागिता के साथ उसे सुनेंगे, सुनाएँगे और चर्चा करेंगे। यह विधि द्वितीय भाषा के मौखिक रूप पर बल देती है और अपेक्षा करती है कि विद्यार्थी सुनने और बोलने की कुशलता में दक्ष हो जाएँ। यह विधि इस बात पर बल देती है कि जैसे बोलना सीखने के लिए भाषा का वाचिक वातावरण महत्वपूर्ण है उसी प्रकार लिखना सीखना के लिए लिखित सामग्री के अवसर बहुतायात में हों।

3.2.4 संप्रेषणात्मक विधि

भाषा शिक्षण की संप्रेषणात्मक विधि इस मान्यता पर टिकी है कि भाषा का प्रमुख काम संप्रेषण करना है। यह विधि संप्रेषण करने की दक्षता को केंद्र में रखकर भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया प्रस्तावित करती है। किन्हीं दी हुई स्थितियों में संप्रेषण कर सकने की कुशलता हासिल कर लेना इस विधि के अंतर्गत लक्षित भाषा को सीख लेने का सबूत है। इसके तहत कुछ स्थितियों में लक्षित भाषा का उपयोग करवाया जाता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि लक्षित भाषा का उपयोग जीवन के विविध पक्षों में न होकर सीमित पक्षों में ही किया जाएगा, जैसे– विशेष प्रकार का रोज़गार प्राप्त करने के लिए लक्षित भाषा की सीमित शब्दावली तथा वाक्यों को बोलने तथा समझने की दक्षता हासिल कर लेना। इस प्रकार यह विधि भाषा को सीमित करके सीमित मात्रा में उपलब्ध संदर्भों में उपयोग करने तक सीमित कर देती है। यह विधि भाषा के सबसे महत्वपूर्ण पक्ष सृजन करने को छोड़ देती है यही इसकी सबसे गंभीर सीमा रही है।

हिंदी के शिक्षण में संप्रेक्षणात्मक विधि का उपयोग करने से पहले दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। इनमें से एक बात इसके लाभकारी पक्ष से संबद्ध है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस पद्धति में संप्रेषण कर सकने को केंद्र में रखा जाता रहा है। वह भी किसी विशिष्ट रोज़गार से जुड़े संदर्भों में, क्योंकि संप्रेषण कर सकना ही भाषा सीखने का मुख्य काम नहीं है इसलिए जब तक सोच सकने को संप्रेषणात्मक विधि में अंतर्गुंथित नहीं किया जाएगा तब तक भाषा के उपयोग की दृष्टि से विद्यार्थियों को स्वतंत्रता की ओर बढ़ने में दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा।

इस विधि की सीमा यह भी है कि यह भाषा-सृजन की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं देती। यह विधि भाषा को बने-बनाए उत्पाद की तरह देखती है। संप्रेषणात्मक विधि की यह सीमा है और सीमा, संदर्भों की और सीमितता की। इसलिए हिंदी-शिक्षण में इस विधि का उपयोग करते समय संप्रेषण के विभिन्न माध्यमों के सायास उपयोग करने के विचार को कक्षा-प्रक्रियाओं में शामिल करना होगा। ऐसा करने से हिंदी-शिक्षण में इसकी विशेषता का सार्थक लाभ उठाया जा सकता है। संप्रेषण के लिए स्थितियों में विविधता हो। जीवन के विभिन्न अनुभवों, ज़रूरतों, जगहों से संबद्ध स्थितियों को मौखिक तथा लिखित रूप में संप्रेषित करने के अवसर सृजित करने से संप्रेषण की क्षमता का विकास बेहतर हो सकता है। विभिन्न स्थितियों के लिए कहानी, नाटक आदि का सृजन कर संप्रेषित करना। दी गई स्थितियों के लिए संवादों की रचना तथा उनका संप्रेषण करने के अवसर देने के लिए इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

अंतर्विषयक उपागम

भाषा का संबंध बच्चे के अनुभवों के सभी पक्षों से है। इसी कारण भाषा को स्कूली पाठ्यक्रम में प्रमुखता दी गई है। भाषा के विकास का संबंध अनुभवों की विविधता से है। जिस मात्रा तथा गहराई तक अनुभवों का विस्तार होता है, बच्चे की भाषा भी उस मात्रा तथा गहराई तक विकसित होती है। भाषा के शिक्षण में इस तथ्य को आत्मसात करने का अर्थ है बच्चों के अनुभवों को विस्तृत करना तथा बच्चों के अनुभवों को बच्चों की भाषा के विकास का ज़रिया बनाना। ऐसा करने के अनेक तरीकों में से एक तरीका है भाषा को विभिन्न विषयों के साथ जोड़कर पढ़ाया जाए। छठी कक्षा तक आते-आते विद्यार्थी के अनुभवों का विस्तार काफ़ी हो चुका होता है। इस स्तर तक उसके पास अन्य विषयों के अनुभव भी होते हैं। विद्यार्थियों की भाषा के विकास की दृष्टि से शब्दों, वाक्यों, अर्थों, विषयों आदि के संदर्भ में अनुभवों की तलाश में रहना तथा उनका भाषा-विकास की दृष्टि से उपयोग करना मददगार होता है।

ज्ञान को अनुशासनों में बाँधना, ज्ञान सृजन के तरीकों तथा व्यापकता की दृष्टि से मानवीय मजबूरी है, लेकिन ज्ञान अपने आप में संपूर्ण इकाई है। इसलिए भाषा की पाठ्यपुस्तकों में आए सरोकारों, विचारों आदि को विभिन्न अनुशासनों की मदद से स्पष्ट करने से सरोकारों को समझने के तरीकों तथा दृष्टांतों में विविधता आती है। इससे विद्यार्थी में संदर्भों को समझने तथा उनमें भाषा को उपयोग में लाने की क्षमता बढ़ती है।

उदाहरण के लिए कक्षा 9 'अ' (क्षितिज भाग-1, 2006:34-41) के एक पाठ 'उपभोक्तावाद की संस्कृति' पर विचार करें। इस पाठ को समझने के लिए अर्थशास्त्र से मदद लेना अपेक्षित है। इसमें आए शब्द उपभोक्तावाद, विज्ञापन, ब्रांड, उपभोक्तावादी-संस्कृति, सांस्कृतिक-अस्मिता, सांस्कृतिक-उपनिवेश आदि विशेष आर्थिक संदर्भों की देन हैं जिन्हें समझे बिना पाठ को समझना संभव नहीं है। इन शब्दों के सहारे आर्थिक संदर्भों तक पहुँचना तथा आर्थिक संदर्भों के सहारे पाठ को समझना अंतर्विषयक तरीके का एक उदाहरण है।

इस उपागम में अन्य पद्धतियों का मिलाजुला उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए– अगर हिंदी के किसी पाठ में 'सूर्यग्रहण' का ज़िक्र आता है तब इस संकल्पना को समझाने के लिए खगोलशास्त्र की मदद लेना अनिवार्य है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी ने सूर्यग्रहण के बारे हिंदी में पढ़ा हो या सूर्यग्रहण की संकल्पना को उस भाषा में अनूदित किया जाए जिस भाषा में वह 'सूर्यग्रहण' की संकल्पना से परिचित हो। अगर कोई विद्यार्थी *Solareclipse* का अर्थ जानता है, लेकिन 'सूर्यग्रहण' का नहीं जानता तो 'सूर्यग्रहण' को *Solareclipse* कहना होगा तभी विद्यार्थी समझेंगे कि किस संकल्पना पर

बात हो रही है। इस तरह अंतर्विषयक उपागम में 'अनुवाद विधि' का भी उपयोग करना पड़ सकता है। यहाँ पर द्वितीय भाषा, प्रथम भाषा सीखने का आधार बनती है। इस प्रकार अंतर्विषयक उपागम में विभिन्न विषयों के बीच आवाजाही के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के बीच आवाजाही भी होती है।

एक और उदाहरण पर विचार करते हैं। एन.सी.ई.आर.टी की कक्षा 6 की पुस्तक में एक पाठ है 'संसार एक पुस्तक है'। इस पाठ में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि संसार की चीज़ों को पुस्तक के शब्दों की तरह 'पढ़ा' जा सकता है। इस विचार को मुद्दा बनाया जाए तो उसे समझने के लिए जीवनानुभवों को कक्षा की प्रक्रिया में शामिल करना होगा। साथ ही अलग-अलग विषयों में ज्ञान प्राप्ति के लिए जिन तरीकों का उपयोग किया जाता है उनमें से संगत तरीकों का उपयोग करना होगा। जैसे किसी सड़क के गड्ढ़ों को 'पढ़ा' जा सकता है। नदी में पड़े गोल पत्थर को 'पढ़ा' जा सकता है। पुरात्ववेत्ता चीज़ों को 'पढ़ने' के लिए जिन तरीकों का उपयोग करते हैं, उनका उपयोग करना आदि।
इस प्रकार अंतर्विषय-उपागम, भाषा की समृद्धि का एक तार्किक प्रस्ताव प्रस्तुत करता है।

3.2.5 आलोचनात्मक विधि

जिस प्रकार शोध-पद्धति का संबंध शोध के सवाल से होता है, उसी प्रकार शिक्षण-पद्धति का संबंध शिक्षण संबंधी सवालों से है। अगर शिक्षण के दायरे में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मुद्दों को शामिल किया जाता है और उन मुद्दों पर सूचनाओं से ऊपर उठकर संवाद किया जाता है तो शिक्षण, आलोचनात्मक रूप लेता है।

आलोचनात्मक-शिक्षण का उद्देश्य समझना मात्र नहीं होता। इसके अंतर्गत 'पाठ' को आर्थिक और राजनैतिक संदर्भों में प्रतिस्थापित किया जाता है। ऐसा करने से पता चलता है कि पाठ की कौन-सी समझ किस प्रकार के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि संबंधों की वकालत करती है।

आमतौर पर स्कूलों में ऐसी पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं जो चिंतन को हतोत्साहित करती हैं या जिनसे चिंतन हतोत्साहित हो जाता है। उनमें से एक पद्धति है तथ्यों और सूचनाओं को अधिक महत्व देते हुए उनके रटने पर ज़ोर देना। यह इस खतरनाक अंधविश्वास पर टिका है कि अधिक तथ्यों के मालूमात होने से ज्ञान हो जाता है। अनेक छितरे और असंबद्ध तथ्यों को शिक्षार्थियों के दिमाग में इकट्ठा कर लेने भर से मान लिया जाता है कि उसे अमुक विषय का ज्ञान हो गया है। बच्चों का समय और शक्ति तथ्यों को रटने में ही चुक जाती है। उनके पास सोचने के लिए बहुत कम समय और ऊर्जा बचती है। निश्चित तौर पर तथ्य रहित चिंतन काल्पनिक होता है, लेकिन सूचना चिंतन की राह में उतनी ही बाधक होती है जितना इसका अभाव, (फ्रॉम, 2001:214)। हिंदी की

पाठ्यपुस्तकों के एक विश्लेषण में यह पाया गया कि पाठ के अंत में पूछे गए सवालों में से 87.2 प्रतिशत प्रश्न सूचनात्मक हैं जो शिक्षार्थियों से चिंतन के अवसर छीन लेते हैं (रावत, 2006)। ऐसी चिंतन रहित स्थिति लोकतंत्र विरोधी ताकतों के पक्ष में होती है (फ्रॉम. 2001: 207)।

तेरे शब्द मेरे शब्द

7 सितम्बर, 2012 का दिन। शिक्षाशास्त्र विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय के बी.एड. के विद्यार्थियों के लिए विद्यालय-अनुभव कार्यक्रम का मौका। हिंदी विषय के एक विद्यार्थी ने प्रश्न पूछा–"क्या स्कूल में हिंदी पढ़ाते हुए अंग्रेज़ी के शब्दों का उपयोग कर सकते हैं ?"

इस प्रश्न में निहित है कि विद्यार्थी के लिए हिंदी एक ऐसी भाषा है जो तमाम भाषाओं से स्वतंत्र होकर विकसित हुई है।

उसका यह सवाल उर्दू, हरियाणवी, गढ़वाली, तमिल, कश्मीरी, कोंकणी आदि के संदर्भ में भी पूछा जा सकता है।

इस सवाल के केंद्र में वह बहस है जिसमें कोई भाषा अन्य भाषाओं से स्वतंत्र रहकर या उनसे मेलजोल करके विकसित होती है। यह भाषाओं के बहुभाषिक होने या बहुभाषिक न होने के अनुभव को समझने का मुद्दा है। इसलिए उसके द्वारा उठाया गया सवाल भाषा की प्रकृति तथा उसके विकसित होने की प्रक्रिया को बीच बहस में लाकर भाषा-शिक्षण की प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने का अवसर देता है।

उपर्युक्त सवाल को समझने के दो तरीके हो सकते हैं। एक तरीका है शब्दकोश में 'आगत' शब्दों की पहचान करना और दूसरा तरीका है वैज्ञानिक उपकरणों के साथ अनुभव जगत में प्रवेश करना। पहला तरीका बहुभाषिकता के बारे में पूरी समझ नहीं दे सकता।

इस बात को समझने के लिए आइए कुछ वाक्यों पर विचार करें।

वाक्य 1–आज शाम मुझे पुरानी दिल्ली **रेलवे स्टेशन** से **ट्रेन** पकड़नी है।

वाक्य 2–आज शाम मुझे पुरानी दिल्ली **रेलवे स्टेशन** से **ट्रेन कैच** करनी है।

क्या वाक्य 1 को हिंदी की कक्षा में इस्तेमाल किया जा सकता है ? यहाँ पर इसका अर्थ है कि क्या इसे हिंदी का वाक्य माना जा सकता है? इस वाक्य में *शाम, रेलवे स्टेशन* और *ट्रेन* को हिंदी के शब्द मानेंगे ?

विद्यार्थियों का मानना था कि इस वाक्य को हिंदी का वाक्य मानेंगे, क्योंकि इसमें आए शब्द हिंदी के हैं या हिंदी में रच-बस गए हैं।

अब वाक्य 2 के बारे में सोचते हैं। क्या इसे हिंदी का मानेंगे ? विद्यार्थियों का मानना

था कि इस वाक्य को हिंदी का वाक्य नहीं मानेंगे, क्योंकि इसमें आए शब्दों में से एक शब्द '*कैच*' न तो हिंदी का है और न ही हिंदी में रचा-बसा हुआ है। वाक्य 2 में '**कैच**' ऐसा ही शब्द है। इसलिए वाक्य 2 को हिंदी की कक्षा में प्रयोग करने से बचना चाहिए।

'**कैच**' की स्थिति में समझने के लिए आइए वाक्य 3 पर विचार करते हैं।

वाक्य 3–फ़ील्डर ने बॉल कैच कर ली।

वाक्य 3 के बारे में क्या खयाल है ? क्या इसे हिंदी का मानेंगे ? इसमें तो **फ़ील्डर, बॉल** और **कैच** तीन प्रमुख शब्द अंग्रेज़ी के हैं, लेकिन इस वाक्य का प्रयोग हिंदी में क्रिकेट की *कमेंट्री* करते हुए खूब होता है।

वाक्य 2 तथा वाक्य 3 में '**कैच**' का अनुवाद 'पकड़ना' करके देखते हैं।

वाक्य 2 में ऐसा परिवर्तन करने से वह वाक्य 1 जैसा ही हो जाएगा यानी– आज **शाम** मुझे पुरानी दिल्ली **रेलवे स्टेशन** से **ट्रेन** पकड़नी है। '**कैच**' का अनुवाद 'पकड़ना' करने पर वाक्य 3 '*फ़ील्डर* ने **बॉल पकड़** ली' हो जाएगा। क्या *क्रिकेट* में **बॉल पकड़** लेना का वही अर्थ होता है जो बॉल *कैच* कर लेने का होता है ? हम जानते हैं कि ऐसा नहीं होता। इसलिए हमारे पास वाक्य 3 का मूल रूप में उपयोग करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विद्यार्थी द्वारा उठाए गए सवाल का जवाब केवल शब्दकोश की मदद से नहीं दिया जा सकता। इस सवाल के तार्किक जवाब के लिए हिंदी भाषा के उपयोग की दुनिया को समझना ज़रूरी है।

इस बहस में इस बात को समझना मददगार होगा कि किसी वाक्य का आधार शब्द होते हैं या व्याकरणिक संरचना? इस काम को आप करके देखिए।

यह बहस भाषा और सत्ता के मध्य संबंधों को समझने का मौका भी देती है। अगर विद्यार्थी द्वारा पूछे गए प्रश्न– क्या स्कूल में हिंदी पढ़ाते हुए अंग्रेज़ी के शब्दों का उपयोग कर सकते हैं? को बदलकर इस प्रकार पूछा जाए कि– क्या स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ाते हुए हिंदी के शब्दों का उपयोग कर सकते हैं?

— एक अनुभव

फ्रेरे ने अपनी पुस्तक 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' में समझाया है कि उत्पीड़न की कोई भी व्यवस्था स्वयं को बनाए रखने के लिए मिथकों का सहारा लेती है। ये मिथक उत्पीड़न के काम को सद्गुण के रूप में प्रचारित करते हैं। फ्रेरे, उत्पीड़न की प्रक्रिया में मिथकों की भूमिका को रेखांकित करते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि किसी भी बेहतर समाज की रचना मिथकों का पर्दाफाश किए बिना नहीं की जा सकती।

भाषा के शिक्षण में उनके इस प्रस्ताव पर विचार किया जाना बाकी है। भारत जैसे देश में जहाँ धर्म, संस्कृति, और परंपरा के नाम पर अनेक शोषणकारी प्रक्रियाएँ जारी हों वहाँ फ्रेरे के मत पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। हमारे देश में ऐसा साहित्य प्रचुर मात्रा में छपता, बिकता तथा पढ़ा जाता है जिनमें मिथकों के सहारे जेंडर, जाति, क्षेत्र आदि के आधार पर शोषण को जायज़ ठहराया जाता है। अन्याय को सही ठहराने वाले तर्कों की असलियत को समझने के लिए आलोचनात्मक-शिक्षण मददगार होता है, क्योंकि इसमें भाषा की आलोचनात्मक भूमिका पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

भारत में शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ, भारत के संविधान में वर्णित मूल्य हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (अनुच्छेद 3.1) कहती है कि शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली उन सिद्धांतों पर टिकी होगी जो संविधान में दर्ज हैं। सामाजिक न्याय एक ऐसा विचार है जिसके आधार पर देश में जीने का विचार संविधान में अंगीकार किया गया है। सामाजिक न्याय का विचार इस तथ्य की स्वीकृति पर टिका हुआ है कि सामाजिक तौर पर अनेक प्रकार के अन्यायों का सृजन किया जाता है। इन अन्यायों से मुक्ति सामाजिक न्याय का लक्ष्य है। "भारतीय संदर्भ में मुक्ति जाति, जेंडर, कर्म, क्षेत्र, भाषा आदि के पूर्वाग्रहों से। मुक्ति अंधविश्वासों से, निराधार भयों से।" (राममूर्ति समिति की रिर्पोट,1990:19-20)। यदि शिक्षा को सामाजिक न्याय का दायरा बढ़ाने तथा सामाजिक अन्यायों का दायरा सिकोड़ने वाली प्रक्रिया माना जा रहा है तो ऐसे में यह ज़रूरी हो जाता है कि शिक्षा प्रक्रिया के तमाम तत्व ऐसा करने में मददगार हों। शिक्षा के माध्यम से शिक्षार्थियों में जिन मूल्यों का बीजारोपण किया जाता है वे सामाजिक न्याय को घटा या बढ़ा सकते हैं। सामाजिक न्याय को बढ़ाने के लिए भाषा के उन पक्षों पर विशेष ध्यान देना होगा जो अन्यायपूर्ण स्थितियों को समझने तथा बेहतर स्थितियों के विकल्प गढ़ने में मदद करें। भाषा के ज़रिये आलोचनात्मक चिंतन के तरीकों को विकसित करना ऐसा पक्ष है जो इस भूमिका को निभा सकता है। लोकतांत्रिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए भाषा के शिक्षण में चिंतन को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में बातचीत के द्वारा चिंतन को पैना किया जा सकता है। इन कक्षाओं में बातचीत को महत्व दिए जाने के दो कारण प्रमुख हैं। पहला, इन कक्षाओं में लिखने की कुशलता का विकास नहीं या कम हुआ होता है तथा दूसरा बातचीत में शिक्षार्थियों से प्रति-प्रश्न किए जा सकते हैं। प्रति-प्रश्न भाषा के विकास के लिए उत्प्रेरक का काम करते हैं। ऐसे प्रश्न अपने कहे पर पुनर्विचार हेतु ज़रूरी वातावरण का सृजन करते हैं जिसमें शिक्षार्थी नए शब्द तथा नयी अभिव्यक्तियाँ तलाशते हैं। इसी प्रकार की प्रक्रियाओं के प्रभाव के कारण सीखने वाले मशीनीकृत व्यवहार करते रहने से बच सकते हैं। इस प्रकार की प्रक्रियाओं में उनका इंसानीपन उभरकर सामने आएगा जो कि लोकतंत्र की एक विशेषता है।

भाषा के शिक्षण में आलोचनात्मक पद्धति का उपयोग किया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि 'हिंदी की पाठ्यपुस्तकों के लिए ऐसी रचनाओं का चयन किया जाए जिनमें आलोचनात्मक चिंतन के सरोकार मौजूद हों।' पाठ्यपुस्तकों में धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र से ऐसे मिथकों को शामिल किया जा सकता है जो जाति, जेंडर, क्षेत्र आदि के आधार पर उत्पीड़न की वकालत करते हैं।

फ़िलहाल तो भाषा के शिक्षण को कुशलताओं में दक्ष करने का पर्याय इस कदर बना दिया गया है कि इसका लोकतंत्र जैसी अवधारणाओं के साथ सकारात्मक रिश्ता तलाशना अत्यंत जटिल है। भाषा शिक्षण को भाषिक कुशलताओं के अभ्यास की प्रक्रिया मानने की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। भाषा सिखाने हेतु तैयार पुस्तकों का उपयोग, पुस्तकों के पाठों में दर्ज सूचनाओं को याद करवाया जाना ही भाषा शिक्षण का काम मान लिया गया। इस तरह के शिक्षण के प्रभाव में आए बच्चों की पाठ के संदर्भ में समझ का पूर्वानुमान लगाना सरल है। प्रभावित होने वालों के व्यवहार का पूर्वानुमान लगा लेना बताता है कि शिक्षण की प्रक्रिया लोकतांत्रिक आधारों पर नहीं चली है। इस प्रकार के शिक्षण में अनुभवों के द्वारा कुछ भी जोड़ा या घटाया नहीं जा सकता। ऐसा शिक्षण अधिनायकवादी विचार पर टिके राष्ट्र के लिए तो अनुकूल हो सकता है, लेकिन लोकतंत्र को अपनी तमाम गतिविधियों का संदर्भ घोषित करने वाले राष्ट्र के लिए भाषा शिक्षण की प्रक्रिया का ऐसा परिप्रेक्ष्य अप्रसांगिक है। यह एक प्रकार का मतारोपण है जिसके ज़रिये सीखने वाले में ऐसे विश्वास और अभिवृत्तियाँ उत्पन्न करनी होती हैं जिन्हें अनुभव बदल न सकें। यानी, विश्वासों का अनुभव से रिश्ता काट देना ही मतारोपण है। अगर देश में चुनावों का फ़ैसला किन्हीं पूर्वनिर्धारित बातों के आधार पर होने लगे तो यह चुनाव जैसी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोकतंत्र की अनुपस्थिति का सूचक होगा। लोकतंत्र में घटनाओं को देखने का नज़रिया अनेक बातों पर निर्भर करता है, क्योंकि लोकतंत्र में घटनाएँ संदर्भगत होती हैं, पूर्वनिर्धारित कोटियों में निश्चित नहीं होतीं। अगर हम यह जानते हैं कि बच्चे किसी पाठ के बारे में क्या राय रखते हैं और परीक्षा के पहले से उसका पता होना उस राय की पुनर्प्रस्तुति है तो हमारा शिक्षण तथा उसकी परीक्षा लोकतांत्रिक नहीं है। उदाहरण के लिए, किसी कथा में व्यक्त मूल संवेदना को यदि लेखक की नज़र से समझना ही कथा पढ़ाने का उद्देश्य है तो यह कथा को पढ़ाने का गैर-लोकतांत्रिक उद्देश्य है। ऐसा मानने के तीन कारण हैं —

- पहला, इसमें समझ में परिवर्तन की जगह नहीं है। अर्थात् जो लेखक की समझ है वही अंतिम होगी और उस पर व्यक्ति को अपने अनुभवों के आधार पर सोचने और नतीजे निकालने का अवसर नहीं होगा। प्रमाणिक राय के तौर पर लेखक पर ही अंतिम तौर पर भरोसा किया जाएगा।

- दूसरा, इसमें भिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चों का कोई अर्थ नहीं है। इसके मायने हैं कि यदि बच्चे विभिन्न पृष्ठभूमियों से आते हैं और उनका अनुभव संसार अलग है तो वे अपने अनुभव संसार के साथ जोड़कर ही उस कहानी को ग्रहण करने का प्रयास करेंगे। यदि लेखक की नज़र से ही कथा को पढ़ाना है तो फिर बच्चों के विविध अनुभवों का उपयोग शिक्षक किसी भी तरह नहीं कर सकता।
- तीसरा, इसमें पूर्वनिर्धारित समझ का आरोपण मात्र हो रहा है। किसी पाठ को लेखक की ही नज़र से देखना तथा विधानसभा में प्रस्तुत किसी विधेयक को शासन करने वाली पार्टी की नज़र से देखने में क्या अंतर है? दोनों ही नज़ारे गैर-लोकतांत्रिक हैं। हाँ, सही विश्लेषण के लिए लेखक के संदर्भ को समझना आवश्यक होता है।

विभिन्न विचारों में अंतर्निहित मान्यताओं को समझने के लिए आलोचनात्मक-विधि का उपयोग आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

भाषा से संवाद

1. भाषा के अर्जन की प्रक्रिया को सहज बनाने के लिए आप अपनी कक्षा में किन बातों का ध्यान रखेंगी/रखेंगे?
2. भाषा की समग्र दृष्टि का अर्थ स्पष्ट करते हुए अभिव्यक्ति की क्षमता के विकास में इसके उपयोग हेतु एक गतिविधि बनाइए ।
3. गणित की कक्षा में विद्यार्थी त्रिभुज तथा ट्राईंगल दोनों से त्रिभुज की संकल्पना नहीं समझ पा रहे । उसे समझाने के लिए बहुभाषिकता से किस प्रकार सहायता ली जा सकती है?
4. भाषा की रचनात्मक दृष्टि भाषा की व्यवहारवादी दृष्टि से किस प्रकार भिन्न है । किसी एक उदाहरण द्वारा दोनों के अंतर को स्पष्ट कीजिए?
5. रचनात्मक दृष्टि की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करते हुए भाषा के शिक्षण में उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट कीजिए ।
6. स्कूल में **परमहंस साधु** के आने के प्रसंग का विश्लेषण कर बताइए कि इसके माध्यम से गिजुभाई क्या कहना चाहते हैं ।
7. पाठ्यक्रम में शामिल भक्तिकाल की किसी रचना का परस्पर प्रत्यक्ष विधि द्वारा शिक्षण कीजिए तथा सीखने एवं सिखाने वाले की दृष्टि से इस विधि की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कीजिए ।
8. गांधी जी के सामाजिक-दर्शन तथा उनके शैक्षिक-दर्शन में क्या-क्या अंतर्संबंध हैं?
9. शिक्षा के केंद्र में किसी उत्पादक काम को रखने के आधार में गांधी जी के क्या तर्क थे?
10. किसी पाठ की एक योजना बनाइए । उसके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न शिक्षण-विधियों के उपयोग की प्रासंगिकता का विवरण दीजिए ।
11. पाठ् यक्रम से आदि-काल तथा प्रगतिशील काव्य के एक-एक उदाहरण लेकर समझाइए कि इनमें शिक्षण की किन-किन पद्धतियों का उपयोग किया जा सकता है? कारण सहित बताइए ।
12. किसी एक कक्षा की हिंदी की पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण कर बताइए कि 'आलोचनात्मक चिंतन' को प्रोत्साहित करने हेतु उसमें क्या–क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए ।

गतिविधि/पोर्टफ़ोलियो

प्रशिक्षण के दौरान

- 'मातृभाषा और अन्य भाषा' विषय पर छोटे समूह में चर्चा करें।

कक्षा शिक्षण के दौरान

- भाषा की कक्षा में रचनात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए चार गतिविधियाँ तैयार करें।

परियोजना कार्य

- विविध भाषा शिक्षा प्रणालियों का अध्ययन करते हुए उनका विश्लेषण कीजिए।

इकाई

4

भाषायी व्यवहार और व्यवस्था

4.1 — भाषायी व्यवहार के विविध पक्ष **110**

4.1.1 नियमबद्ध स्वरूप और उसकी परिवर्तनशीलता 110

4.1.2 भाषा-भेद और भाषायी परिवर्तनशीलता 115

4.1.3 वाक् और लेखन 122

4.2 — भाषायी व्यवस्थाएँ **129**

4.2.1 सार्वभौमिक व्याकरण की संकल्पना 129

4.2.2 वाक्य-विज्ञान 134

4.2.3 प्रोक्ति 136

4.2.4 रूप-विज्ञान 147

4.1— भाषायी व्यवहार के विविध पक्ष

आमतौर पर 'भाषा' को भाव या विचार की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है, किंतु उसकी भूमिका इससे बहुत बड़ी है। हमें विश्व/ समाज का बोध भी भाषा के ही ज़रिये होता है। सही बात तो यह है कि समाज की (कम-से-कम इस रूप में) रचना ही न होती, यदि भाषा जैसी सर्व-संभावी संरचना मौजूद न होती। प्रयोग के लिहाज़ से देखें तो भाषा अभिव्यक्ति के पहले चिंतन का माध्यम है। पहले हम सोचते हैं, उसके बाद उसकी अभिव्यक्ति करते हैं– बोल या लिखकर या किसी अन्य माध्यम से अंतर्मन में बिखरे अर्थों या विचारों को संकलित करने अथवा अपूर्व-असंभव वस्तु या घटना की कल्पना करने में हमारे लिए उपकारी है तो 'भाषा' ही। इन बातों के साथ, एक विलक्षण बात यह है कि 'भाषा' के सहारे हम केवल अपने को प्रकट नहीं करते, बल्कि कई बार अपने-आप को छुपाते भी हैं।

4.1.1 नियमबद्ध स्वरूप और उसकी परिवर्तनशीलता

जब हम भाषा के स्वरूप पर विचार करते हैं, तो उसके दो आयाम या स्तर सामने आते हैं–

i. भाषा-व्यवस्था

ii. भाषा-व्यवहार

हमलोग जिस भाषा के माध्यम से 'भाषिक व्यवहार' (भाषण, लेखन) करते हैं, उसका आधार मन में बैठी हुई वह भाषा-व्यवस्था है जो शब्द व अर्थ के संबंध (मानसिक शब्दकोश) तथा व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होती है। कोई व्यक्ति (वक्ता/प्रयोक्ता) अपने मन में स्थित भाषा-संरचना के आधार पर ही कोई भाषिक प्रयोग करता है, जिसका लक्ष्य होता है– सामने वाले व्यक्ति/समाज (श्रोता/ग्रहीता) के मन में स्थित उसी प्रकार की भाषा-संरचना को सुगबुगाना। उसी के आधार पर श्रोता/ग्रहीता वक्ता/प्रयोक्ता के कथन/लेखन का तात्पर्य ग्रहण कर पाता है, यानी संप्रेषण का कार्य संपन्न होता है।

मन:स्थ भाषा में विद्यमान शब्द (ध्वनि-प्रतीक) और अर्थ-विशेष का संबंध तर्कसंगत न होकर यादृच्छिक (इच्छित) होता है। परंतु, वह व्यक्तिगत इच्छा का परिणाम नहीं होता, बल्कि उस पर सामाजिक स्वीकृति की मुहर लगी होती है। फिर, वह समाज-स्वीकृत संबंध परंपरा-प्रवाह में गतिमान (रूढ़) होता है। उदाहरण के लिए 'पेड़' शब्द – यह शब्द किसी खास अर्थ में बँधा हुआ है। यह इच्छित बंधन है। कोई तर्क करे कि सामने वाली वस्तु को हम 'पेड़' ही क्यों कहें– 'पत्थर', 'नदी', 'पशु' आदि क्यों न कहें ? तो, इसका कोई तर्कपूर्ण समाधान नहीं हो सकता। भाषा में अर्थ-विशेष और शब्द-विशेष का संबंध सामाजिक स्तर पर ऐच्छिक रूप से बना लिया गया है– यही है **यादृच्छिकता।**

> *नाम इसलिए बड़ा नहीं कि वह नाम है। वह इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है। रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज-सत्य। नाम उस पद को कहते हैं, जिस पर समाज की मुहर लगी होती है।*
>
> *— हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'कुटज' से*

इसी का अगला परिणाम है कि 'हर भाषा (भाषिक समूह) में 'पेड़' के लिए अलग शब्द हैं।' परंतु, यह ध्यान देने की बात है कि किसी भाषा में कोई शब्द व्यक्तिगत रुचि से नहीं, बल्कि उस भाषिक समूह की सामाजिक स्वीकृति से ही आकार लेता है। इसीलिए भाषा एक सामाजिक व्यवस्था है। भाषा का शब्द-भंडार बोलने वालों की आवश्यकताओं के अनुसार बनता है, जो कि उसके आस-पास के माहौल के सापेक्ष है। हर भाषा की खास शब्दावली का यही कारण है।

हर भाषा एक 'नियमबद्ध व्यवस्था है'– ध्वनियों/शब्दों एवं अर्थों का संबंध, खास शब्दावली, वाक्यगत शब्दों एवं शब्दगत ध्वनियों के आने का एक निश्चित क्रम, एक खास व्याकरणिक संरचना होती है।

किसी भाषिक समुदाय में जन्मा शिशु (नवजात) और नवागत सदस्य, अपने आस-पास/चारों ओर फैले भाषायी व्यवहारों के वातावरण के भीतर से **'भाषा-व्यवस्था'** या भाषा की नियमबद्ध संरचना को आत्मसात् करता है। आस-पास व्यवहृत हो रहे वाक्यों/रचनाओं का अचेत ढंग से मन ही मन विश्लेषण करते हुए, उनमें निहित शब्दार्थ-संबंध (शब्दावली) और व्याकरणिक अन्वय का मानसिक स्तर पर संग्रह करते हुए, स्मृति के रूप में 'भाषा-व्यवस्था' को जमा रहा होता है। यही है समाज में रह कर भाषा सीखना। कोई नवजात/नवागत पहले शब्द यानी एक शब्दमय सरल वाक्य सीखता है, फिर विकास-क्रम में अनेक-शब्दमय एवं जटिल वाक्य सीखता है। **'भाषा-व्यवस्था'** एक सामाजिक

'**भाषा-व्यवस्था**' एक साथ 'भाषा-व्यवहार' के लिए अपेक्षित साधन भी है और सामाजिक चेतना के धरातल पर 'भाषा-व्यवस्था' के संचित कोश के रूप में उसका परिणाम भी।

निर्मिति है, जो समाज के हर सदस्य के मन अथवा सामूहिक मन में कायम रहती है। उसी व्यवस्था के सहारे, प्रयोक्ता अपनी सर्जनात्मक क्षमता के ज़रिये अनेक/गणनातीत प्रयोगों की ओर बढ़ रहा होता है। हमारा पूरा बाहरी वाक्-व्यवहार (अभिव्यक्ति-समझ, लेखन-पठन) और आंतरिक व्यवहार (चिंतन) मन:स्थ उसी 'भाषा-व्यवस्था' के आधार पर होता है–उसी से प्रेरित, प्रसूत होता है (वक्ता/लेखक) और उसी के ज़रिये गृहीत और उसी में परिणत होता है। (श्रोता/पाठक)।

शब्द और अर्थ

हम जानते हैं कि भाषा सार्थक ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है, यानी भाषा में प्रयुक्त (उच्चरित या लिखित) हर ध्वनि-समूह (शब्द/वाक्य) का खास **अर्थ** होता है। एक भाषिक व्यवस्था के अंतर्गत, हम किसी की ज़ुबान से कोई शब्द सुनते अथवा किसी का लिखा कोई शब्द पढ़ते हैं, तो उसी क्षण हमें उसके अर्थ-विशेष का बोध भी होता है। इसे इस तरह से भी कह सकते हैं कि हम कोई भी शब्द बोलते या लिखते समय उसका एक खास **अर्थ** मन में रखकर खास संदर्भ से जोड़ कर, वह शब्द प्रयुक्त कर (बोल या लिख) रहे होते हैं। इसी से सुनने/पढ़ने वाले को वही अर्थ बोधित हो पाता है।

शब्दार्थ संबंध की अभिन्नता

'शब्दार्थौ-सहितौ काव्यम्' — भामह

(शब्द और अर्थ सहित या मिलित भाव काव्य है।)

'वागर्थाविव संपृक्तौ...' — कालिदास, 'रघुवंशम्' में

(जैसे- वाक् (शब्द) व अर्थ संपृक्त (परस्पर अभिन्न) हैं।)

'गिरा-अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न'

— तुलसीदास, 'रामचरितमानस' में

(गिरा (शब्द) व अर्थ जल व तरंग के समान सिर्फ़ कहने को भिन्न हैं, लेकिन हैं वस्तुत: अभिन्न ।)

अर्थ क्या है?

सरल रूप में कह सकते हैं कि 'शब्द के द्वारा जो मानसिक प्रतीति (बोध) होती है, उसे अर्थ कहते हैं।' पूर्वोक्त उदाहरण पर एक बार फिर से विचार करें। हम 'गाय' शब्द सुनते या कहीं पढ़ते हैं, तो हमें पशु-विशेष का बोध होता है। पर, वह बोध लोक या बाह्य जगत् में विद्यमान, किसी स्थूल-रूप में प्राप्त पशु-विशेष (गाय) का नहीं होता, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। 'गाय' शब्द को सुनकर-पढ़कर हमारे मन में लौकिक गाय की छवि (बिंब) बनती है। यही है **अर्थ-बोध**। इस प्रकार 'गाय' आदि तमाम अर्थ (पदार्थ) दो रूपों में– दो स्तरों पर होते हैं–

1. **लौकिक** (साक्षात् प्रतीत) या स्थूलतर
2. **मानसिक** (छवि/बिंब रूप) या सूक्ष्मतर

शब्द के द्वारा **बोधित** अर्थ दूसरा होता है, यानी **बिंब** इमेज रूप। इसी को **प्रत्यक्ष-रूप** भी कह सकते हैं।

जन्म के बाद जैसे-जैसे चेतना का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे परिवेश की स्थूल-सूक्ष्म वस्तुओं से इंसान का परिचय होता जाता है और प्रत्येक वस्तु का **बिंब** मन में अंकित होता जाता है। इसके साथ उसका वाचक शब्द भी हम समाज से सुन/पढ़ या सीख कर ग्रहण करते जाते हैं। यानी, **अर्थ** या **बिंब** अकेले नहीं, अपने **वाचक शब्द** के साथ हमारी चेतना में अंकित रहते हैं। इन दोनों में घनिष्ठ व अभेद संबंध बन जाता है तथा वह संबंध दीर्घकाल तक हमारे मन (चेतना) में स्थिर रहता है। इसी को भारतीय भाषा-दार्शनिकों ने कहा– *'शब्द-अर्थ का संबंध नित्य है।'*

> यह सदा ध्यातव्य है कि यहाँ नित्यता का आशय सनातन नित्यता कतई नहीं है। अन्यथा, शब्द-अर्थ के संबंध में परिवर्तन कैसे संभव होता?
>
> *(अर्थ-परिवर्तन, ध्वनि–परिवर्तन)*

अर्थ-बोधक शब्द भी मानसिक

सामान्यत: समझा जाता है कि जो शब्द हमारे सुनने में आता है (यानी **ध्वनि**) अथवा पढ़ने में आता है (यानी **लिपि**) या दर्शाया जाता है (यानी **संकेत**), उसी में अर्थ निहित होता है; लेकिन, ऐसा है नहीं। दरअसल, सुना, पढ़ा या देखा गया शब्द कान या आँख के ज़रिये हमारे मन में प्रविष्ट करता है तथा उसका एकमात्र कार्य होता है– **मानसिक संस्कार** रूप

में अंकित शब्द को जगा देना। उससे जगा मानसिक शब्द, अपने साथ अभिन्न-संबद्ध अर्थ (बिंब) को भी जगा देता है, जिसका भीतर ही भीतर हम बोध या **प्रत्यक्षीकरण** करते हैं। यही है, **शब्द का अर्थ-बोध**। पर, जैसा कि पीछे कहा गया, हमें जो शब्द सुनाई या (लिपि-रूप में) दिखाई पड़ता है, वह वक्ता या लेखक के मन में स्थित अर्थ (बिंब)– विशेष के साथ चिपके हुए मानसिक शब्द-विशेष के आधार पर प्रयुक्त (उच्चरित या लिखित) होता है। इस प्रकार, हमारे मन में स्मृति की तरह अंकित भाषा-व्यवस्था ही मूल आधार है, हमारे तमाम भाषिक व्यवहारों का तथा वही गंतव्य भी है उनका। भाषा-व्यवस्था यानी शब्दार्थ-संबंध की यह मानसिक व्यवस्था वस्तुत: 'अर्थ' (बिंब), 'शब्द' एवं इनके बहुत बड़े अभ्यास के परिणामस्वरूप हमारे मन में अंकित होती है।

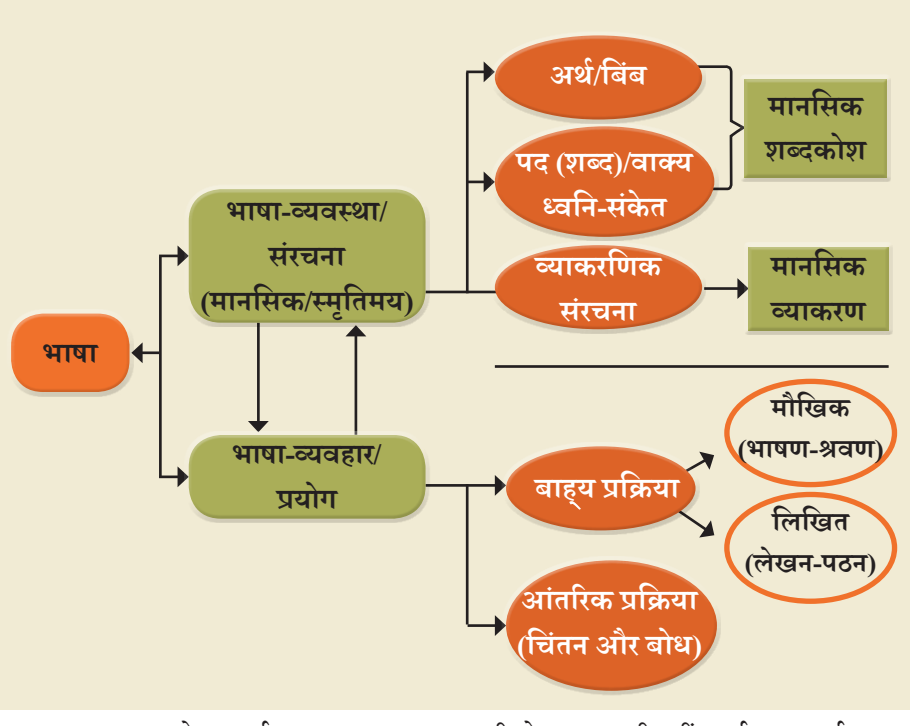

शब्द का बोध्य अर्थ सदा एक वस्तु का रूप ही हो– यह ज़रूरी नहीं। कई बार 'अर्थ' विचार/भाव-रूप होता है, यानी कई बार अर्थ 'गाय', 'ममता' आदि वस्तु-विशेष के बिंब के रूप में न होकर 'गाय दौड़ रही है', 'उसके प्रति मेरी ममता है' आदि पूर्ण अभिप्राय के रूप में भी होता है। ऐसा तब होता है, जब शब्द का स्वरूप **वाक्यात्मक** हो। तब, कहा जा सकता है कि हमारे मन में अंकित बिंब/अर्थ संक्षिप्त रूप में भी हो सकता है ('गाय', 'ममता' आदि) और कुछ विस्तृत-रूप में भी हो सकता है ('गाय दौड़ रही है' आदि)। भाषा का प्रयोग इन्हीं **बिंबों/अर्थों** के **प्रतीक-रूप** में होता है —

4.1.2 भाषा-भेद और भाषायी परिवर्तनशीलता

किसी भाषिक समुदाय में 'भाषा-संरचना' एक सामाजिक निर्मिति के रूप में व्यक्ति-व्यक्ति के मानस में कायम रहती है, जिसके आधार पर हर व्यक्ति का 'भाषिक व्यवहार' होता है। परंतु, किसी भाषिक समाज का हर सदस्य (शिक्षा, रोज़ी-रोटी, परंपरा, सामाजिक स्तर/स्थिति आदि के अनेकानेक स्तरों के हिसाब से) अंततः दूसरे से कुछ अलग होता है। इस कारण, हर व्यक्ति के भाषिक व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो दूसरे से उसे अलग करती हैं। उच्चारण (ध्वनि), शब्द-चयन, अर्थ/भाव-संरचना आदि सब में यह सूक्ष्म भेद दिखाई देता है। हर व्यक्ति में 'भाषा' को अपनी रुचि/क्षमता के अनुसार कुछ घुमाने-बदलने की प्रवृत्ति होती है। परंतु, किसी भाषिक समुदाय में 'भाषा' कोई व्यक्तिगत इकाई नहीं, बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था होती है– इस कारण व्यक्तियों की रुचियों/आदतों के अंतर से 'भाषा' (भाषा-संरचना) नहीं बदलती। किसी व्यक्ति/व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रयत्न या विचलन जबतक व्यापक सामाजिक स्वीकृति न पा जाएँ, तबतक वे 'भाषा-संरचना' में परिवर्तन के रूप में नहीं गिने जाते। व्यक्ति भाषिक प्रयोग के क्षेत्र में जो भी नया प्रयोग करेगा, वह समाज-स्वीकृत भाषिक संरचना के दायरे में ही करेगा।

फिर भी, भाषा परिवर्तित होने वाली वस्तु है। देश और काल के अंतर से ऐतिहासिक एवं भौगोलिक संदर्भ में हम देख सकते हैं कि किसी भाषा की ध्वनियाँ, शब्द (शब्द-भंडार), व्याकरणिक गठन एवं अर्थ की संरचनाएँ बदल जाती हैं। जैसे– एक काल का 'अग्नि' शब्द, दूसरे काल में 'आग' बन जाता है; एक समय में काले रंग के लिए प्रयुक्त 'स्याही' शब्द आज हर किसी रंग की रोशनाई के लिए इस्तेमाल हो रहा है। इस प्रकार के परिवर्तन का आधार है समाज। 'भाषा' सामाजिक इकाई है, इसलिए समाज ही बदल जाए तो भाषा कैसे नहीं बदलेगी ? सूक्ष्म रूप से देखें तो विविध कारकों से समाज में क्रमिक परिवर्तन सतत हो रहा है और तदनुरूप उसकी भाषा में भी। पर, वे बदलाव आमतौर पर नज़र नहीं आते।

समाज की संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन होता है, पर भाषा के सभी तत्व/अंग (ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ, शब्द-भंडार) समान मात्रा में सदैव परिवर्तित होते चलें, यह कोई ज़रूरी नहीं। कभी शब्द/ध्वनि भर बदलता है और अर्थ वही रहता है, तो कभी शब्द वही रहता है और अर्थ बदल जाता है। सबसे धीमी गति से बदलता है उसका वाक्य-गठन या व्याकरणिक संरचना। ***परंतु, इतना स्पष्ट है कि भाषा का कोई तत्व अपरिवर्तनीय नहीं है***। परिवर्तन की प्रक्रिया में भाषा के बाह्य (शब्द-भंडार, अर्थ) और आंतरिक (व्याकरण, ध्वनि-प्रकृति) स्वरूप में अंतर आता है, जिससे कालक्रम में एक भाषा से दूसरी भाषा का भी विकास हो जाता है। इतना ही नहीं, इस प्रक्रिया में पड़ कर कभी-कभी कोई भाषा पूरी तरह नष्ट/विलुप्त भी हो जाती है। उसकी जगह दूसरी भाषा

ले लेती है। अपभ्रंश में अन्य भाषा-स्रोतों के मेल से कालांतर में उससे हिंदी का विकास हुआ। बड़े समूह की भाषा के दबाव-वश भारत की 198 भाषाएँ आज विलुप्ति की ओर हैं, जिनमें आदी, अंगामी, बोड़ो, हो, खासी, बिरहोर, कुड़ुख, मिजो, शेरपा आदि हैं।

जब दो भाषिक समुदाय एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं तो उनकी भाषाएँ भी परस्पर प्रभावित और तदनुरूप परिवर्तित होने लगती हैं। उनके संपर्क का रूप कभी **सहयोग** का होता है, तो कभी **संघर्ष-आधिपत्य-शोषण** व **दमन** का। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में आना और दूसरी भाषा के शब्द पहली में जाना संपर्क के पहले रूप का लक्षण है। विलुप्त हो रही भाषाएँ या किसी भाषा की विलुप्त हो रही भाषिक विशेषताएँ संपर्क के दूसरे रूप की सूचक हैं। संपर्क के इन प्रकारों में कोई भाषा कितना बदलेगी या दोनों में से कौन-सी भाषा अधिक बदलेगी, इसके निर्धारक तत्व हैं– उनका समाज-गठन, स्वभाव-प्रेम, अन्य प्रभावों को अपनाने/पचाने की ताकत, उन भाषा-भाषियों की प्रतिरोध-शक्ति और बाह्य प्रभावों की तीव्रता आदि, किंतु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है किसी **भाषा की प्रकृति** [ध्वनि-प्रकृति और भाव प्रकृति [1]], जो प्रयोक्ताओं की दीर्घकाल में बनी हुई भाषिक प्रवृत्तियों/आदतों का समुच्चय है।

किसी भाषा में जब आगत शब्दों के सहारे कुछ नयी ध्वनियाँ प्रविष्ट होती हैं तो भी वे उस भाषा की अंग तबतक नहीं बनेंगी, जबतक उसके प्रयोक्ताओं को अपनी भाषिक आदतों (ध्वनि-प्रकृति) के अनुकूल न लगें। जैसे– अरबी से आए 'ख़राब' शब्द को आम हिंदी भाषी 'खराब' बोलते हैं। यानी, 'ख़' को अपनी ध्वनि-प्रकृति में रंग कर 'ख' बोलते हैं। 'कठिन लगने वाले प्रयोगों से दूर रहना इंसान की सहज प्रवृत्ति है' (प्रयत्न-लाघव/मुख-सुख)। कठिनाई अपनी भाषिक आदत के सापेक्ष महसूस होती है। पंजाबी लोग 'स्कूल' को 'सकूल' इसी के तहत बोलते हैं।

जिस गति से किसी भाषा की शब्द-संपदा और उससे लगी ध्वनियों में बदलाव आता है, उस गति से उसकी व्याकरणिक विशेषताएँ नहीं बदल पातीं। किसी भाषा के इतिहास को देखकर यह समझ सकते हैं कि इसमें सैकड़ों-हज़ारों साल लगते हैं। पर, जब भाषा का आंतरिक व्याकरण बदल जाता है, तभी भाषा का पूर्णतया बदल जाना कहा जाता है।

1. भाव-प्रकृति— भाषा की ध्वनि-प्रकृति के समान उसकी एक भाव-प्रकृति होती है, जो शब्द-निर्माण, वाक्य-रचना तथा व्याकरण के विभिन्न अंगों में प्रकट होती है। *('भाषा और समाज'–रामविलास शर्मा / पृ. 86)*

हिंदी भाषा में कुछ परिवर्तन			
आगत शब्द–	क़दम, फ़ुर्सत, .खाक *[फ़ारसी]* ताबीज़, कागज़, .खराब *[अरबी]* दारोगा, सौगात *[तुर्की]* टॉफी, टॉकीज़, हॉल *[अंग्रेज़ी]*	**लिंग–**	अरबी-फ़ारसी से आए 'रूह', 'बू', 'ताकत' आदि के लिंग के असर से, परंपराप्राप्त 'आत्मा', 'गंध', 'सामर्थ्य', आदि स्त्रीलिंग हो गए।
आगत ध्वनियाँ–	क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ	**रूप–**	**तुमने आना है।** (पंजाबी प्रभाव से। हिंदी रूप **'तुम्हें'** आना है।) बहुत सी बुक्स पढ़ो। मकानात में आग लगी। *(हिंदी की प्रकृति के अनुसार 'बुकें', 'मकानों' होगा।)*
आगत प्रत्यय/ उपसर्ग–	'दार' (फ़ारसी)-रसदार, फलदार बे (फ़ारसी)– बेमेल, बेनाम		
वाक्य–	वह व्यक्ति जिसने 'हिंदी गीत' को शिखर पर पहुँचाया, महादेवी वर्मा हैं। *(द पर्सन हू रीच्ड् द हिंदी- लिरिक टू ज़ैनिथ इज़ 'महादेवी वर्मा' के असर से बना वाक्य-रूप)* →		वैसे हिंदी की प्रकृति के अनुकूल वाक्य रहा है – जिस व्यक्ति ने हिंदी गीत को शिखर पर पहुँचाया, वह महादेवी वर्मा हैं।

हिंदी-क्षेत्र की भाषाएँ

भाषा-भेद और भाषायी परिवर्तनशीलता का ही एक आयाम है–किसी एक भाषा-क्षेत्र में मौजूद अलग-अलग विभाषाएँ या बोलियाँ। विभाषाओं/बोलियों की बहुलता का आधार है– भौगोलिक रूप से विभक्त हुए मानव-समूहों की अलग-अलग स्थानगत सांस्कृतिक विशेषता। ऐसे अलग-अलग सांस्कृतिक समूह की अलग-अलग भाषिक संरचनाएँ होती हैं, उसी को कुछ लोग उस ***भाषा की बोली*** कहते हैं।

> *"किसी भाषा में साहित्य नहीं बना, तो क्या वह भाषा ही नहीं रही ? किसी थाली में नित्य भोजन की दाल-रोटी रखी जाती है, खीर नहीं परोसी गई, तो क्या उसे थाली ही न कहेंगे? प्रत्यय-विभक्तियों में रूपांतर हो जाना ही सजातीय भाषाओं की भिन्नता का नियामक है। इस दृष्टि से अवधी आदि स्वतंत्र भाषाएँ हैं।"*
>
> *— किशोरीदास वाजपेयी*
>
> *'हिंदी शब्दानुशासन', संस्करण, 1976:10*

'बोली' शब्द का प्रयोग सामान्यत: दो अर्थों में किया जाता रहा है–

1. 'बोली' जिसका प्रयोग कम लोगों द्वारा किया जाता है, सीमित क्षेत्र और सीमित कार्यों में जिसका प्रयोग होता है और जिसका साहित्य नहीं होता है।
2. किसी एक व्यापक और परिनिष्ठित/मानक भाषा के स्थानीय व क्षेत्रीय संस्करणों यानी विभाषाओं के लिए।

जब हम अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली, भोजपुरी, गढ़वाली आदि को **हिंदी की बोलियाँ** कहते हैं, तो हम पहले अर्थ में बोली का प्रयोग कर रहे होते हैं लेकिन यह सच नहीं है क्योंकि अवधी, ब्रज, गढ़वाली आदि भाषाओं में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। इसीलिए, यह भाषावैज्ञानिक अर्थ नहीं है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से उचित यही होगा कि बोली शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थ में किया जाए। किसी एक भाषा के अंतर्गत, कुछ व्याकरण और मुख्यत: शब्दावली के अंतर से उस के कई स्थानीय रूप पाए जाते हैं, जो अपने बोलने वालों के लिए आपसी बोधगम्यता 'जब हम अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली, भोजपुरी, गढ़वाली आदि को **हिंदी की बोलियाँ** कहते हैं, तो हम पहले अर्थ में बोली का प्रयोग कर रहे होते हैं' लेकिन यह सच नहीं है क्योंकि अवधी, ब्रज, गढ़वाली आदि भाषाओं में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। इसीलिए, यह **भाषावैज्ञानिक अर्थ नहीं** है।

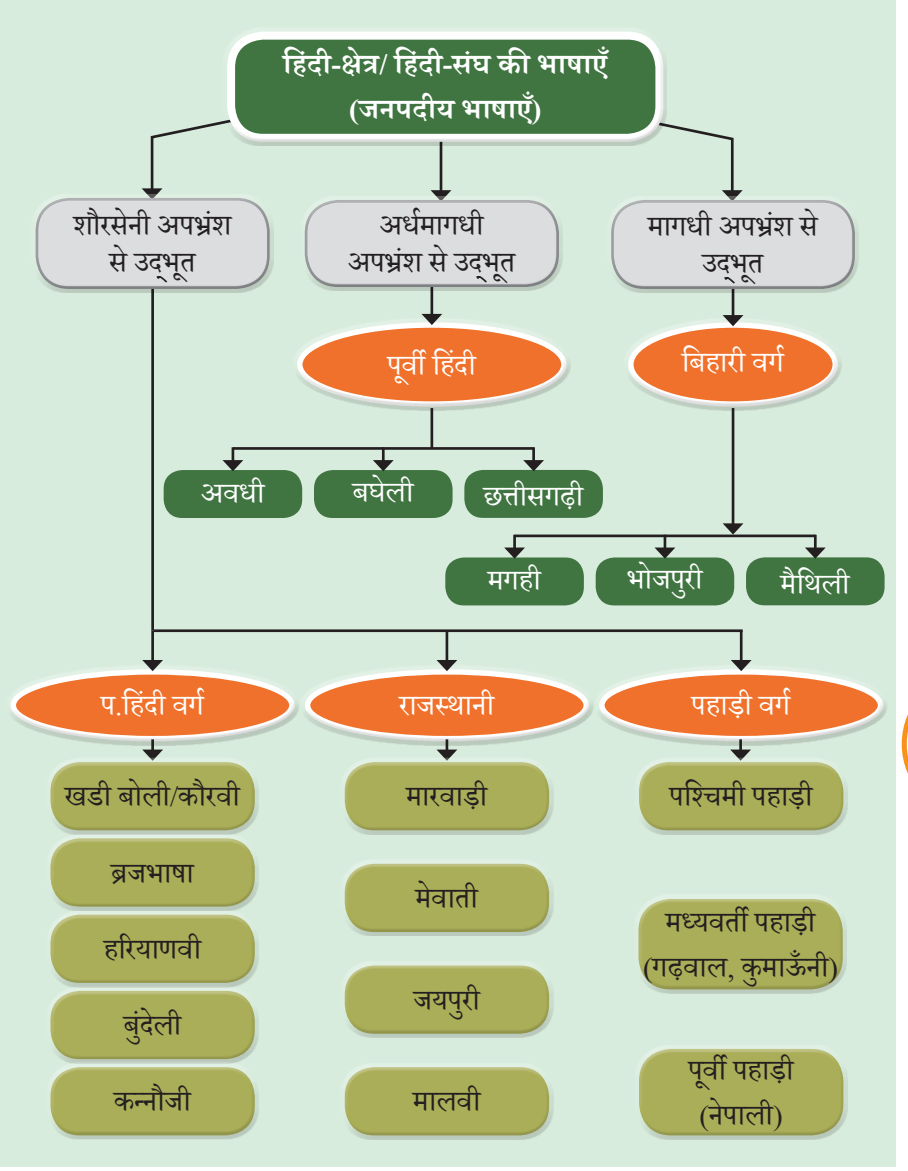

भाषा विज्ञान की दृष्टि से उचित यही होगा कि बोली शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थ में किया जाए। किसी एक भाषा के अंतर्गत, कुछ व्याकरण और मुख्यत: शब्दावली के अंतर से उसके कई स्थानीय रूप पाए जाते हैं, जो अपने बोलने वालों के लिए आपसी बोधगम्यता भी रखते हैं। बोधगम्यता रखते हुए, ऐसे स्थानीय भेद को विभाषाएँ या बोलियाँ कहते हैं। जैसे–हिंदी (खड़ी बोली) एक भाषा है, जिसके सैकड़ों रूप हैं। दिल्ली की हिंदी अलग है, पटना की अलग, तो लखनऊ की अलग। ये ही **हिंदी की विभाषाएँ** या **बोलियाँ** हैं। उसी

तरह, पलामू, पटना व गया की मगही तथा आरा, बलिया व बनारस की भोजपुरी अलग-अलग हैं। ये क्रमश: मगही व भोजपुरी की विभाषाओं या बोलियों के उदाहरण हैं। इनमें से किसी एक के बोलने वाले के लिए जब दूसरे के बोलने वाले की भाषा बोधगम्य नहीं रह जाए तो वह अंतर दो विभाषाओं का न रह कर, दो भाषाओं का माना जाता है।

गतिविधि - 14

अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की अलग-अलग हिंदी पर गौर करें कि उनमें क्या समानता और अंतर है?

दूसरे अर्थ में (यानी भाषावैज्ञानिक दृष्टि से) कहा जा सकता है कि विविध बोलियों यानी भाषा-विशेष के क्षेत्रीय प्रयोगों में से किसी/किन्हीं के आधार पर आगे चलकर मानकीकरण की प्रक्रिया से पुनर्गठन के द्वारा व्यापक स्तर पर प्रयुक्त भाषा को आकार लेते देखा गया है। जैसे– एक छोटे से क्षेत्र (दिल्ली-मेरठ) की स्थानीय भाषा (तथाकथित बोली) 'कौरवी' या 'खड़ी बोली' के आधार पर आगे चल कर व्यापकतर भाषा 'हिंदी' विकसित हुई।

जब उक्त पहले अर्थ में 'बोली' शब्द का प्रयोग किया जाता है, तो अकसर समझा जाता है कि परिस्थिति की अनुकूलता से (यानी, सांस्कृतिक व राजनैतिक प्रक्रिया विशेष से जुड़ने के बाद) बोलियों में से ही कोई भाषा बन बैठती है और उसकी प्रतिकूलता से भाषा सिमट कर बोली में बदल जाती है। साथ ही, आमतौर पर यह विवेचना होती है *कि*

खड़ी बोली हिंदी की शैलियाँ/उपरूप

खड़ी बोली कहने से एक तो दिल्ली-मेरठ के आसपास की लोक-बोली 'कौरवी' का बोध होता है, दूसरे उसके आधार पर विकसित उस व्यापक मानक भाषा (हिंदी) का बोध होता है, जिसकी आजकल निम्न शैलियाँ प्रचलित हैं —

1. हिंदी
2. उर्दू– विभिन्न कालों में इसके लिए 'हिंदवी', 'रेख्ता', 'हिंदुस्तानी' आदि नामों का प्रयोग हुआ।
3. हिंदुस्तानी
4. हिंग्लिश

'भाषा' का मानकीकरण हुआ रहता है, 'बोली' का कोई मानक रूप नहीं होता–भाषा का व्याकरण होता है, बोली का नहीं–भाषा के पास लिपि और साहित्य-रचना का संयोग होता है, बोली के पास नहीं–बोली की तुलना में भाषा का (भौगोलिक व सांस्कृतिक) प्रयुक्ति-क्षेत्र व्यापक होता है, आदि-आदि, लेकिन ये भेद बाहरी हैं, न कि भाषा या कथित बोली की प्रकृति या संरचना में कहीं निहित हैं। कथित बोली को भी वे सब उपलब्ध हो सकते हैं, जो भाषा में संभव हैं। मूल बात यह है कि सांस्कृतिक व राजनैतिक प्रक्रिया की, जो भाषा कहलाने में उसकी मदद करे। मसलन, हर कथित 'बोली' में भी व्याकरण निहित होता है। बिना व्याकरण या संरचना के नियमों के किसी भाषिक व्यवहार का होना ही संभव नहीं। उस अंतर्निहित व्याकरण को पहचानना और लिखना सांस्कृतिक व राजनैतिक सवालों से जुड़ा मसला है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से बोली कही जाने वाली हर चीज़ भाषा ही है। बोली और भाषा का जो अंतर किया जाता है, वह सिर्फ़ व्यवहार-क्षेत्र के स्तर और व्यापकता से संबंधित है, जो राजनैतिक और सांस्कृतिक सवालों से ताल्लुक रखता है। कोई बोली कब भाषा कहलाने लगती है और कब कोई भाषा भी बोली कहलाने लगेगी– इस का भाषावैज्ञानिक निर्धारण नहीं हो सकता।

'हिंदी' शब्द का प्रयोग– इस शब्द का प्रयोग मुख्यत: दो संदर्भों/अर्थों में होता है। वैसे तो मुख्यत: 'खड़ी बोली' या उसके आधार पर विकसित व व्यापकतर प्रयुक्त मानक भाषा (जो भारत की राजभाषा घोषित की गई है) को 'हिंदी' कहा जाता रहा है। जिसे हिंदी-क्षेत्र कहा जाता है, उसमें व्यापक प्रचलित भाषा के रूप में खड़ी बोली यानी हिंदी है। उसमें साहित्य-रचना, शिक्षा, मीडिया, प्रशासन आदि का माध्यम खड़ी बोली (हिंदी)

विदेशों में हिंदी के रूप

1. सरनामी/सूरीनामी हिंदी (सूरीनाम में)-डच-प्रभावित।
2. फ़ीजी बात (फ़ीजी में)।
3. मारिशसी-फ्रांसीसी-प्रभावित।
4. पारया (उजबेकिस्तान में)।
5. द.अफ़्रीकी।
6. गियानाई।
7. ट्रिनिडाडी आदि।

भोजपुरी पर आधारित होने से इन्हें मुख्यत: **भोजपुरी की बोलियाँ** कह सकते हैं।

ही है। किंतु, इस क्षेत्र में खड़ी बोली के अलावा वैसी ही डेढ़-दो दर्जन के करीब छोटी-बड़ी भाषाओं की समृद्ध उपस्थिति है, जिन्हें अब तक हिंदी की बोलियाँ या उपभाषाएँ कहते आए हैं। जैसे– अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही, राजस्थानी, गढ़वाली आदि। परंतु, उपर्युक्त विवेचनानुसार इन्हें बोलियाँ या उपभाषाएँ मानना उचित नहीं है, क्योंकि इन सबका हिंदी से और आपस में भी स्पष्ट भाषावैज्ञानिक अलगाव है और इस प्रकार ये स्वतंत्र भाषाएँ हैं। अपेक्षाकृत कुछ पुरानी शब्दावली में इन्हें जनपदीय भाषाएँ कहा जा सकता है।

फिर भी, खड़ी बोली/हिंदी के साथ इन सबका ऐसा गहन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंध या परस्पर आवाजाही है कि इन्हें आमतौर पर अलग-अलग भाषाएँ न मानकर 'हिंदी' के ही अंतर्गत समेटा जाता रहा है। 'हिंदी' शब्द का व्यापकतर सांस्कृतिक प्रयोग इनके समूह के लिए होता आया है। पर, उक्त तथ्यों के आलोक में इन सबको हिंदी की सगी बहनें अथवा खड़ी बोली समेत इन सबको पंडित किशोरीदास वाजपेयी के शब्दों में 'हिंदी-संघ की भाषाएँ' कहा जा सकता है। 'हिंदी' शब्द द्वारा जब हम 'हिंदी संघ' की समस्त भाषाओं को ग्रहण करते हैं, तब हमारे भीतर सामासिक मनोवृत्ति कार्य करती है। फिर, हम 'हिंदी-साहित्य' भारतीय चिंतनधारा के उस मूर्त अवतार को कहते हैं, जो 'हिंदी-संघ' के माध्यम से उतरा हो।

अन्य भाषा-क्षेत्र में हिंदी के रूप

1. कलकतिया हिंदी
2. बंबइया हिंदी
3. दक्खिनी हिंदी– (इसके अन्य नाम हिंदवी, दकनी, देहलवी, गुजरी, हिंदुस्तानी, दक्खिनी उर्दू, ज़बाने-हिंदुस्तान, मुसलमानी) आदि पचासों भेद हो सकते हैं।

4.1.3 वाक् और लेखन

समाज में भाषा का व्यवहार सामान्यत: दो रूपों में दिखता है– वाचिक/मौखिक और लिखित। (भाषा का मानसिक स्तर पर भी व्यवहार होता है–'चिंतन', स्तर पर वह आमतौर पर विश्लेषण में अलक्षित रह जाता है।)

गतिविधि - 15

यदि लिखित रूप नहीं है तो क्या ज़िंदा रह पाएगी बोली? *चर्चा करें।*

भाषिक व्यवहार का वाचिक रूप ही 'वाणी' या **'वाक्'** (Speech) कहलाता है। यही भाषा का प्राथमिक और अधिक व्यापक रूप है। [वस्तुत: 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति ('भाष्' धातु = बोलना) भी इसी रूप से संबद्ध है। ('भाषा' का अंग्रेज़ी पर्याय Tongue है, जिसका अर्थ जीभ भी है। यानी, उच्चरित रूप की ओर ही संकेत है।)] यही सबसे सहज और प्रत्यक्ष है। **'लेखन'** तो भाषा का अगला रूप है, जो बहुत बाद में ('लिपि' के विकास पर) आता है। उसका होना भी अनिवार्य नहीं है, क्योंकि उसकी ज़रूरत सभ्यता के विकास से पैदा होती है। दुनिया की बहुत सारी भाषाएँ हैं, जिनमें अबतक लेखन की सुविधा नहीं है। बस, वे बोलचाल में ज़िंदा हैं। भाषाविज्ञान में जिस चीज़ का विश्लेषण होता है, वह मूलत: मौखिक भाषा ही है। (ध्वनि विज्ञान क्या लिखित भाषा का है ?)

बोलचाल की भाषा में संप्रेषणीयता व जीवंतता अधिक होती है। उसी में भाषा के समस्त लक्षण घटित होते हैं। उच्चरित भाषा में जितनी विशेषताएँ हैं– बलाघात, अनुतान, संगम, बोलने का लहज़ा आदि– वे उसके लिखित रूप में कहाँ संभव हैं? कम शब्दों या भाषायी तत्वों से भी उच्चरित भाषा अधिक और प्रभावी संप्रेषण कर लेती है। हम बोलने के दौरान उतार-चढ़ाव वाली, कड़क या धीमी, महीन या तीखी आवाज़ अथवा बोलने की तेज़ या मंद गति, ठहराव आदि का सहारा लेकर भी अभिव्यक्ति करते या उसे ज़्यादा असरदार बनाते हैं अथवा उसे इच्छित अर्थ (दिशा) में प्रेषित कर पाते हैं। बोलते समय

गतिविधि - 16

चर्चा करें

कबीर के दोहे यदि लिखे न गए होते तो क्या मिल पाते ? कबीर ने अपने दोहे स्वत: नहीं लिखे थे। उनके अनुयायियों ने सुनकर उन्हें लिपिबद्ध किया, इससे कहीं-कहीं उनका रूप भी बदल गया। जिस किसी ने लिखा उसको वहीं तक सीमित नहीं किया, बल्कि आगे भी बढ़ाया। यह भाषा शिक्षण का सबसे ज़रूरी उद्देश्य है। कबीर, नानक के संदर्भ में इस पर चर्चा करें।

अमौखिक (Non-verbal) संकेतों (जैसे– हाथ, आँख/भौहों, होंठों, चेहरे के तरह-तरह के संचालन) का भी उपयोग कर, शब्दों से कुछ बाकी रह गए अर्थ भी संप्रेषित किए जाते हैं। मौखिक भाषा की ये सारी विशेषताएँ लिखित भाषा में लुप्त रहती हैं। मौखिक भाषा को लिखित रूप देने हेतु, संदर्भ आदि स्पष्ट करने के लिए कुछ अतिरिक्त शब्दों/वाक्यों की योजना करनी पड़ती है। इसी से लिखित भाषा को सीखना और उसमें दक्षता पाना समय-साध्य होता है।

बोलचाल की भाषा प्रत्यक्ष चीज़ है, उसमें किसी का व्यक्तित्व सीधे-सीधे झलकता है– उसकी प्रवृत्तियाँ, सोच की बुनावट या सामाजिक चरित्र अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति पाता है। लिखित भाषा में ऐसी प्रत्यक्षता व प्रामाणिकता की मात्रा कम होती है। फिर भी, लिखित भाषा ही है, जिसके ज़रिये भाषा और उसमें व्यक्त होने वाले विचार, भाव आदि का संरक्षण हो पाता है; जिसके बिना मानव जाति की सभ्यता-संस्कृति की किसी यात्रा अथवा ज्ञान/बोध की किसी निरंतरता का होना लगभग असंभव है। **वाचिक भाषा अस्थायी है।** साथ ही, जहाँ वह उच्चरित हो रही है, वहीं कुछ दूर तक के लिए काम आ सकती है। लिखित भाषा 'काल' और 'देश' की इन सीमाओं से परे है। इसी कारण वह सभ्यता-संस्कृति के लिए उक्त ज़रूरी भूमिकाएँ निभा पा रही है।

वाचिक भाषा 'कान' की भाषा होती है। **लिखित भाषा** 'आँख' छुअन/स्पर्श की भाषा होती है, जिससे श्रवण/भाषण बाधित व्यक्ति भी भाषा-व्यवहार (ग्रहण/प्रयोग) कर सकता है तथा उससे व्यक्त हो रहे अनुभव/ज्ञान को ग्रहण व सर्जन कर सकता है तथा अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग करता है। 'ब्रेललिपि' ने तो दृष्टिबाधित व्यक्तियों को भी यह सुविधा प्रदान कर दी। 'लिपि' के क्षेत्र में ही अगला विकास 'यांत्रिक लेखन' (टंकण) के रूप में हुआ। पुराने टाइप-राइटरों और मुद्रण-यंत्रों से 'कंप्यूटर-टाइपिंग' तक की यात्रा हुई। टेलीप्रिंटर, फ़ैक्स आदि से लिखित भाषा का तत्क्षण दूर तक संप्रेषण संभव हुआ। 'लिपि' ने भाषा को स्थायित्व तो दिया, परंतु लिखित भाषा में उच्चरित भाषा की जीवंतता जाती रही।

गतिविधि - 17

कबीर के दोहे यदि लिखे गए न होते तो क्या मिल पाते? इस विषय पर कक्षा में चर्चा करें कि और क्या साधन हो सकता था उनके संरक्षण का।

कबीर के दोहे यदि लिखे न गए होते तो क्या मिल पाते? कबीर ने अपने दोहे स्वत: नहीं लिखे थे। उनके अनुयायियों ने सुनकर उन्हें लिपिबद्ध किया, इससे कहीं-कहीं उनका रूप भी बदल गया। जिस किसी ने लिखा उसको वहीं तक सीमित कर देना काफ़ी नहीं

समझा, उसमें कुछ जोड़कर **आगे बढ़ाना भाषा के शिक्षा का** भी सबसे ज़रूरी उद्देश्य है। इस कमी को दूर किया **ध्वनि-लेखन/मुद्रण (वॉयस-रिकॉर्डिंग)** की तकनीक ने। इस क्रम में ग्रामोफ़ोन-रिकॉर्डिंग, टेप-रिर्कार्डिंग, सी.डी./डी.वी.डी./ब्लू रे-रिकॉर्डिंग आदि क्रमश: आए। इनमें भाषा का एकदम जीवंत रूप में संरक्षण संभव हुआ–उसकी सारी उच्चारणगत विशेषताओं के साथ आज हम हू-ब-हू 'गांधी जी', 'सुमित्रानंदन पंत, 'महादेवी वर्मा' आदि के स्वर सुन सकते हैं तो इसी कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर वक्ता की आवाज़ को तत्क्षण पहुँचाने के लिए रेडियो, वायरलेस (बेतार का तार), टेलीफ़ोन भी संभव हुए; जिनका विकसित रूप 'मोबाइल फ़ोन' आ गया। मौखिक व लिखित भाषा की इस संप्रेषणीयता व स्थायित्व को और अधिक पूर्णता मिली सिनेमा, दूरदर्शन (टी.वी.) और मोबाइल फ़ोन की 'वीडियो-कॉलिंग' द्वारा। शब्द और रूप दोनों का समन्वय और उसमें दो लोगों का परस्पर संवाद! संप्रेषण का चरम रूप है, बड़ा ही विलक्षण! विज्ञान के पंखों पर सवार होकर 'वाक्' और 'लेखन' कहाँ तक जाएँगे– अभी कहना मुश्किल है।

यदि लिखित भाषा न होती, तो ज्ञान-विज्ञान की सुरक्षा, विकास व प्रसार तथा सभ्यता-संस्कृति के क्षेत्र में 'पुस्तकालय' या 'संग्रहालय' जो अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, वे संभव न होते। यह बात परंपरागत और यांत्रिक / डिजिटल दोनों प्रकार की लाइब्रेरियों को लेकर कही जा रही है, जिसकी ऊँची छलांग है **इंटरनेट**।

गतिविधि - 18

'शिष्य परंपरा तो आगे तक चलती रहती है'– कबीर, नानक के संदर्भ में इस वाक्य पर चर्चा करें।

विभाषायी तत्व, लहज़ा और शैली

जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, किसी भाषिक समुदाय में बोलचाल के लिए प्रयुक्त भाषा मोटे तौर पर एक **(कॉमन)** होती है, फिर भी क्षेत्रीय/स्थानीय-सांस्कृतिक प्रभावों से उसके विविध विभाषायी **(डायलैक्टिक)** रूप होते हैं, जो उच्चारणगत एवं कुछ हद तक व्याकरणिक विभेद दिखलाते हैं। जैसे–'खड़ी बोली' (हिंदी) एक है, पर क्षेत्रानुसार उसमें ये भेद दिख सकते हैं —

हिंदी का एक वाक्य है–**'पता ही नहीं था।'** इसे पूर्वी क्षेत्र के हिंदीभाषी पढ़े लिखे या कम पढ़े लिखे व्यक्ति ऐसे बोलेंगे–**'पते नहीं था।' 'मैं घबड़ा जाती हूँ'** को बंगाली स्त्री बोलेगी–**'हम घबड़ा जाता है '** — लखनऊ में **'तुम्हें कल आना है'** बोलते हैं, जिसे हरियाणा-दिल्ली में यदा-कदा **'तुमणे कल आणा है'** कह देते हैं। **'लड़के गए'**

को पलामू (झारखंड) की हिंदी में बोलते हैं– **'लड़का लोग गया ।'** जिसे एक 'हिंदी' कहा जाता है, वह इस प्रकार की कई हिंदियों का समन्वित या सार्वनिष्ठ रूप हो सकती है।

इस विभाषायी बहुलता से ही जुड़ा है–'लहज़े' का सवाल। किसी भाषा को बोलते समय हर व्यक्ति **'अनुतान/सुर'** *(Tone)*, **बलाघात** आदि ध्वनि-गुणों का अपने तरीके से प्रदर्शन करता है। इसके पीछे हर व्यक्ति को मिले या उसमें विकसित हुए क्षेत्रीय, जातीय/सांस्कृतिक, पारिवारिक (और कुछ हद तक व्यक्तिगत) संस्कारों की अहम भूमिका होती है। इसका परिणाम होता है–हर व्यक्ति/समूह द्वारा बोलने का अलग-अलग **लहज़ा**। उच्चारण-क्रम में शब्द-विशेष के ध्वनि/वर्ण-तत्व की समानता के बावजूद, उनसे संपृक्त शेष ध्वनि-तत्वों (अनुतान, बलाघात, संगम आदि) की उच्चता-निम्नता, उपस्थिति-अनुपस्थिति के संदर्भ में घटित भाषिक विलक्षणता ही **लहज़ा** है। जैसे–हिंदी का एक वाक्य है–क्या सर! काम हुआ? इसे लोग अपने-अपने लहज़े में बोल सकते हैं। एक 'क्या' के 'आ' को खींच कर बोल सकता है–**'क्याइसर!**...' दूसरा इसे बिना खींचे सिधाई में बोलते हुए कण्ठ-स्वर की कुछ दूसरे तरह की मिलावट करके बोल सकता है, जिससे कुछ उद्दंडता या मासूमियत टपके। हिंदी बोलने के कई लहज़े हो सकते हैं– पहाड़ी लहज़ा, बिहारी लहज़ा (उसमें भी मगही, भोजपुरी, मैथिली लहज़े), मराठी लहज़ा, तमिल लहज़ा, बंगाली लहज़ा, पंजाबी लहज़ा आदि। किसी का लहज़ा उसके क्षेत्रीय, जातीय/सांस्कृतिक, पारिवारिक व व्यक्तिगत संस्कारों का भी संकेतक होता है और वाक्य के अर्थ में भी किंचित् मिश्रण या छाया-भेद करता है।

लहज़े की तरह ही भाषा में एक और तत्व है–'शैली'। किसी भाषिक समुदाय में सामान्यत: एक भाषा का प्रयोग होने पर भी यह सवाल महत्वपूर्ण होता है कि कौन, किससे, कब, कहाँ, क्या या किसके बारे में कह रहा है अथवा बोलने की जगह लिख रहा है? इनके हिसाब से एक ही भाषा की अलग-अलग शैलियों का जन्म होता है। शैली के तत्व हैं– शब्द चयन, वाक्य-विन्यास, उच्चारण-वैशिष्ट्य आदि। बोलते समय भाषा का रूप कुछ अलग होता है, लिखते समय कुछ अलग। किसी से बात करते समय हमारी शैली वही नहीं रहती, जो उसे पत्र लिखते समय। बोलने में अपेक्षाकृत तेज़ी होती है, जिससे शब्द-चयन में सावधानी या वाक्य का सुगठन उतना नहीं होता, जितना लिखने में दिखता है। समाज में जाति, वर्ग, जेंडर, शिक्षा, उम्र, क्षेत्र, पेशा/पद, मनोदशा आदि से जुड़े ढेरों स्तर हैं; जिनके सापेक्ष भाषा की विविध शैलियाँ बन जाती हैं। किसी मज़दूर से बात करते और विद्वान से बात करते, साक्षात्कार देते और बच्चों को खेलाते, माँ से बात करते और प्रेमी/प्रेमिका से बात करते आदि प्रसंगों में हम अलग-अलग शैलियों में अपनी (एक ही) भाषा को ढाल लेते हैं। शैली का भेद मोटे तौर पर ''ऐतिहासिक, सामाजिक, क्षेत्रीय/भौगोलिक, वैयक्तिक, प्रयोजनमूलक आदि आधारों पर होता है।''

'शैली' और 'लहज़ा' में मूलभूत अंतर यही है कि **'शैली'** लगभग सचेत चुनाव होती है (या, कम से कम उसे अपनी रुचि/व्यक्तित्व के अनुसार विकसित किया जाता है), किंतु **'लहज़ा'** हमारी आदत या स्थायी विशेषता।

किसी भाषा में विभाषा, लहज़ा और शैली संबंधी जितनी ही अनेकरूपता होती है, वह उतनी ही विस्तृत और जीवंत होती है। भाषा-भेदों की ये बहुलताएँ किसी कमी या अव्यवस्था की सूचक नहीं हैं, बल्कि उसके क्षेत्रीय, सामाजिक, प्रयुक्ति परक विस्तार एवं तज्जन्य समृद्धि के प्रमाण हैं–जो उसकी शक्ति भी है, खूबसूरती भी। अगर कुछ नहीं, तो यह सहज स्थिति तो ज़रूर है।

लहज़े का सवाल **भाषा**/वाणी की 'लय' का सवाल है। इसलिए, लहज़ों की बहुरूपता उच्चारण का दोष नहीं, बल्कि भाषा की संगीतात्मक समृद्धि की सूचक है। क्या एक स्वर से सरगम बन सकती है? इसी तरह, किसी भाषा को एक खास लहज़े में बोला जाए–ऐसा आग्रह/दबाव उसे एकरस/बदरंग कृत्रिम स्थिति में ढालने की अर्थहीन कवायद है। ऐसा समझना आजकल इस कारण से बेहद ज़रूरी हो गया है, क्योंकि लहज़े से किसी की क्षेत्रीयता आदि की पहचान कर, अकसर कुछ प्रतिक्रियावादी लोग/ताकतें उसका उपहास या उसके साथ ओछी हरकतें करते हैं, उसके विरुद्ध क्षेत्रवादी राजनीति का ज़हर फैलाते हैं। ये बातें न लोकतांत्रिक समाज के स्वास्थ्य के हक में हैं, न ही ये भाषाविज्ञान से

गतिविधि - 19

अलग-अलग राज्यों में हिंदी भी भिन्न तरीके से बोली जाती है। लहज़ा भी अलग होता है। अपने आस-पास के कुछ बच्चों तथा कुछ बड़ों के बोलने के भिन्न लहज़ो को ध्यान से सुनें और उनकी ऑडियो रिकॉर्डिंग कर लें। दस स्कूलों के भाषा अध्यापकों के साथ इन 'लहज़ों' के स्वरूप पर बातचीत करें। इन बिंदुओं को लेकर —

- इस तरह के वाक्य जब बच्चे आपकी कक्षा में बोलते हैं तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होती है?
- बोलने में भी स्वीकार करते हैं? या सिर्फ़ लेखन में ?
- लिखने में भी स्वीकार कर लेते हैं पर कुछ सुझावों के साथ। यदि हाँ, तो क्या टिप्पणियाँ होती हैं ?

समर्थित हैं। जिस तरह भाषा में प्रयुक्त हर 'ध्वनि' का अपना महत्व है, उसी प्रकार हर ध्वनि-गुण (अनुतान-बलाघात आदि से जुड़ी विशेषताओं) का भी। भारत जैसे बहुभाषिक देश (जिसका हर प्रांत भी बहुभाषिक ही है) में, 'हिंदी' जैसी अखिल भारतीय एवं बहुभाषीय भाषा के संदर्भ में इस प्रकार की संकीर्णता को कतई जगह नहीं दी जा सकती। वैसे भी देखा जाए, तो अनेकानेक विभाषाओं, शैलियों व लहज़ों से जिसकी बुनावट हुई हो, उस **'हिंदी'** का 'मानक रूप' तो किसी के लिए शिक्षा द्वारा अर्जित भाषिक संपत्ति होता है। सबसे पहले तो वह अपने क्षेत्रगत, खास शैली और लहज़े वाली हिंदी से ही परिचित होता है। मानक रूप भी तो उन्हीं बहुरूपों में से किसी/किन्हीं के आधार पर निर्धारित होते हैं। मानकीकरण का अपनी जगह महत्व है, पर उसके आधार पर किसी भाषा की बहुरूपी-बहुवर्णी प्रकृति को बड़े भारी दोष की तरह नहीं देखा जा सकता, जो एक सहज/नैसर्गिक वास्तविकता है।

4.2 — भाषायी व्यवस्थाएँ

4.2.1 सार्वभौमिक व्याकरण की संकल्पना

हम जानते हैं कि कोई भाषा अंततः कुछ खास नियमों के अनुसार बनी व्यवस्था है। समेकित रूप में उन नियमों को **व्याकरण** कहा जाता है।

सवाल उठता है कि भाषा-विशेष के मूल नियम या **व्याकरण** कहाँ अवस्थित होते हैं ? इस प्रश्न का संबंध भाषा की उत्पत्ति व विकास की प्रक्रिया से है। इस पर मुख्यतः दो तरह के मत हैं (विकासवादी और भाववादी)। जो लोग मानते हैं कि 'भाषा' का जन्म और विकास इंसान में ही इसलिए हुआ क्योंकि उसकी जीवनयापन की ज़रूरतें व परिस्थितियाँ तथा शारीरिक संरचना (हाथ, सिर का ऊपर स्थित होना, विकसित वागांग, खास स्नायविक संरचना आदि) शेष प्राणियों से भिन्न या विलक्षण रही हैं, उनके अनुसार, भाषा का व्याकरण उसके स्वरूप या संरचना में निहित होता है, जिसे इंसान समाज में रह कर अर्जित करता और अपनी स्मृति में धारण करता है। सार्वभौमिक व्याकरण की संकल्पना व्यक्ति, स्थान, काल और जीवनयापन की परिस्थितियों की विभिन्नता के

संरचनावादी भाषाविज्ञान ने माना कि व्याकरण किसी भाषा-विशेष का होता है और कोई भी भाषा किसी खास सांस्कृतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति। इस संदर्भ में यह माना गया कि ऐसे आधारभूत व्याकरण अथवा सार्वभौमिक भाषा-रचना की खोज नहीं की जा सकती, जो सभी भाषाओं (के व्याकरणों) में समान रूप से लागू होती हो। पर, **सार्वभौमिक व्याकरण** की विचारधारा में भाषावैज्ञानिक का काम असंख्य प्रकार के भाषिक विभेदों के बीच विद्यमान एक अमूर्त-सी समरूपी भाषा-व्यवस्था/नियमावली (व्याकरण) का पता लगाना है। अमूर्तता के इस संधान का चरम उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब दुनिया की हर भाषा में विद्यमान एक ही सामान्य/सार्वभौमिक व्याकरण का पता लगे। इस विचारधारा ने भाषा-विशेष के व्याकरणिक नियमों एवं संरचनाओं का पता लगाने की अपेक्षा **मानवजन्य सभी भाषाओं की मूल प्रकृति** पर प्रकाश डालने को अपना लक्ष्य माना। चॉम्स्की-मत से भाषाविज्ञान का सैद्धांतिक लक्ष्य सार्वभौमिक व्याकरण की खोज और उसके संदर्भ में मानव-मन की भाषिक क्षमता एवं संभावित कार्य-योजना पर प्रकाश डालना है।

कारण दुनिया में (ध्वनि, रूप आदि के असंख्य भेद के साथ) अनेक या असंख्य भाषाएँ मौजूद रही हैं, इसलिए हर भाषा का व्याकरण भी अलग-अलग रहा है।

इसके विपरीत भी एक मत है जो भाषा की उत्पत्ति व विकास का संबंध इंसान की बुद्धि या चेतना से मानता है। उसके अनुसार चूँकि इंसानी बुद्धि या चेतना सार्वभौम है, इसलिए भाषा के मूलभूत नियम भी सार्वभौम (यूनिवर्सल) हैं। यही है **सार्वभौमिक / सार्वजनीन व्याकरण** की संकल्पना का आधार। इस मत के प्रवर्तक अमेरिकी भाषा-विज्ञानी **चॉम्स्की** हैं।[1] उनकी मूल अवधारणा है कि एक सार्वजनीन व्याकरण का ढाँचा हरेक मनुष्य की चेतना में विद्यमान रहता है। इस सार्वभौम आधार पर विभिन्न भाषाओं के व्याकरण का प्रतिफलन होता है। इस मत से यह भी कहा जा सकता है, कि दुनिया की अनगिनत भाषाएँ एक ही मूल व्याकरणिक ढाँचे की बाह्य और अलग-अलग परिणतियाँ हैं। चॉम्स्की के व्याकरणिक संप्रदाय का दावा है कि वह किसी भी भाषा के व्याकरण-संबंधी नियम बहुत ही संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सकता है, क्योंकि भाषा के मूलभूत तत्व/नियम थोड़े से ही होते हैं। उन्हीं में पूरी भाषा की व्याख्या संभव है। उन्हीं सीमित नियमों के ज़रिये (रूपांतरण के द्वारा) व्यक्ति असीमित व अनंत प्रकार की वाक्य-संरचनाएँ प्रजनित कर सकता है।

चॉम्स्की *भाषा को इंसान का जन्मजात (इनेट) गुण मानते हैं।* उनके मत से जन्म के समय बच्चे का मानस कोरा नहीं होता, सहजात वृत्तियों (इनेट पॉवर) से युक्त रहता है। इसी के बल पर बच्चा अपने वातावरण में फैले (शैली व संरचना की) विविधता से भरे नाना भाषा-व्यवहारों/वाक्यों के भीतर से सरल वाक्य-प्रारूप (बीज-संरचना) या सामान्य ढाँचे यानी निर्विशेष नियमों का पता लगा लेता है। इसी कारण कोई भी भाषिक प्रक्रिया सार्वभौमिक होती है। इन्हीं सहजात वृत्तियों से संबद्ध होने के कारण कोई भी भाषा कुछ सामान्य नियमों/प्रक्रियाओं का अतिक्रमण करने की स्थिति में नहीं होती। जन्म से ही हमारे मानस-पटल पर अंकित भाषा-संबंधी सहजात वृत्तियों की व्यवस्था व्याकरण की सार्वभौमिकता का आधार है।

सच तो है कि भाषा-मात्र जन्मजात होती है, न कि भाषा-विशेष। भाषा-विशेष का हम अर्जन करते हैं। इंसान की भाषा सीखने की प्रवृत्ति जन्मजात होती है, जिसके कारण अपने भाषिक समाज में रहते हुए वह भाषा सुनता है, भाषिक प्रयोग देखता है; मन ही मन उनका विश्लेषण करता है और इस तरह से भाषा के नियमों को आत्मसात् करते रहता है। इसी प्रक्रिया से निरंतर गुज़रते, वह नियमबद्ध व्यवहार के रूप में कोई भाषा सीखता है। वह भाषा-मात्र नहीं, भाषा-विशेष सीखता है और उसी से उसका काम चलता है। यह सार्वजनीन तथ्य है।

1. चॉम्स्की द्वारा प्रवर्तित व्याकरण-सिद्धांत को 'ट्रांसफॉरमेशनल-जनेरेटिव ग्रामर'–'रूपांतरण-प्रजनक व्याकरण' या 'निष्पादक व्याकरण' या 'परिणामी व्याकरण' कहते हैं।

भाषा के संदर्भ में जिस सार्वभौमिकता की बात होती है, वह भाषा सीखने की प्रक्रिया और भाषिक प्रकृति दोनों से संबंधित है। दुनिया के हर भाषिक समुदाय में बच्चे के भाषा सीखने का एक निश्चित क्रम होता है। वह ध्वनियों में स्वर पहले सीखता है, व्यंजन बाद में। स्वरों में से **विवृत स्वर** (जैसे-आ) पहले सीखता है, **संवृत** (जैसे-इ/ई) बाद में।[2] व्यंजनों में ओष्ठ्य पहले सीखता है, वहाँ भी प, ब, म। माताएँ मम्-मम्, बब्-बब्, पप्-पप् जैसी ध्वनियाँ करके बच्चों को सरल ओष्ठ्य वर्णों का उच्चारण सिखाती हैं। संसार की लगभग हर भाषा में प, ब, म वर्णों की अवस्थिति है। परंतु, इस तथ्य की व्याख्या मनुष्य की चेतना की सार्वभौम स्थिति से जोड़ कर करने की आवश्यकता नहीं है। इसकी भौतिक व्याख्या आसानी से संभव है। संभवत: मस्तिष्क के भाषण-केंद्र की न्यूनतम प्रेरणा से होंठ हिल सकते हैं, ज़ुबान (जीभ) हिलाना उसकी तुलना में कठिन है। इसी से उक्त ओष्ठ्य वर्णों की सहज व्याप्ति प्राय: सभी भाषाओं में है। भाषा सीखने के क्रम में ऐसा देखा गया है कि पहले वर्ष के अंत तक अव्यक्त और अस्पष्ट ध्वनियाँ शिशु की व्यक्त और स्पष्ट ध्वनियाँ (शब्द) बनने लगती हैं। पहले वर्ष में इस तरह वह चार-पाँच शब्द बोल लेता है। पहले एक शब्द, बाद में दो शब्दों के कुछ वाक्य प्रकार आदि। दूसरे वर्ष में उसका शब्द-भंडार बढ़ कर दो-चार सौ शब्दों तक का हो जाता है। साथ ही भाषा-विशेष (जिस भाषिक समुदाय में वह रहता है, उसकी व्याकरणिक व्यवस्था भी उसके वाग् व्यवहार में बनने लगती है।[3]

2. जिस स्वर के उच्चारण में जीभ और मुख-गुहा की छत के बीच अधिकतम दूरी रहती हो, यानी मुख-गुहा अधिकतम खुली रहती हो, उसे **विवृत** स्वर कहते हैं। इसके विपरीत, जिस स्वर के उच्चारण में जीभ और मुख-गुहा की छत के बीच न्यूनतम दूरी रहती हो, यानी मुख-गुहा बहुत सँकरी हो जाती हो, उसे **संवृत** स्वर कहते हैं।

3. पर इसका मतलब यह नहीं कि बच्चा ध्वनि से शब्द और उनसे वाक्य बनाना सीख रहा होता है। अपने मन में वह जो कुछ सोचता है, वह वाक्यार्थ ही होता है, जिसे संप्रेषित करने की कोशिश करता है। पर **वागीन्द्रिय**, धारणा-शक्ति आदि से जुड़ी कई प्रकार की अपनी असमर्थताओं के चलते वह व्याकरणिक दृष्टि से पूरा वाक्य बोल नहीं पाता। वस्तुत: मन से हर बार वह वाक्य ही बोल रहा होता है, पर उच्चार में वह प्रकट नहीं होता और हमें उसके वागांग अकसर अस्पष्ट, टूटे-फूटे शब्दों का उच्चारण करते दिखते हैं। विकास-क्रम में वह अपनी असमर्थताओं से धीरे-धीरे छुटकारा पाता जाता है, जिसे हम (ध्वनियाँ जोड़कर शब्द और शब्द जोड़कर उनसे वाक्य बनाना सीखते हुए) उसका भाषा सीखना कहते हैं, किंतु सच तो यह है कि उसका भाषा सीखने का क्रम वाक्य से ध्वनि की ओर होता है।

   बच्चे और बड़े में अंतर यही होता है कि बड़े जहाँ भाषिक दृष्टि से समर्थता (व्याकरणिक संरचना में पूर्ण वाक्य उच्चरित करने की क्षमता होने) के बाद भी, शैली या लाघव के लिए एकपदीय या अधूरे (**अध्याहृत**) वाक्य बोलते हैं, वह भी किसी पूर्व-संदर्भ में ही; वहीं बच्चे बिना किसी पूर्व-संदर्भ के अपनी उक्त असमर्थता के चलते, ऐसे प्रयोग करते हैं।

   पर, जो भी ऐसा प्रयोग करे, एक बात स्पष्ट है कि हर बार **गहन संरचना** (Deep structure) के स्तर पर पूरा वाक्य आकार लेता है (जैसे– 'देखो, गाय खड़ी है', 'मैं आपको नमस्ते कर रहा/रही हूँ', 'मुझे रोटी दो' आदि), लेकिन बाहरी संरचना (Surface structure) यानी उच्चार तक आते-आते वह अधूरा या विकृत (जैसे-'गाय,' 'नमस्ते', 'रोटी/लोती' आदि) होकर रह जाता या रख दिया जाता है।

भाषाओं की ध्वनि-प्रकृति में कुछ बातें सार्वजनीन होती हैं। जैसे–हर भाषा में स्वर और व्यंजन ध्वनियों की स्थिति होगी। हाँ, यह संभव है कि किसी में कोई/कुछ ध्वनि प्रमुखता से उपलब्ध हो, किसी में कोई/कुछ।[4] किसी भाषा में दो स्वर लगातार नहीं आ सकते। जहाँ भी कहीं लेखन में एकाधिक स्वरों की लगातार स्थिति दिखती हो, वहाँ गहराई से देखने पर स्पष्ट होता है कि दो स्वरों के बीच कोई व्यंजन (अंत:स्थ) आया है, तभी उनका लगातार उच्चारण संभव हो रहा है। जैसे– हिंदी में 'आइए' और 'कौआ' लिख भले दें, लेकिन उच्चारण क्रमश: 'आयिये' और 'कौवा' ही होता है। इनमें उच्चारण-सहयोग के लिए क्रमश: 'य्' और 'व्' अंत:स्थ व्यंजन आए। स्पष्ट है कि भाषा में एकाधिक स्वर लगातार नहीं आ सकते। इसी तरह, लगातार तीन से अधिक व्यंजनों का आना भी असंभव या कम-से-कम विरल है। [संस्कृत में **'कात्स्न्र्य'**[5] शब्द में लगातार पाँच व्यंजन प्राप्त हैं-र्-त्-स्-न्-य्– पर यह दुर्लभ स्थिति है।] ऐसा होने का कारण हमारे उच्चारण-अंगों की प्रयत्नशीलता से संबंधित है। किसी स्वर के उच्चारण में जो प्रयत्न होना चाहिए, उसे लगातार दो या अधिक बार घटित कर पाना हमारे उच्चारण-अवयवों के लिए संभव नहीं। इसका कारण उनकी संरचना-विशेष है।

भाषाओं की रूप-प्रकृति पर विचार करने से भी कुछ सार्वभौम तत्व समझ में आते हैं। जैसे–सभी भाषाओं में संज्ञा, क्रिया, संख्यावाचक आदि शब्द या कोटियाँ मिलती हैं। सबमें वचन व कारक-तत्व होते ही हैं (भले उनका नामकरण या विवेचन कोई न कर पाए)। कर्ता, कर्म आदि कारक[6] हर भाषा में होंगे, भले उन के प्रकटीकरण के लिए विभक्तियों/परसर्गों की स्थिति (तरीका और संख्या) और वाक्य में इनका क्रम अलग-अलग हो अथवा किसी-किसी भाषा (जैसे–अयोगात्मक भाषाओं में) विभक्तियों/परसर्गों की स्थिति हो ही न और दूसरे किसी माध्यम से (शब्द-क्रम, अनुतान या स्वतंत्र संबंधवाचक अव्ययों से) उनके आशय का प्रकाशन हो। हिंदी में *कर्ता + कर्म + क्रिया का क्रम है , तो अंग्रेज़ी में कर्ता + क्रिया + कर्म* का। हर भाषा में विशेष्य और विशेषण की स्थिति है। अंतर केवल उनके प्रकटीकरण के तरीके को लेकर है हर भाषा में वाक्य की रचना, *'उद्देश्य + विधेय'* अथवा कम-से-कम *'संज्ञा(-पदबंध)+क्रिया (-पदबंध)'* के सम्मिलन से होता है। यदि वाक्य कुछ विस्तारित हो, तो उसमें आगत 'पद'/पदबंध अपने विशेषकों, परिसीमकों, विस्तारकों आदि के साथ प्राय: हर भाषा में आता है। हिंदी में एक लघुत्तम वाक्य लेते हैं —

4. जैसे–संस्कृत-हिंदी में 'न' ध्वनि की भरमार है तथा 'ण' भी खूब है, पर यूनानी, लैटिन, रूसी, जर्मन आदि में 'न' की वैसी भरमार अथवा 'ण' की प्राप्ति नहीं है। जैसे–'इकतीस' या 'एकत्रिंशत्', वाक्य में साधारणत: 'कर्ता + कर्म + क्रिया' का क्रम रखना आदि भारतीय आर्य भाषाओं की अपनी भाव-प्रकृति है। यूरोपीय भाषाओं के संख्यावाचकों में 'दहाई' को पहले रखना (जैसे- थर्टी वन), वाक्य में 'कर्ता + क्रिया + कर्म' का क्रम रखना आदि उनकी अपनी प्रकृति है।
5. इसका अर्थ 'संपूर्णता' है।
6. आठ कारक हैं - कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन।

'नदियाँ सूख गईं।' इसके संघटन में दो व्याकरणिक इकाइयाँ हैं–'नदियाँ' और 'सूख गईं'– जो क्रमश: 'उद्देश्य' व 'विधेय' अथवा *'संज्ञा (पदबंध)'* व *'क्रिया (-पदबंध)'* कहलाती हैं। उक्त वाक्य को कुछ विस्तारित करते हैं —

1. 'बहुत-सी नदियाँ धीरे-धीरे सूख गईं।'
2. 'दुनिया की बहुत-सी नदियाँ प्रदूषण की मार झेलते, धीरे-धीरे सूख गईं।'

विस्तारित वाक्य (1) में 'नदियाँ' पद/पदबंध का विशेषक 'बहुत-सी' आया है और 'सूख गईं' पद/पदबंध का विशेषक 'धीरे-धीरे' आया है। अगले वाक्य में 'प्रदूषण की मार झेलते'– इतना अंश 'सूख गईं' का विस्तारक है तथा 'दुनिया की' अंश 'नदियाँ' का विस्तारक। वाक्य-रचना की ऐसी प्रवृत्तियाँ प्राय: हर भाषा में संभव हैं।

भाषाओं में सार्वभौम तत्वों की किसी मात्रा में उपलब्धि का अभिप्राय यह कतई नहीं कि उनके पारस्परिक विभेदक लक्षणों या विलक्षणताओं को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए। वस्तुत: सार्वजनीन अभिलक्षणों से कई गुना अधिक जो विभिन्नताएँ भाषाओं के बीच प्राप्त हैं–वे भाषाध्ययन के लिए महत्वपूर्ण ध्यातव्य तथ्य है। उन्हीं पर एक-एक भाषा की अलग सत्ता मानी गई है। भाषाविज्ञान के पारिवारिक वर्गीकरण में एक ही परिवार में रखी गई कई भाषाओं में भी 'समानता' से अधिक 'विभिन्नता' के तत्व मिल जाते हैं। भाषा के कुछ मूलधन होते हैं, जिनके अलगाव से भाषा का अलगाव सुनिश्चित होता है। जैसे– 'अंग्रेज़ी' और 'हिंदी' अलग-अलग भाषाएँ इसलिए हैं, क्योंकि इनमें क्रियाएँ अलग-अलग होती हैं। एक में खाने के अर्थ में यदि एक क्रियापद 'इज़ ईटिंग' है, तो दूसरी में 'खा रहा/रही है' है। एक में सर्वनाम 'I (आई)' है, तो दूसरी में 'मैं'। एक में संख्यावाचक 'वन' है, तो दूसरी में 'एक'। **पं. किशोरीदास वाजपेयी** के अनुसार **सर्वनाम, संख्यावाचक शब्द, क्रियापद, विभक्ति/परसर्ग, प्रत्यय और अव्यय– ये भाषा के मूलधन हैं।**[7] इन्हीं पर किसी भाषा की निजता सर्वाधिक टिकी रहती है। ये किसी भाषा में उधार नहीं लिए जाते, आयातित नहीं होते; बल्कि उस भाषा के अपने विकास होते हैं (खासकर प्रथम चार)।

भाषाओं की आकृति व प्रकृति में विभिन्नता या विलक्षणता की इतनी ठोस बहुलता है कि किसी ऐसे व्याकरण का बनना आसान नहीं है, जो सार्वभौम मूल व्याकरणिक ढाँचे की बाह्य और अलग-अलग परिणतियाँ हैं। चॉम्स्की के व्याकरणिक संप्रदाय का दावा है

7. **भाषा के मूलधन** की अवधारणा सर्वप्रथम पं. किशोरीदास वाजपेयी (1898-1981) ने रखी, पर उनका विवरण देते समय वाजपेयी जी का ध्यान कदाचित् अयोगात्मक भाषाओं पर न गया, जिनमें परसर्ग/विभक्ति या प्रत्यय जैसे व्याकरणिक तत्व नहीं होते, भले सर्वनाम, संख्यावाचक, क्रिया/धातु, अव्यय आदि कोटियाँ हो लें। उनमें अर्थ के स्तर पर कारक जैसे तत्व अंतर्भुक्त होते हैं, पर उनके प्रकाशक विभक्ति-तत्व नहीं होते।

कि वह किसी भी भाषा के व्याकरण-संबंधी नियम बहुत ही संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सकता है, क्योंकि भाषा के मूलभूत तत्व/नियम थोड़े से ही होते हैं। उन्हीं में पूरी भाषा की व्याख्या संभव है। उन्हीं सीमित नियमों के ज़रिये (रूपांतरण के द्वारा) व्यक्ति असीमित व अनंत प्रकार की वाक्य-संरचनाएँ प्रजनित कर सकता है।

चॉम्स्की भाषा को इंसान का जन्मजात (इनेट) गुण मानते हैं। उनके मत से जन्म के समय बच्चे का मानस कोरा नहीं होता, सहजात वृत्तियों (इनेट पॉवर) से युक्त रहता है। इसी के बल पर बच्चा अपने वातावरण में फैले (शैली व संरचना की) विविधता से भरे नाना भाषा-व्यवहारों/वाक्यों के भीतर से सरल वाक्य-प्रारूप (बीज-संरचना) या सामान्य ढाँचे यानी निर्विशेष नियमों से परिचित होता है। भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों पर भी खरा उतरे। चॉम्स्कीय संप्रदाय का भी मानना है कि अभी ऐसा व्याकरण संभव नहीं। जो बच्चे की भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता हो समझ सके। किसी-किसी भाषा के सीमित संदर्भों में भले न्यूनतम सूत्र अथवा न्यूनतम (आंतरिक) संरचना की अवधारणा सही ठहर जाए, पर पूरी भाषा पर अथवा दुनिया की सारी भाषाओं पर यह अभी पूर्णतया लागू नहीं हो सकी है। हाँ, अर्थ/चेतना के धरातल से संबंध रखने वाली थोड़ी-सी भाषिक विशेषताएँ/अभिलक्षण सार्वभौम लगते हैं, जिनकी चर्चा आलेख में यथास्थान की गई है। अर्थ या उससे संबद्ध कुछ अवधारणाओं (जैसे– कारक, वचन) के तल पर ही भाषा में सार्वभौम तत्वों की स्थिति मान्य है, रूप के धरातल पर नहीं। न्यूनतम सूत्रों से दुनिया की तमाम भाषाओं की बात तो छोड़िए, किसी एक भाषा की भी बहुल-जटिल संरचना का विवेचन कर लेने की बात अभी संभव नहीं हुई है, पर यह एक आकर्षक संभावना ज़रूर है। इसका आधार यह है कि दुनिया की किन्हीं दो भाषाओं के वाक्य-प्रयोग या बाह्य संरचना में भले बहुलता से विभेद दिखें, किंतु उनके भीतर जाने पर, आंतरिक ढाँचे (अवधारणात्मक/आर्थी धरातल पर) में एकसमान तत्व विद्यमान दिखेंगे।

4.2.2 वाक्य-विज्ञान

भाषा-प्रयोग मूलत: वाक्यात्मक होता है

पीछे हम यह जान चुके हैं कि शब्द का बोध्य 'अर्थ' कई बार एक-एक वस्तु का रूप न होकर, पूर्ण अभिप्राय (विचार/भाव) के रूप में भी होता है। आगे बॉक्स में जो उद्धरण है, उसमें वक्ता व श्रोता आमने-सामने हैं और भाषिक प्रयोग का रूप 'संलाप' (बातचीत) का है। इस प्रयोग में आए *'अच्छी', 'कैसे' व 'नहीं'* शब्द (पद) वाक्य-स्तरीय अर्थ देते हैं। 'अच्छी' का अर्थ संदर्भ-निरपेक्ष 'अच्छी' मात्र नहीं है, बल्कि *'स्त्री की स्थिति आज अच्छी है'* का एक पूरा अर्थ देता है यह पद। इसी तरह, किसी संलाप या एकमुखी कथन में आए *'जा', 'उठ', 'गया', 'पधारिए'* आदि एकाकी पद भी वाक्य-स्तरीय अर्थ

— स्त्री की स्थिति आज कैसी है?
— *अच्छी।*
— बिलकुल अच्छी?
नहीं, पहले से अच्छी।
— कैसे?
— *आज इतनी बड़ी संख्या में हर तरह के क्षेत्र में व्यक्तित्व-संपन्न स्त्रियाँ दिख रही हैं। क्या पहले था ऐसा?*
— नहीं।

देते हैं। *कौन पढ़ रहा है? क्या खरीद लाए ? रमेश क्या बना रहा है? सामने क्या है?* इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में सुनाई पड़ने वाले 'सलमा', 'किताब', 'चावल', 'गाय' आदि भी वाक्य-स्तरीय अर्थ देते हैं। इसके साथ, जब हम किसी को संबोधित करते हैं (रजनी!, डेविड ! आदि), तो संबोधित पद एक वाक्य का अर्थ देता है, जिसका बोध्य यह भाव होता है कि *"(ओ रजनी/ डेविड !) मैं तुझसे कुछ कह रहा हूँ, वह सुनो"* या *"मैं तुझ पर खुश/ नाराज़ हूँ"* आदि। इसी तरह अभिवादन के प्रसंग में *'प्रणाम', 'नमस्ते', 'आशीष'* आदि कहना भी पूरे वाक्य का अर्थ ("मैं नमस्ते कर रहा/ रही हूँ।" आदि) देता है।[8]

इन वाक्यों के संदर्भ में हम सहज ही समझ सकते हैं कि संप्रेषण के लिए हम कोई भी 'पद' या शब्द प्रयुक्त करें, वह अर्थ के लिहाज़ से वाक्यात्मक ही होता है, क्योंकि वक्ता के मन में उसके प्रयोग के समय उस पद के आगे-पीछे एक समग्र-अर्थमय संदर्भ होता है, जिसका बोध कराने के लिए ही वक्ता वह अकेला पद बोलता है। उसी कारण, श्रोता भी उस एकाकी पद को एक वाक्यगत अर्थ में ग्रहण भी कर पाता है।

भाषाविज्ञान के एक सिद्धांत के अनुसार[9] इंसान की अभिव्यक्ति की न्यूनतम सार्थक इकाई वाक्य ही है, क्योंकि वह वाक्यों में ही सोचता है और अपनी मानसिक प्रक्रिया को

8. इस तरह के अकेले पद जो वाक्यपरक अर्थ देते हैं, जबकि संरचना की दृष्टि से ये वाक्य लगते नहीं या अधूरे वाक्य होते हैं; अध्याहृत वाक्य कहलाते हैं। 'अध्याहार' से बना है 'अध्याहृत' शब्द। 'अध्याहार' शब्द का अर्थ है– न्यूनपदता (वाक्य-रचनार्थ आवश्यक पदों की कमी) को पूरा करना, यानी अप्रकट पदों को वाक्य में प्रकट करना। भाषा की प्रयुक्ति का संदर्भ सामाजिक होता है। समाज-चित्त में विराजमान 'मानसिक भाषा' में स्वत: स्पष्ट कई चीज़ें हम अपने भाषिक प्रयोग में न लाकर अध्याहार कर लेते हैं। इससे श्रम की बचत तो होती ही है, पर उसके साथ हम अपनी वाणी के संयम व गौरव का भी परिचय देते हैं।

9. भाषाविज्ञान के 'स्फोट सिद्धांत', मीमांसकों के 'अन्विताभिधानवाद' तथा आधुनिक भाषाविज्ञान के मतानुसार, भाषा-आधारित जो संप्रेषण-व्यवस्था है, उसकी लघुतम इकाई वाक्य ही है। भर्तृहरि ने स्पष्ट कहा है कि जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते, उसी प्रकार पदों में वर्ण या वाक्य में पद नहीं होते–

पदे न वर्णा विद्यंते वर्णेष्वयवयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यंत प्रविवेको न कश्चन।। – (वाक्यपदीय, ब्रह्मकांड, 73)

आवश्यकता व इच्छा के अनुसार 'वाक्य' के रूप में ही अभिव्यक्त करता है–चाहे वाक्य एक पद का ही क्यों न हो; चाहे वह अनेक पदों का हो (या अनुच्छेद भर का, यानी **'प्रोक्ति'**[10] का रूप)। यानी, भाषिक व्यवहार या संप्रेषण की न्यूनतम इकाई 'वाक्य' से कम हो ही नहीं सकती। वाक्य से नीचे उतरने पर अर्थ की समग्रता ही खंडित हो जाती है।

यही मानना संगत है कि शब्दों/पदों को जोड़ने से वाक्य नहीं बनता, बल्कि 'वाक्य' (मन:स्थ भाषा के उपादानों से) मानसिक-प्रक्रिया के रूप में एकीकृत-अखंड स्वरूप में आकार लेता है। हाँ, उसका विश्लेषण करने के लिए हम उसे **पदबंधों** (**Phrase**), पदबंधों को पदों में विभक्त करते हैं, फिर पदों में से **रूप** (**Morph**), फिर उनमें से **अक्षर** (**Syllable**) और अंत में उनमें से **वर्ण**/ध्वनियाँ निकालकर दिखलाते हैं।

4.2.3 प्रोक्ति

यह ठीक है कि भाषा मूलत: वाक्यात्मक होती है और संप्रेषण/चिंतन 'वाक्य' से छोटे स्तर पर उतर कर संभव नहीं। फिर भी, ***'वाक्य' संप्रेषण-व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई है, यद्यपि वह 'वाक्य' व्याकरणिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई है।*** 'वाक्य' से अभिप्राय अकसर पूरा नहीं होता। जैसे–उपर्युक्त उद्धरण में आए वाक्य 'स्त्री की स्थिति आज कैसी है?' या 'नहीं, पहले से अच्छी।' अथवा 'बस रुक गई' जैसे कोई भी वाक्य अर्थ-द्योतन की दृष्टि से पूर्ण नहीं। पूरा अर्थ 'वाक्य' से बड़ी इकाई 'प्रोक्ति' से ही संभव है। ऊपर के बॉक्स में आया उद्धरण ('स्त्री की स्थिति... नहीं।') प्रोक्ति का ही रूप है। प्रोक्ति वाक्यों की सुसंबद्धता से रचित, संप्रेषण की दृष्टि से पूर्ण भाषिक इकाई है। परंतु, 'प्रोक्ति' का भेदक लक्षण है- पूरा अर्थ/अभिप्राय व्यक्त करने की क्षमता। अगर वह हो जाता है, तो 'वाक्य-बंध' ही नहीं, अकेला वाक्य भी 'प्रोक्ति' है। जैसे–'समय हर घाव को भर देता है।' यह अनुभव-प्रसूत, सार्वभौम सत्य है। यह अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है। यह 'प्रोक्ति' ही है। जितनी लोकोक्तियाँ हैं, सभी 'प्रोक्ति' के उदाहरण हैं। जैसे– 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा।' या 'बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद!' 'प्रोक्ति' एक छंद, अनुच्छेद, नाटकीय

10. उस प्रकार की संरचना को प्रोक्ति (डिसकोर्स) कहते हैं, जो किसी किसी संदर्भ में अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो। 'प्रोक्ति' की अवधारणा भारत के लिए बिलकुल नयी नहीं है। विश्वनाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में 'महावाक्य' की बात कही है–'वाक्योच्चयो महावाक्यम्'– यानी, एक के ऊपर एक चुने हुए वाक्यों का संगुंफन महावाक्य है, जो संरचना के स्तर पर 'अंगांगिभाव' से जुड़ कर एक इकाई बन जाते हैं। स्पष्ट है कि यह किसी-न-किसी रूप में 'प्रोक्ति' की ही बात है।

> *तर्कपूर्ण क्रमयुक्त और आपस में आंतरिक रूप से सुसंबद्ध, एकाधिक वाक्यों की ऐसी व्यवस्थित इकाई को प्रोक्ति कहते हैं, जो संदर्भ-विशेष में अर्थद्योतन की दृष्टि से पूर्ण हो।*
>
> *— डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान*

दृश्य/अंक, एकांकी, कहानी, निबंध, उपन्यास/महाकाव्य के एक अध्याय/सर्ग से लेकर पूरे खंड काव्य/ महाकाव्य या उपन्यास स्तर तक की हो सकती है। एक कविता या उसका एक अंतरा भी अर्थ की दृष्टि से पूर्ण होने पर 'प्रोक्ति' कहला सकता है। जैसे– नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' एक प्रोक्ति है– उसके दोनों अंतरे भी अलग-अलग प्रोक्ति ही हैं। पहले से अकाल का पूरा परिदृश्य व्यंजित हो रहा है। दूसरे से वह उल्लास पूरा-पूरा अभिव्यक्त हो रहा है, जो इस भीषणता में अन्न के मिलने पर जगता है। 'प्रोक्ति' यदि वाक्य-बंध है तो घटक वाक्यों/अध्याहृत वाक्यों का आंतरिक तल पर समन्वित होना अनिवार्य है। बाह्य तल पर उनका समन्वय अनिवार्य नहीं है। जैसे–"पूरब के आसमान में हल्का उजाला हुआ। एक मुर्गे ने बाँग दी। दो-चार लोगों को गाँव से नदी की ओर जाते देखा। मेरी भी नींद पूरी हो चुकी थी। मैं उठकर छत पर ही टहलने लगा।"–ये पाँचों वाक्य

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद।
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद।
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद।
कौए ने खुजलायी पाँखें कई दिनों के बाद।

— नागार्जुन

ऊपर से अलग-अलग दिखते हैं, किंतु अलग-अलग बिंबों द्वारा ये एक ही बात की अनुभूति करा रहे है–'भोर हो रही है।' ये वाक्य आंतरिक तल पर इसी बात से संबद्ध हैं। इस प्रकार यह एक प्रोक्ति है।

वाक्य की संरचना

वाक्य व्याकरणिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई है। किसी वाक्य की संरचना के लिए कम-से-कम दो संरचक इकाइयाँ (घटक) अनिवार्य हैं। पहला है 'उद्देश्य' (Subject), दूसरा है 'विधेय' (Predicate)।

'लड़की पढ़ती है।'

इस वाक्य में दो प्रकार्यात्मक इकाइयाँ हैं–

(i) 'लड़की' (ii) 'पढ़ती है'।

अर्थ की दृष्टि से विचार करें, तो वाक्य में कुछ कहा जा रहा है और किसी के विषय में कुछ कहा जा रहा है। जिसके बारे में कहा जा रहा है, वह है 'लड़की'–पहली इकाई; उसके बारे में जो कहा जा रहा है, वह है–'पढ़ती है'–दूसरी इकाई। पहली को 'उद्देश्य' और दूसरी को 'विधेय' कहते हैं। आज के भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन्हें क्रमश: **'संज्ञा-पदबंध'** और **'क्रिया-पदबंध'** कह सकते हैं।

वाक्य-रचना के लिए न्यूनतम या मूलभूत प्रारूप इन्हीं के मेल से[11] बनता है। इस प्रकार के लघुतम (पर, व्याकरणिक संरचना में पूर्ण) वाक्य-ढाँचे को **'बीज वाक्य'** कहते हैं। इसके दोनों संरचकों के विस्तार से, वाक्य आकार की दृष्टि से उसी तरह फैल सकता है, जिस तरह बीज से क्रमश: वृक्ष बनता है। जैसे–

(1) *आज की लड़की/ मन लगाकर पढ़ती है।*

(2) *गाँव में भी रह रही आज की लड़की/आत्मनिर्भर होने के लिए मन लगाकर हर तरह के कोर्स पढ़ती है।*

उक्त (2) तक आते-आते 'लड़की' एवं 'पढ़ती है'– इन दो छोटी इकाइयों का कितना विस्तार हो गया ! इन्हें विस्तारित करने के लिए कई और इकाइयाँ इनमें आ-आ कर जुड़ती गईं। 'गाँव में भी रह रही' एक इकाई है, 'आज की' दूसरी इकाई है। इन्होंने 'लड़की' इकाई

11. कभी ऐसा हो सकता है कि वाक्य अध्याहार-रूप हो, जिसमें 'उद्देश्य' व 'विधेय' में से एक ही प्रत्यक्ष हो और दूसरा अध्याहृत हो। जैसे- 'जाओ।' इस वाक्य में 'तुम' छुपा हुआ है। 'उद्देश्य' और 'विधेय' में से जो भी केंद्रीय अंश होता है, उसी का भाषण या प्रयोग करते हुए वक्ता शेष को ग्रहीता की मनस्थ भाषा में मौजूद जानकर छोड़ देता है।

सकर्मक क्रिया की स्थिति में, न्यूनतम तत्वों में एक 'कर्म' भी आ जाता है, भले वह अध्याहृत हो। जैसे–सोहिनी फल खाती है। सुधाकर खाता है। दूसरे वाक्य में कर्म छुपा हुआ है। गत्यर्थक क्रिया सकर्मक मानी भी जा सकती है, नहीं भी। जैसे–वह गया। वह स्कूल गया।– इसलिए 'कर्म' को यहाँ अनिवार्य घटक माना भी जा सकता है, नहीं भी।

वाक्य किसी घटना या विचार को प्रकट करने में समर्थ न्यूनतम भाषिक इकाई को कहते हैं, जो पद या परस्पर साकांक्ष (अन्वित) पद-समूह के रूप में दृश्यमान हो तथा जिसमें प्रकट या अप्रकट एक (समापिका) क्रिया-पद अवश्य रहे।

(उद्देश्य) को विस्तारित किया। इस क्रम में 'आज की लड़की' पहली विस्तारित इकाई बनी, फिर 'गाँव में लड़की' दूसरी विस्तारित इकाई। यह पूरा अंश विस्तारित 'उद्देश्य' है। 'पढ़ती है'–इस इकाई का पहला विस्तार 'मन लगाकर'– इस इकाई से हुआ, फिर इसमें 'आत्मनिर्भर होने के लिए' तथा 'हर तरह के कोर्स'– ये दो इकाइयाँ जुड़ीं। 'आत्मनिर्भर... पढ़ती है'– यह पूरा अंश विस्तारित 'विधेय' है। स्पष्ट है कि उक्त वाक्य (2) में प्रकार्य की दृष्टि से इतनी इकाइयाँ मौजूद हैं —

(i) गाँव में भी रह रही (ii) आज की लड़की (अथवा, 'आज की' और 'लड़की'–ये दो इकाइयाँ) (iii) आत्मनिर्भर होने के लिए (iv) मन लगाकर (v) हर तरह के कोर्स (अथवा, 'हर तरह के' और 'कोर्स'– ये दो इकाइयाँ) (vi)) पढ़ती है।

इन इकाइयों से एक-एक प्रकार्यात्मक कोश बना है। ऐसे कई कोशों के घटन से वाक्य आकार लेता है। इन इकाइयों को **'पदबंध'** कहते हैं। वाक्य अखंड इकाई है, परंतु लोक-व्यवहार या भाषा के स्पष्टीकरण के लिए उसे इन प्रकार्यात्मक कोशों के मेल के रूप में पहचानना होता है। परंपरागत भारतीय चिंतन में *वाक्य की* मूलभूत *सार्थक इकाइयाँ* ***'पद'*** हैं, जिनसे या जिनके मेल के रूप में वाक्य की सत्ता है। आधुनिक दृष्टि से वाक्य की वे इकाइयाँ 'पदबंध' हैं। इस दृष्टि से, वाक्य को पदबंधों में, फिर पदबंधों को पदों में विश्लेषित करना होगा। यानी, वाक्य में 'पदबंध' ही प्रयुक्त होते हैं; हाँ कभी ऐसा भी हो सकता है कि वह पदबंध अनेक पदों से संघटित न होकर एक-पदात्मक ही हो। जैसे– पूर्वोक्त वाक्य (*'लड़की पढ़ती है।'*) में 'लड़की' एक पद है, जो पदबंध भी है।

वाक्य-संघटन के लिए अपेक्षित तत्व

वाक्य के संरचक घटक भारतीय भाषा-दर्शन के अनुसार 'पद' हैं। *'पद' लघुतम स्वतंत्र सार्थक इकाई है, फिर भी वाक्य के सापेक्ष (पूरा अर्थ देने की दृष्टि से) उसकी स्वतंत्रता नहीं होती।* वह वाक्य का अंग, उसका संरचक/घटक बनकर ही सार्थक होता है। भाषा का उपयोग भाव या विचार की अभिव्यक्ति के लिए होता है और अभिव्यक्ति वाक्य से ही संभव है, पद से नहीं। (वैसे पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए तो हमें वाक्य से भी ऊपर **'प्रोक्ति'**

तक जाना पड़ता है)। पदों को आपस में अन्योन्याश्रय संबंध में बाँधने वाले कुछ तत्व हैं, जो वाक्य को संभव बनाते हैं। ये हैं —

(i) आकांक्षा (ii) आसत्ति (शब्द/पद-क्रम) (iii) योग्यता (अन्वय)

वाक्यस्थ पदों की अर्थ की दृष्टि से परस्पर उत्सुकता को **'आकांक्षा'** कहते हैं। यह उत्सुकता अर्थ-संबंधी उनके अधूरेपन की देन है। एक 'पद' पूरा अर्थ देने में असमर्थ होता है, इसलिए वह अन्य पदों की सहायता लेता है ताकि 'वाक्य' बने और पूरा अर्थ संप्रेषित हो जाए। जैसे–'महँगाई बढ़ रही है'–वाक्य न बोल कर केवल 'महँगाई' कहें, तो आकांक्षा जगेगी। 'महँगाई' क्या? जब तक अन्य पद 'बढ़ रही है' का संयोग नहीं होगा, तक तक आकांक्षा का निवारण न होगा। आकांक्षा की पूर्ति या सिद्धि के लिए **'कारक'** वाक्य-संरचना के धारक के रूप में आते हैं। साथ ही, यह भी बात है कि 'आकांक्षा' की सिद्धि तब तक समुचित रूप से नहीं हो सकती, जब तक 'आसत्ति' न हो। जैसे —

"सरिता को तोहफ़े के रूप में कमर ने खिलता फूल दिया।"

इस वाक्य को सुन/पढ़ कर ग्रहीता को अर्थ-बोध में कुछ बाधा-सी प्रतीत होती है। इसका कारण है– यहाँ 'आसत्ति' (शब्द/पद-क्रम) बाधित है। होना चाहिए–

"कमर ने तोहफ़े के रूप में सरिता को खिलता फूल दिया।"

अब वाक्य में निकटस्थ अवयवों का क्रम ठीक हो गया और अर्थ-बोध निर्बाध होने लगा। हर भाषा की अपनी प्रकृति होती है, जिसके तहत उसके वाक्यों में शब्दों/पदों का एक निश्चित सामान्य क्रम होता है। (जैसे–हिंदी में सामान्यत: **'कर्ता + कर्म + क्रिया'** का क्रम रहता है।) इसके पीछे भाषिक समुदाय-विशेष की भाषायी आदत व संस्कृति का योग रहता है। लक्ष्यान्वित (मार्कड) वाक्यों में इस 'सामान्य क्रम' में उलट-फेर भी संभव है। ऐसे वाक्य किसी विशेष प्रयोजन से किसी खास चीज़ पर बल देने हेतु आते हैं। (जैसे–काव्यात्मक या अनौपचारिक संदर्भ में इस क्रम का अतिक्रमण दिखता है।) इस परिवर्तन के साथ 'अनुतान' व 'बलाघात' में भी अपेक्षित परिवर्तन आता है, जिससे वाक्य के अर्थ को अपेक्षित दिशा में मोड़ा जाता है।

तबस्सुम कॉलेज गई थी।*[सामान्य क्रम]*– वाक्य का आशय सीधा है, तबस्सुम के कॉलेज जाने की सूचना दे रहा है।

कॉलेज तबस्सुम गई थी। रेखांकित हिस्से पर बल उत्पन्न। आशय हो गया, कॉलेज कोई अन्य नहीं, तबस्सुम गई थी।

कॉलेज गई थी तबस्सुम। अब बल बदल गया। आशय हो गया, तबस्सुम कॉलेज ही गई थी, अन्यत्र नहीं।

इस वाक्य में पदक्रम निम्न तरीकों से भी बदल सकते हैं, जिनसे **बलाघात** की जगह **अनुतान** बदलेगा। जैसे —

गई थी कॉलेज तबस्सुम।

गई थी तबस्सुम कॉलेज।

इन पाँचों वाक्यों की पद-संपदा बराबर है, पर क्रम के हेर-फेर से अर्थ में सूक्ष्म अंतर आ रहा है। फिर भी ऐसा नहीं हुआ कि इस परिवर्तन से पदों का व्याकरणिक वर्ग बदल गया। 'तबस्सुम' संज्ञा/कर्ता, 'कॉलेज' संज्ञा/कर्म और 'गई थी' क्रिया है–हर स्थिति में। परंतु, अयोगात्मक भाषाओं[12] (जैसे– चीनी) में शब्द-क्रम का इतना महत्व है कि एक ही शब्द स्थान-भेद से संज्ञा, विशेषण, क्रिया कुछ भी हो सकता है। हिंदी में भी यदा-कदा ऐसा हो जाता है–

"बाघ हिरन मारता है।" (बाघ कर्ता। वह हिरन का शिकार करता है।)

"हिरन बाघ मारता है।" (हिरन कर्ता। वह बाघ का शिकार करता है।)

फिर भी, कह सकते हैं कि **कारक-चिह्नों** के प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित रहने के कारण हिंदी में पद-क्रम काफ़ी हद तक मुक्त (फ्री) होता है। यानी, प्रयोजन के अनुसार हम उसमें परिवर्तन कर सकते हैं। यह विशेषता हिंदी के साथ उसकी सगी भाषाओं (ब्रज, अवधी, मैथिली आदि) में भी है। अयोगात्मक भाषाओं में यह नहीं हो सकता।

'योग्यता' वाक्य-रचना हेतु सबसे आवश्यक तत्व है। कारण स्पष्ट है। एक पद वाले वाक्य में 'आकांक्षा' या 'आसत्ति' (पद-क्रम) का सवाल ही नहीं उठता, परंतु 'योग्यता' तो उसमें भी रहती है। 'योग्यता' के दो अर्थ हैं–

(i) वाक्यगत पदों का व्याकरणिक अन्वय ठीक-ठीक रहना।

(ii) उस अन्विति में एक सुसंगत अर्थ की प्रतीति होना।

दूसरा तो एक-पदात्मक वाक्य के स्तर पर भी ज़रूरी है। हाँ, तब सुसंगत अर्थ की प्रतीति वाक्यगत अन्विति में नहीं है, बल्कि उस एक-पदात्मक वाक्य की अपने पड़ोसी वाक्यों से अन्विति के संदर्भ में। जैसे– *''सुधीर कहाँ गया?/– खाने।/ क्यों?/– भूखा*

12 अयोगात्मक भाषा— जिन भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति (व परसर्ग) आदि व्याकरणिक संबंधकारी तत्व नहीं होते और बिना इनके योग के वाक्यगत शब्दों के व्याकरणिक संबंध की रचना होती है, उन्हें अयोगात्मक भाषा कहते हैं। जैसे— चीनी, तिब्बती, स्यामी, अनामी, सुडानी आदि। इन भाषाओं में हर शब्द स्वतंत्र होता है तथा किसी शब्द से किसी शब्द की व्युत्पत्ति नहीं होती। वाक्य में शब्द–क्रम, सुर (टोन) तथा कहीं-कहीं स्वतंत्र संबंधसूचक अव्ययों के प्रयोग से वाक्यगत शब्दों की व्याकरणिक कोटि या उनके व्याकरणिक संबंध का बोध होता है।

योगात्मक भाषा— जिन भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति (व परसर्ग) आदि व्याकरणिक तत्वों से वाक्यगत शब्दों के व्याकरणिक संबंध की रचना होती है, उन्हें योगात्मक भाषा कहते हैं। जैसे— संस्कृत, फ़ारसी, तुर्की, रूसी, अंग्रेज़ी, हिंदी, संथाली आदि।

था।'' इस संलापनुमा भाषिक संरचना में चार वाक्य हैं; पहला पूर्ण वाक्य है, शेष **अध्याहृत** (अपूर्ण)। दूसरा एकपदीय वाक्य 'खाने' पर विचार करें, तो स्पष्ट है कि इसकी सार्थकता है। सार्थकता पहले वाक्य के प्रश्न के उत्तर के रूप में है। यदि उसकी जगह तीसरा ('क्यों?') या चौथा ('भूखा था।') वाक्य रख दें तो सार्थकता नष्ट हो जाएगी। इसी को व्याकरण में कहेंगे–'योग्यता' का अभाव हो जाना। "लड़के खेलेगी'' या "तू ने सो रही हो'' वाक्य प्रथम तरह की 'योग्यता' से रहित हैं और "किताब कंकड़ सोती है'' जैसे वाक्य दूसरे तरह की योग्यता से रहित हैं।

"लड़के खेलेगी" में लिंग और वचन संबंधी अन्विति का पालन नहीं किया गया। सही रूप होगा–''लड़के खेलेंगे।'' इसी तरह "तू ने सो रही हो" में कई तरह की व्याकरणिक अन्वितियाँ टूटी हैं। यहाँ कर्ता (तू) 'ने' परसर्ग से रहित होना चाहिए था, क्योंकि क्रिया का काल भूत नहीं, वर्तमान (तात्कालिक) है। फिर, कर्ता 'तू' मध्यम पुरुष एक वचन का है, अत: 'हो' सहायक क्रिया नहीं होगी, जो मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप है। यहाँ अपेक्षित रूप होगा– 'है'। इस तरह सही वाक्य होगा–''तू सो रही है।''

अन्वय के दो स्तर हैं —

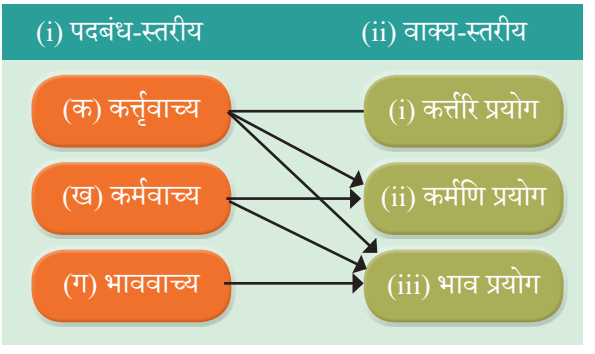

'विशेष्य' के अनुसार 'विशेषण' के लिंग, वचन (या विभक्ति) का होना **पदबंध-स्तरीय अन्वय** में आएगा। जैसे– सच्ची बात, अच्छे लड़के। इसी तरह क्रिया पदबंध में मुख्य क्रियांश और रंजक क्रियांश का अन्वय भी पदबंध-स्तरीय है। जैसे–''नलिनी बोल पड़ी।''– में मुख्य क्रियांश 'बोल' और रंजक क्रियांश 'पड़ी' का अन्वय पदबंध-स्तरीय है।

'कारक' और 'वाच्य' वाक्य-स्तरीय अन्वय के क्षेत्र हैं

वाक्य में मुख्य अन्वय तो **उद्देश्य** (कारक-पदबंध) और **विधेय** (क्रिया पदबंध) का ही होता है। इस संबंध की व्याख्या 'कारक' व 'वाच्य' प्रकरण में होती है। कारकों में से 'कर्ता' या 'कर्म' वाक्य में उद्देश्य बनते हैं– कर्तृवाच्य में कर्ता, कर्मवाच्य में कर्म। वाक्य में 'क्रिया' लिंग, वचन या पुरुष की दृष्टि से 'कर्ता' या 'कर्म' का ही अनुसरण करती है। जैसे–

"चारुमित्रा सारंग को पढ़ाती है ।"	कर्ता 'चारुमित्रा' अन्य पुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन का है, तदनुसार क्रिया है ।
"हम सब रोटियाँ बेलते रहे ।"	कर्ता 'हम सब' के पुरुष-लिंग-वचन के अनुसार क्रिया
"नैन्सी ने साइकिलें खरीदीं ।"	कर्म 'साइकिलें' के लिंग-वचन के अनुसार क्रिया
"रोहित के द्वारा मैं दबाया गया ।"	कर्म 'मैं' के पुरुष-लिंग-वचन के अनुसार क्रिया

इन वाक्यों का विश्लेषण करने से एक महत्वपूर्ण बात यह भी सामने आती है कि कोई ज़रूरी नहीं कि 'विधेय' (क्रिया) के लिंग-वचनादि 'उद्देश्य' के अनुसार ही होंगे। जैसे– तीसरे वाक्य में उद्देश्य 'नैन्सी ने' है– एकवचन में, पर क्रिया बहुवचन में है 'कर्म' 'साइकिलें' के अनुसार। 'क्रिया' लिंग-वचन या पुरुष की दृष्टि से कर्ता व कर्म में से किसका अनुसरण करती है– यह एक बात है और 'क्रिया' वाक्यस्थ 'कर्ता' या 'कर्म' में से किसे अभिव्यक्त करती है, किसके प्रयत्न को करती है अथवा वाक्य के वक्ता की दृष्टि में किसे महत्व दिया जा रहा है– यह दूसरी बात है। दोनों बिलकुल अलग-अलग चीज़ें हैं। पहले का संबंध **'प्रयोग'** नामक अवधारणा से है, दूसरे का 'वाच्य' से। हिंदी में तीन **'वाच्य'** और तीन 'प्रयोग' हैं– '(क)' में (i), (ii) व (iii) तीनों आते हैं। '(ख)' में (ii) व (iii) आते हैं। '(ग)' में केवल स्थिति '(iii)' आती है। जैसे —

रोज़ी कंप्यूटर चलाती है ।	कर्त्तृवाच्य-कर्तरि प्रयोग
गुलशन ने कार खरीदी ।	कर्त्तृवाच्य-कर्मणि प्रयोग
मैरीकॉम ने कुक्केबाज़ी में सबको पछाड़ा ।	कर्त्तृवाच्य-भावे प्रयोग
महादेवी वर्मा के द्वारा 'शृंखला की कड़ियाँ' पुस्तक लिखी गई ।	कर्मवाच्य-कर्मणि प्रयोग
स्तनपान से बच्चों को पर्याप्त पोषित नहीं किया जाता ।	कर्मवाच्य-भावे प्रयोग
हमसे आया न गया, तुमसे बुलाया न गया ।	भाववाच्य-भावे प्रयोग

'कर्तरि प्रयोग' में क्रिया कर्ता के अनुसार, 'कर्मणि प्रयोग' में 'कर्म' के अनुसार तथा 'भावे प्रयोग' में इनसे स्वतंत्र (सदा अन्यपुरुष- पुलिंग-एकवचन में) होती है।

अनुतान

वाक्य-रचना के क्रम में एक महत्वपूर्ण विचारणीय तत्व 'अनुतान' (Tone) भी है। स्वर-तंत्रियों के संचालन का अभ्यास करके इच्छित ऊँचाई-निचाई वाला उच्चारण करते हुए, कोई व्यक्ति अपने भाषा-प्रयोग में 'सुर' या 'अनुतान' पैदा कर सकता है। यह शब्द/पद-स्तर पर भी होता है; वाक्य-स्तर पर भी। सुर/अनुतान अर्थ-भेदक होता है। जैसे–

"लड़की ने आई.ए.एस. टॉप किया।"–सूचनात्मक

"लड़की ने आई.ए.एस. टॉप किया?"–प्रश्नवाचक

"लड़की ने आई.ए.एस. टॉप किया!"–विस्मयबोधक

इसी तरह, 'राम-राम' को शीघ्रता में बोलें, तो घृणासूचक अर्थ निकलता है, पर इन्हें खींच कर बोलते हैं, तो 'संबोधन/प्रणाम/अभिवादन' अर्थ निकलता है। यह भी वाक्यस्तरीय अनुतान ही है। वाक्य ('राम-राम') यहाँ अध्याहृत है। हिंदी में शब्द/पद-स्तरीय अनुतान नहीं होता। हर भाषा की अपनी विशिष्ट सुर/अनुतान-व्यवस्था होती है, जो उसके भाषिक और भाषा-भाषियों के सांस्कृतिक परिवेश से संबद्ध होती है।

कर्त्तृवाच्य में 'क्रिया' 'कर्ता' को वाचित करती है, कर्मवाच्य में 'कर्म' को। जैसे– उक्त पहले वाक्य में क्रिया *'चलाती* है।' कौन चलाती है?-'रोज़ी।' स्पष्ट है कि क्रिया की प्रतिबद्धता कर्ता के प्रति है। चौथे वाक्य में क्रिया है–'लिखी *गई*।' क्या लिखी गई?– 'पुस्तक' (कर्म)। स्पष्टत:, कर्मवाच्य में 'क्रिया' 'कर्म' के प्रति प्रतिबद्ध है। भाववाच्य की क्रिया किसी के प्रति न होकर अपने-आप में स्थित होती है।

संप्रेषणीयता सर्वोपरि

वाक्य-रचना के बारे में मुख्य रूप ध्यान देने की बात है– संप्रेषणीयता। भाषायी व्यवहार के उभयमुखी होने से इसके दो छोर हैं– वक्ता (लेखक) और श्रोता (पाठक)। वाक्य की संरचना पर सर्वाधिक प्रभाव इन्हीं दोनों की परस्पर-समझदारी और भावात्मक रिश्ते की प्रकृति का पड़ता है। दोनों के बीच समझ का सूत्र जितना मज़बूत और अनौपचारिक होगा, वाक्य उतने ही कसे व संक्षिप्त (अपूर्ण या अध्याहृत भी) होंगे —

(I) औपचारिक संदर्भ	(II) अनौपचारिक संदर्भ
आपका परिचय क्या है ?	आपका परिचय ?
मैं एक शिक्षक हूँ । और, आप कौन हैं ?	मैं एक शिक्षक । और, आप ?
मैं ही यहाँ की सरपंच हूँ ।	यहाँ की सरपंच ।
आप का क्या नाम है?	आपका नाम?
मेरा नाम छवि राजावत है । और, आपका क्या नाम है ?	छवि राजावत । और, आप का ?
मेरा नाम राजेश राजभर है ।	राजेश राजभर ।
आपको मुझसे कोई काम है ?	कोई काम ?
जी हाँ! आपसे मुझे एक काम है ।	जी ।
आपको मुझसे क्या काम है ?	क्या ?
मुझे स्कूल के लिए अनुदान चाहिए ।	स्कूल के लिए अनुदान

असली जीवन में अगर देखा जाए, तो (II) की तरह ही भाषायी व्यवहार अधिक होता है। इसमें आए अंश व्याकरणिक दृष्टि से अधूरे होकर भी संप्रेषण-व्यवस्था की दृष्टि से पूर्ण होते हैं । इसी से इनका दर्जा 'वाक्य' का ही है–'अध्याहृत वाक्य' । इस तरह, सुस्पष्ट है कि भाषा के मूल प्रयोजन 'संप्रेषण' (विचार/भाव-विनिमय एवं आपसी सहयोग) का पूरा होना सबसे बड़ी प्राथमिकता है, व्याकरणिक औपचारिकताओं का निर्वहन गौण वस्तु है। 'व्याकरण' तो हमारे भाषिक व्यवहार के आधार पर ही बनी वस्तु है । हमारा भाषिक व्यवहार प्राथमिक चीज़ है । भले 'व्याकरण' से वह अनुशासित भी होते रहता है, पर अंततः वह 'व्याकरण' पर बदलने, अपने अनुरूप होने का दबाव भी डालता है तथा उसमें सफल भी होता है । इसी का एक उदाहरण है, उक्त अपूर्ण / अध्याहृत वाक्यों को भी उसे 'वाक्य' का दर्जा देना पड़ा —

संरचना के अनुसार वाक्य के प्रकार

(क)	(ख) (1)	(ख) (2)
i. देखो! ii. तुम लिखो! iii. वह खाकर गया । iv. शिक्षा को बोझ मत बनाओ । v. पंचायत ने महिला को डायन घोषित कर उसकी जीभ काट डाली ।	i. अंधविश्वास मिटेगा, तभी जनता खुशहाल होगी। ii. यदि प्रकृति को सहशिक्षा स्वीकार्य न होती, तो लड़के- लड़कियाँ एक ही घर में नहीं जनमतें ।	i. भोर हुई और पंछी चहचहाए । ii. वह जाएगा कि तुम? iii. स्त्री को आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ रही है, इसलिए वह व्यक्तित्व,की लड़ाई क्या लड़ेगी!

इन वाक्यों में संरचना पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि '(क)' के वाक्यों में एक ही 'उद्देश्य' एवं एक ही 'विधेय' (समापिका क्रिया) है। जैसे–वाक्य '(क)-(iii)' में 'वह' उद्देश्य तथा '(खा कर) गया' विधेय है। वाक्य (i) अध्याहृत वाक्य है, जिसका उद्देश्य 'तुम' छुपा हुआ है। इस प्रकार के सभी वाक्य, जिनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक ही 'उद्देश्य' एवं एक ही 'विधेय' (समापिका क्रिया) हो, **सरल/एकात्मक** वाक्य कहलाते हैं।

उक्त '(ख)' के वाक्यों में यह स्थिति नहीं है, इसके सभी वाक्यों में एक से अधिक सरल वाक्यों का योग है। 'भोर हुई' एक सरल वाक्य है, 'पंछी चहचहाए' दूसरा सरल वाक्य है। इन दोनों को संयोजक अव्यय 'और' जोड़ कर एकीकृत कर रहा है। 'अंधविश्वास मिटेगा' और 'जनता खुशहाल होगी'–इन दो सरल वाक्यों को 'तभी' संयोजक अव्यय

वाक्य-प्रकार का एक रूपक

'सरल वाक्य' एक कमरे का मकान है। प्रवेशार्थ एक स्वतंत्र द्वार, स्वतंत्रता से खुलने वाली खिड़कियाँ आदि उसमें हैं।

'मिश्र वाक्य' एक ऐसा फ़्लैट है, जिसमें प्रवेशार्थ एक द्वार है, फिर प्रवेश-कक्ष के भीतर से दूसरे कमरों (शयन-कक्ष, स्नानागार आदि) में प्रवेश होता है। प्रवेश-कक्ष पर ही शेष कमरों की निर्भरता है, क्योंकि उनका अलग से कोई प्रवेश-द्वार नहीं है। बिना प्रवेश-कक्ष में घुसे उन तक पहुँचा नहीं जा सकता तथा प्रवेश-कक्ष के बिना उनका अस्तित्व संभव नहीं। फिर भी, मिश्र वाक्य-रूपी फ़्लैट का हर कमरा (उपवाक्य) अपने-आप में अपूर्ण ही है, चाहे वह मुख्य कक्ष (प्रवेश-कक्ष) हो या अन्य कक्ष। मुख्य कक्ष यहाँ 'मुख्य उपवाक्य' है। बाकी कक्ष 'आश्रित उपवाक्य'।

'संयुक्त वाक्य' एक ऐसा भवन है, जिसका हर कमरा अपना स्वतंत्र प्रवेश-द्वार रखता है, परंतु परस्पर-संबद्धता के बिना उनकी अपूर्णता है। कारण, उनमें से कोई शयन-कक्ष है, कोई रसोईघर, कोई शौचालय तो कोई ड्राइंग रूम या वाचनालय। इन सबकी संयुक्ति में ही भवन की सत्ता है। हर कमरा (उपवाक्य) उसमें समान महत्वपूर्ण है– कोई मुख्य या गौण नहीं। इन्हें खींच कर बोलते हैं, तो 'संबोधन/प्रणाम/अभिवादन' अर्थ निकलता है। यह भी वाक्यस्तरीय अनुतान ही है। वाक्य ('राम-राम') यहाँ अध्याहृत है। हिंदी में शब्द/पद-स्तरीय अनुतान नहीं होता। हर भाषा की अपनी विशिष्ट सुर/अनुतान-व्यवस्था होती है, जो उसके भाषिक और भाषा-भाषियों के सांस्कृतिक परिवेश से संबद्ध होती है।

एकीकृत कर रहा है। '(ख) (2)-(ii)' में 'वह जाएगा' सरल वाक्य है, 'तुम' अध्याहृत सरल वाक्य है ('जाओगे' छुपा हुआ है)–इन्हें 'कि' संयोजक जोड़ रहा है। इस तरह के वाक्य, जिनमें एकाधिक सरल वाक्य किसी संयोजक अव्यय द्वारा जुड़ कर एकीकृत हुए हों, **यौगिक/अनेकात्मक वाक्य** कहलाते हैं। यौगिक वाक्य के अंगीभूत हर वाक्य को **'उपवाक्य'** कहते हैं। जैसे– उक्त 'भोर हुई' एवं 'पंछी चहचहाए' उपवाक्य हैं।

'ख' के '(1)' के वाक्यों के उपवाक्यों में से एक मुख्य है और दूसरा उस पर आश्रित। [जैसे–'अंधविश्वास मिटेगा' मुख्य उपवाक्य है, 'तभी जनता खुशहाल होगी' आश्रित उपवाक्य है।] परंतु, '(ख)' के '(2)' के वाक्यों के उपवाक्य मुख्यता में समान ही हैं; उनमें कोई गौण नहीं है। [जैसे–'भोर हुई' भी उतना ही मुख्य है जितना 'पंछी चहचहाए']। इसी आधार पर '(ख)' के '(1)' वाले वाक्य 'मिश्र वाक्य' तथा '(2)' वाले वाक्य 'संयुक्त वाक्य' कहलाते हैं। 'सरल वाक्य' अर्थ की दृष्टि से पूर्ण होता है, पर यौगिक वाक्य के (यानी 'मिश्र' व 'संयुक्त' वाक्य के) उपवाक्य (जो संरचना में 'सरल' होते हैं) अर्थ की दृष्टि से दूसरे उपवाक्य/उपवाक्यों के प्रति आकांक्षी अथवा पराश्रित तक होते हैं, यानी अर्थ की दृष्टि से अपने-आप में पूर्ण नहीं।

4.2.4 रूप-विज्ञान

पद – जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, 'पद' वाक्य-प्रयुक्त सबसे छोटी स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई है। पदों की व्याख्या के लिए भारतीय भाषा-चिंतन में '**प्रकाशित**' नामक तत्त्व की कल्पना की गई है, जिसे आम भाषा में '**शब्द**' कहते हैं।

*'शब्द' को 'पद' (रूप) में रूपायित करती हैं– व्याकरणिक **कोटियाँ**। ये हैं– कारक, वचन, पुरुष, (कभी-कभी 'लिंग' भी) काल, वाच्य, प्रकार (मूड) और पक्ष (एसपैक्ट)। ये शब्द को 'पद' की भूमिकाओं में ढालने के क्रम में उनमें 'विभक्ति' नामक व्याकरणिक अंश भी जोड़ते हैं। जैसे-'लड़के ने पेड़ लगाया' वाक्य में प्राप्त पद 'लड़के ने' में शब्द है 'लड़का'। उससे जुड़ा व्याकरणिक अंश '(लड़का +) **ए + ने**' ही विभक्ति है। 'लडक़ा पेड़ लगाता है' वाक्य में 'लड़का' पद 'लड़का' शब्द में '0' विभक्ति के योग से बना है। इसी तरह 'लगा' पद भी 'लगा' शब्द में विभक्ति के योग से बना है। हिंदी में 'विभक्ति' का पूरक तत्त्व भी होता है। उक्त 'ए + ने' में 'ने' परसर्ग विभक्ति-पूरक है।*

"लड़की/लड़के ने पेड़ लगाया।" इस वाक्य में तीन पद हैं– 'लड़के ने', 'पेड़', 'लगाया'। 'लड़के ने' पद की व्याख्या के लिए भारतीय भाषा-चिंतन एक शब्द-तत्त्व की कल्पना करेगा–'लड़का'। इसी तरह, पद 'लगाया' में 'लगा'। कहा जाएगा कि 'शब्द'– 'लड़का' व 'लगा'–वाक्य में प्रयुक्त नहीं होते। प्रयुक्त होते हैं इनके साधित रूप (पद)– 'लड़के ने' और 'लगाया'।

इसे विश्लेषण की भाषा में कहा जा सकता है कि 'शब्द' यानी 'प्रकृति' की स्थिति 'कोश' (डिक्शनरी) में होती है, जो भाषा-संरचना के एक घटक के रूप में हमारे मन में कायम रहती है। अपने मूल रूप में वह भाषिक व्यवहार में नहीं आता। कोशस्थ शब्द अपने में अनेक अर्थ-संभावनाओं को समाहित किए हुए वहाँ स्थित होता है। भाषा में प्रयुक्त होने के लिए उसे कुछ खास 'रूप' धर कर वाक्य का अंग बनना होता है। तभी वह वाक्यस्थ अन्य शब्दों से संबद्ध होता है और अपनी अनेक अर्थ-संभावनाओं में से किसी/ कुछ खास के लिए बँधकर, निश्चित प्रकार्य का साधक बनता है।

वाक्य-प्रयुक्त होने के लिए शब्द जिस रूप में ढलता है, उसे 'पद' कहते हैं, जिसे भारतीय व्याकरण-चिंतन में '**रूप**' भी कहा गया है (पर, *जैसा कि आगे विवेचन किया गया है, आधुनिक भाषाविज्ञान में मोरफ़ के लिए 'रूप' शब्द का इस्तेमाल हो रहा है*)। इस रूप में ढलने के लिए उसमें कुछ व्याकरणिक अंशों का संयोग ज़रूरी है। ये अंश 'संबंध-तत्त्व' होते हैं, जिन्हें (या जिनमें से कुछ विशेष को) भारतीय भाषा-चिंतन में 'विभक्ति' कहा गया है। यानी —

पद = शब्द + विभक्ति/संबंध-तत्त्व

अधिकतर भाषाओं (हिंदी, संस्कृत, रूसी, अंग्रेज़ी आदि योगात्मक भाषाओं) के लिए यह सच है। पर अयोगात्मक भाषाओं (जैसे– चीनी) में 'शब्द' व 'पद' का यह भेद नहीं दिखता। उनमें जो कोशस्थ शब्द है, वह उसी रूप में वाक्य/ भाषा-व्यवहार में प्रयुक्त होता है , फिर भी वाक्य में प्रयुक्त हो कर वे 'पद' ही कहलाएँगे। कभी-कभी तो हिंदी में भी ऐसा संभव है कि कोई शब्द अपने उसी रूप में वाक्य-प्रयुक्त हो जाए।
जैसे–"लड़का पेड़ लगाता है।"

"तू पेड़ लगा।"

पहले वाक्य में 'लड़का' और दूसरे वाक्य में 'लगा', उपर्युक्त विवेचन के अनुसार 'शब्द' (प्रकृति) की तरह प्रतीत होकर भी **पद** हैं। *'लड़का'* व ' ' शब्द इनमें बिना किसी रूपाकृति-परिवर्तन के 'पद' बन कर प्रयुक्त हुए हैं। **'पद' वस्तुत: 'शब्द' के उस साधित रूप को कहते हैं जो वाक्य-प्रयुक्त होता है**। अयोगात्मक भाषाओं के बारे में भारतीय व्याकरण-चिंतन की भाषा में कहा जा सकता है कि उनमें 'रूप'-रचना नहीं होती, पर उनके वाक्य में 'पद' ही रहते हैं, न कि 'शब्द'।

उक्त वाक्य *'लड़के ने पेड़ लगाया'* में *'लड़के ने'* पद है, *'लड़का'* शब्द है और उसमें जुड़े अंश **'ए'** + **'ने'** संबंध-तत्त्व हैं, जिनमें से 'ए' विभक्ति है। 'पेड़' में भी संबंध-तत्त्व है, पर वह 'शून्य' (0) है। 'पेड़' भी इस तरह पद है, 'लगाया' भी। 'लड़का ने' और 'पेड़' क्रिया-भिन्न रूप हैं, संज्ञा शब्द-रूप (कारक रूप)। *'लड़की पढ़े'*–में क्रियापद (क्रिया रूप) है 'पढ़े'। इसका मूल शब्द (धातु) है 'पढ़', जिसमें 'ए' विभक्ति जुड़ी हुई है। वही यहाँ संबंध-तत्त्व है। क्रियापद की रचना हेतु आने वाली विभक्ति 'क्रिया / धातु-विभक्ति' कहलाती है तथा क्रिया-भिन्न (क्रियेतर) पद की रचना में उपयोगी विभक्ति 'कारक-विभक्ति'।

संबंध-तत्त्व – किसी वाक्य में दो तरह के तत्त्व हैं–'अर्थ–तत्त्व' और 'संबंध–तत्त्व'। दोनों में संप्रेषण के लिहाज़ से प्रधानता अर्थ-तत्त्व की है। संबंध-तत्त्व का कार्य विभिन्न अर्थ-तत्त्वों को आपस में संबंधित करना है, ताकि 'वाक्य' अस्तित्व ग्रहण करे।
"कमला ने प्रतिभा से लेक्चरर का पद पाया, पैरवी या घूस से नहीं।" इस वाक्य में 'कमला', 'प्रतिभा', 'लेक्चरर', 'पद', पा(ना), 'पैरवी', 'या', 'घूस' और 'नहीं'–ये नौ अर्थ-तत्त्व हैं, अर्थ-विशेष से संबद्ध या उसके वाचक। इन्हें एक साथ उक्त क्रम से रख देने मात्र से हिंदी जैसी (योगात्मक) भाषा में वाक्य तो बनेगा नहीं। (चीनी जैसी अयोगात्मक भाषा में क्रम से रख देने भर से वाक्य बन जाता।) जब वाक्य ही नहीं बनेगा, तो कोई विचार अभिव्यक्त कैसे होगा इनसे ? वाक्य बनाने के लिए इनमें संबंध-तत्त्व (रचना-तत्त्व) जुड़ने अनिवार्य हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'ने', 'से', 'का', 'से' के साथ 'पाया' में आए 'या' को लेकर पाँच संबंध-तत्त्व हैं, जो उक्त वाक्य का संघटन करते हैं। इनमें प्रथम चार संबंध-तत्त्व विश्लिष्ट (शब्द / अर्थ-तत्त्व से अलग) हैं और अंतिम संश्लिष्ट (शब्द/अर्थ–तत्त्व से मिले हुए)। *इसी तरह, 'घोड़े तगड़े हैं' वाक्य में 'घोड़ा'/'तगड़ा' में लगा 'ए' भी संश्लिष्ट है।*

रूप और रूपिम

अब तक हम जान चुके हैं कि वाक्य-संरचना की लघुतम स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई '**पद**' है (जिसे भारतीय व्याकरण-परंपरा 'रूप' भी कहती है)। हिंदी का एक वाक्य है–
"आर्थिक भ्रष्टाचारियों से ज़्यादा घिनौने और बेशर्म हैं मानवीय भ्रष्टाचारी। पहले उन्हीं को दंड देना होगा– कठोरतम दंड!"

इस में पद 'भ्रष्टाचारियों ***से***' *की रचना 'भ्रष्टाचारी* + ***ओं*** + ***से***' हुई है, जिसमें 'ओं + से' विभक्ति (व परसर्ग) नामक संबंध–तत्त्व है। 'भ्रष्टाचारी'[13] **प्रकृति** (शब्द) नामक तकनीकी इकाई है, जो (मानसिक) शब्दकोश में स्थित रहती है, जहाँ से आकर यहाँ पद

13. यदि अन्य प्रसंगों में यह (जैसे–भ्रष्टाचारी आज के शिष्टाचारी बने हुए हैं।) प्रयुक्त हो भी रहा है, तो यही माना जाएगा कि यह शब्द नहीं है, बल्कि पद बन कर आया है, भले प्रकट रूप से इस में विभक्ति (व परसर्ग) न लगी हो।

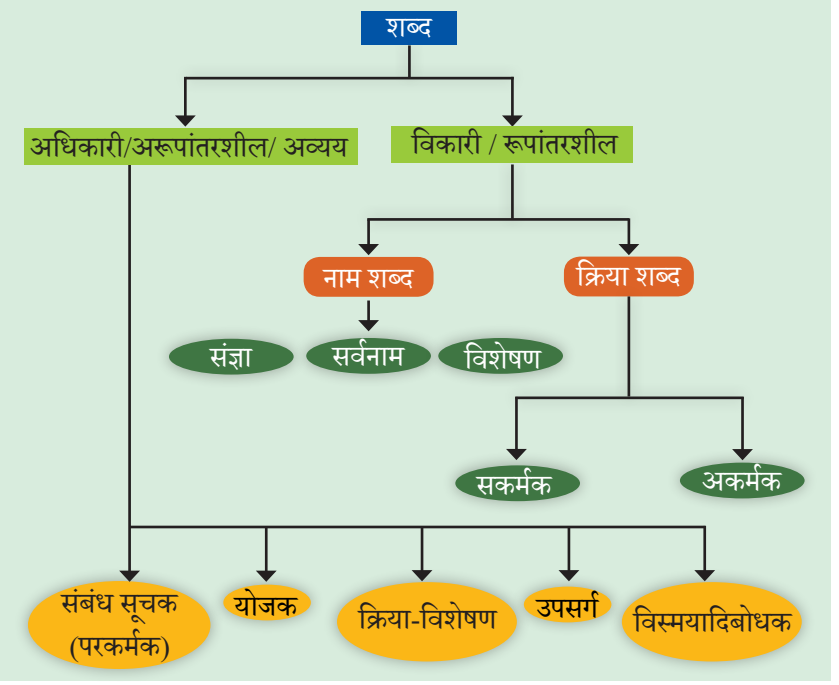

बनी है–'भ्रष्टाचारियों से'। 'दंड' **पद** में निहित **प्रकृति** (शब्द) भी है 'दंड' ही, क्योंकि 'दंड' (पद) = दंड (शब्द) + 0 + 0। इन दोनों शब्दों–'भ्रष्टाचारी' व 'दंड' में से पहला यौगिक / व्युत्पन्न शब्द है, क्योंकि 'भ्रष्टाचार + ई' से बना है। 'ई' अंश प्रत्यय कहलाता है। इसमें स्वयं सार्थकता नहीं होती, परंतु मूल सार्थक अंश 'भ्रष्टाचार' के साथ संलग्न होकर उसे अर्थ-विशेष (भ्रष्टाचार करने वाला / भ्रष्टाचार से जुड़ा आदि) में गतिमान करता हुआ अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।

'भ्रष्टाचार' भी यौगिक शब्द है–'भ्रष्ट + आचार'–यह 'शब्द + शब्द' का मेल है। (हिंदी *में सामान्यत: यहीं तक विश्लेषण किया जाता है और 'आचार' को अखंडनीय शब्द मान लेते हैं, पर हम चाहें तो इसका आगे भी विश्लेषण कर सकते हैं और ऐसा करना तर्कपूर्ण भी है। एक दृष्टि से 'आचार' भी यौगिक शब्द निकलता है– 'आ + चार'–यह 'उपसर्ग + शब्द' के रूप में व्युत्पन्न है। 'चार' शब्द के मूल अर्थ (चलना / प्रवाहित होना*[14] *आदि)– में 'आ' पहले जुड़ कर परिवर्तन लाता है। अब अर्थ हो गया–'आचरण'। 'आ' अंश में स्वयं सार्थकता वैसी नहीं, जैसी 'चार' में है। पर, उससे जुडक़र, उसे नया अर्थ देते हुए 'आ' भी अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।*) 'बेशर्म' भी यौगिक शब्द है– 'शर्म' शब्द में 'बे' उपसर्ग के मिलने से बना। सार्थक शब्द 'भ्रष्ट', 'दंड', 'शर्म' आदि (और

14. निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में 'चार' का इसी अर्थ में प्रयोग किया है–'खो रहा दिशा ज्ञान स्तब्ध है पवन-चार' आया है, भले प्रकट रूप से इस में विभक्ति (व परसर्ग) न लगी हो।

कोष्ठकस्थ विश्लेषण के अनुसार 'चार' भी)– एक दृष्टि से समान तल पर हैं। इन्हें अब और अधिक खंडित किया जाए, तो जो टुकड़े होंगे वे सार्थक शब्द / शब्दांश न रह जाएँगे– यह स्पष्ट है। ऐसे शब्द '**रूढ़**' या 'अव्युत्पन्न' कहलाते हैं।

इस समस्त विश्लेषण में हमें, *'दंड'*, *'भ्रष्ट'*, *'शर्म'* (और 'चार' भी) के साथ *'ई'*, *'आ'*, *'ओं'* और *'से'* ऐसे भाषिक अंश मिले, जिनसे छोटी सार्थक इकाई नहीं हो सकती। इन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान की शब्दावली के अनुसार, **रूप** (मौर्फ़) कहा जाता है। *यानी, रूढ़ शब्द (रूढ़ प्रकृति), 'उपसर्ग' व 'प्रत्यय' नामक शब्दांश एवं 'विभक्ति (व परसर्ग)' ही रूप (मौर्फ़) हैं। इनके योगदान से कोई यौगिक शब्द व्युत्पन्न होता है अथवा पद की रचना होती है।* यानी, ये यौगिक शब्दों और पदों के घटक / संरचक हैं।

उक्त प्रथम वाक्य में सामान्यत: *अर्थ, इक, भ्रष्ट, आचार, ई, ओं, से, ज़्यादा, घिनौना, ए, और, बे, शर्म, हैं, मानव, ईय, भ्रष्ट, आचार, ई*– ये बीस रूप (मौर्फ़)

संबंध तत्वों के मुख्य प्रकार

(1.) ***शब्द-स्थान/क्रम-अयोगात्मक*** *भाषाओं में (जैसे- चीनी में) थोड़ी-बहुत हिंदी, अंग्रेज़ी (और समास-रचना के प्रसंग में संस्कृत) आदि भाषाओं में प्रचलित। (कर्ता) साहिल और गायत्री* ***पतंग*** *उड़ा रहे हैं। (कर्म)*

(2.) ***संबंध-निर्माता स्वतंत्र शब्द-हिंदी*** *में परसर्ग (ने, को, से, पर) द्वारा, भर आदि से यह कार्य। 'अरविंद* ***पर*** *विश्वास करना कठिन है।'*

(3.) ***शून्य संबंध-तत्त्व/शून्य विभक्ति —*** *किसी भाषा में 'पद' बिलकुल 'शब्द' की तरह अविकृत रूप में दिखे, तो वैसी स्थिति में मान लिया जाता है कि विभक्ति या संबंध-तत्त्व तो इन शब्दों में लगा, परंतु लग कर लुप्त हो गया, यानि शून्य विभक्ति ज़ीरो इनफ्लेक्शन, लगी। जैसे- 'तू जा।', 'लता गच्छति।'*

(4.) ***शब्द में कुछ व्याकरणकि अंशों का योग-योगात्मक*** *भाषाओं में प्रचलित (1) आदियोग* ***('उपसर्ग') - 'देश'*** *शब्द में अलग-अलग उपसर्गों के योग से प्रदेश, विदेश, अनुदेश, संदेश, आदेश आदि ढेरों शब्द बनेंगे। (2) मध्ययोग* ***('विकरण') - 'नीति*** *+इक = नैतिक ' में 'इक' प्रत्यय (अंत-योग) पहले के स्वर 'ई' को 'ऐ' भी बना रहा है। (3) अंतयोग ('प्रत्यय'/* ***'विभक्ति')*** *लड़का + ऐ = लड़के। जा + ऊँ = जाऊँ। लड़के +ए + को = लड़के को। 'गा' शब्द (धातु) से 'गाना', 'गायक' आदि ढेरों शब्द बनेंगे।*

(5.) ***ध्वनि-गुण-यदा-कदा*** *सुर व बलाघात पद-साधक। हिंदी की जनपदीय में भी यह गुण हैं। जैसे — मगही में* ***कर*** *(= करो) तथा (कर) (= कीजिए। आदरसूचक रूप)*

*भोजपुरी मे **क रब** (= मैं करूँगा/करूँगी) तथा **करब** (= आप करेंगे? तुम करोगे)।*
Contact (क्रिया) जुड़ना, संपर्क करना), Con'tact (संज्ञा, जुड़ाव, संपर्क)

*(6.) **अंतर्वर्त्ती स्वर में परिवर्तन** —* 'Sing' से 'Sang' या 'Sung' बनना स्वर-परिवर्तन से हुई पद-रचना का उदाहरण है।

निकाले जा सकते हैं। यदि '*आचार (आ+चार)*' व 'हैं *(ह + एँ)*' का भी विखंडन उचित समझें, तो रूप (मौर्फ़) बाईस हो जाते हैं। शब्द का विवरण प्रस्तुत रेखाचित्र से समझ सकते हैं —

इस प्रकार, ***रूप भाषा की व्यवहृत न्यूनतम एवं अर्थवान इकाई है।*** यह जिस (अर्थ-तत्त्व) को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा-प्रयोग में आता है, वह भाषा-व्यवहार में आए **अर्थ** का सबसे छोटा टुकड़ा होता है, जिसे **रूपिम** ('मौर्फ़िम') कहते हैं। अर्थात्, ***भाषा में व्यवहृत हुए अर्थ (प्रकार्य भी) की लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं।*** यानी, रूपिम का संबंध एक अर्थ / प्रकार्य के बोध से है। रूपिम अमूर्त्त आर्थिक इकाई है, रूप (मौर्फ़) उस का ध्वनि-रूप है, यानी भाषा-प्रयोग में उसका संरचनात्मक प्रतिनिधित्व करने वाला।

लड़के ने कहा।– इस वाक्य में परंपरागत भारतीय व्याकरणिक दृष्टि से दो **पद** हैं, जिसे **रूप** भी कहा गया है–'लड़के *ने*' तथा '*कहा*'। पर, आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से न्यूनतम अर्थ-तत्त्व (रूपिम) के प्रकाशक ध्वनि-तत्त्व को रूप कहते हैं। इस लिहाज़ से इसमें निम्न पाँच रूप हैं —

(क) '*लड़के ने* पद में–लड़का + ए + ने–3 रूप (ख) '*कहा*' पद में-कह + आ–दो रूप

'क' में न्यूनतम अर्थ-इकाइयाँ (रूपिम) कम से कम चार हैं —

(1) (अपने साथ संलग्न प्राकृतिक जेंडर आदि अर्थ समेत) लड़का नामक वस्तु-विशेष

(2) उसका एक-संख्यात्मक (एकवचन) अर्थ

(3) कर्तृत्व अर्थ

(4) भूतकालिक अर्थ आदि।

इनके प्रकाशन के लिए भाषा में उक्त तीन ध्वनि-रूप आए। आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ये ही **रूप (मौर्फ़)** की संज्ञा पाते हैं।

इसी तरह, 'ख' में दो रूपिम हैं —

(1) कहने का भाव / की विर् या

(2) भूतकालिक अर्थ

इनके प्रकाशन के लिए भाषा में उक्त दो ध्वनि-रूप आए। 'कह' (1) को प्रकाशित करने के लिए आया, 'आ' (2) के लिए आया। ये ही **रूप** की संज्ञा पाते हैं। हिंदी का वाक्य– 'वे **उठे**' के 'उठे' पद में चार रूपिम हैं जिनके प्रकाशक दो रूप हैं — **उठ + ए**।

मुक्त एवं बद्ध रूप

पूर्व-विवेचित वाक्य ("आर्थिक भ्रष्टाचारियों से ज़्यादा घिनौने और बेशर्म हैं मानवीय भ्रष्टाचारी। पहले उन्हीं को दंड देना होगा–कठोरतम दंड!") के रूपों (Morph) में से 'दंड' 'शर्म' व 'भ्रष्ट' की सार्थकता का स्तर अलग है, 'ई', 'आ', 'ओं', 'बे' और 'से' का अलग। पहले वर्ग के रूप (Morph) अपने-आप में अर्थवत्ता रखते हैं; चाहे वे किसी भाषिक व्यवहार या अन्य रूप (Morph) से संयोग में आएँ अथवा नहीं, वे स्वयमेव सार्थक हैं। ऐसे रूप मुक्त रूप कहलाते हैं। दूसरे वर्ग के रूप की सार्थकता तब तक संभव नहीं, जब तक वे किसी भाषायी प्रक्रिया के तहत प्रथम वर्ग के रूप के साथ जुड़ते नहीं। इसी से वे बद्ध रूप कहलाते हैं।

शब्द-रचना

उपर्युक्त विवेचन से यह भी पता चलता है कि शब्द (मतलब, यौगिक शब्द) की रचना (व्युत्पत्ति) की तीन प्रक्रियाएँ हिंदी में हैं —

(i) रूढ़/यौगिक शब्द + रूढ़/यौगिक शब्द। जैसे-भ्रष्ट + आचार
(समास प्रक्रिया)

(ii) रूढ़/यौगिक शब्द + प्रत्यय। जैसे–भ्रष्टाचार + ई = भ्रष्टाचारी
(प्रत्यय-प्रक्रिया)

(iii) उपसर्ग + रूढ़/यौगिक शब्द। जैसे–बेशर्म = बे + शर्म। समालोचना = सम् + आलोचना (यदि पूर्वोक्त विखंडन 'आ + चार' को उचित समझें, तो 'आचार' भी ऐसा ही शब्द है)

तीसरी प्रक्रिया हिंदी में गौण है तथा इसे समास-प्रक्रिया में ही अंतर्भूत किया जा सकता है। पूर्वोक्त वाक्य में और भी यौगिक शब्द आए हैं, उनका गठन देखते हैं — *आर्थिक=अर्थ+इक। मानवीय=मानव+ईय । कठोरतम=कठोर+तम ।* तीनों में प्रत्यय-प्रक्रिया घटित हुई है।

अभ्यास प्रश्न

भाषा से संवाद

1. भाषा में कोई प्रयोग न शुद्ध होता है, न अशुद्ध, बस वह किसी खास समय/स्थान के लिए मानक या अमानक हो सकता है–इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?
2. भाषा की परिवर्तनशीलता से आप क्या समझते / समझती हैं?
3. आमतौर पर जिन्हें (अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही आदि को) हिंदी की बोलियाँ समझा जाता है, वे वस्तुत: भाषाएँ हैं । कैसे?
4. वाक्य से भी कभी-कभी पूरी बात नहीं व्यक्त की जा सकती, बल्कि पूर्ण संप्रेषण के लिए उससे भी बड़ी इकाई (प्रोक्ति) का सहारा लेना पड़ता है । इसे सोदाहरण स्पष्ट करें ।
5. 'रमा ने चित्र बनाया' वाक्य के अंशों का विश्लेषण कर रूप और रूपिम की सूची बनाइए तथा यह भी बतलाइए कि किस **रूप** से कौन-सा **रूपिम** अभिव्यक्त हो रहा है?
6. भाषा-प्रयोग में अ, ई, ग् आदि ध्वनियाँ (स्वन) ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं या अनुतान, बलाघात, अनुनासिकता आदि ध्वनि-गुण और क्यों?
7. सही में उच्चरित भाषा की सबसे छोटी इकाई है 'अक्षर' न कि 'स्वन'(वर्ण)– ऐसा किस आधार पर कहा जा सकता है ?
8. 'सलीम की कमीज़ खो गई'– इस वाक्य का विश्लेषण कर 'अक्षर' और 'स्वन' (वर्ण) निकाल कर दिखलाएँ ।
9. दुनिया की सारी भाषाओं में कुछ मूलभूत (व्याकरणिक) तत्त्व समान रूप से प्राप्त होते हैं–इस प्रतिपादन का सोदाहरण विवेचन करें ।
10. जिस तरह 'हिंदी' और 'अंग्रेज़ी' दो अलग-अलग भाषाएँ हैं या जिस तरह 'हिंदी' और 'अवधी' (मैथिली, ब्रज आदि) दो अलग-अलग भाषाएँ हैं, उस तरह हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं– ऐसा कहना क्या उचित है? यदि 'नहीं', तो क्यों? यदि 'हाँ', तो उसका क्या भाषावैज्ञानिक आधार है?

गतिविधि/पोर्टफ़ोलियो

प्रशिक्षण/कक्षा शिक्षण के दौरान

1. 'लिखित और मौखिक भाषा में अंतर' विषय पर समूह में चर्चा करें ।

गतिविधियाँ और परियोजना-कार्य

1. पाठ में आप को निम्नलिखित युग्म प्रयुक्त दिखे होंगे —

   कहा-कहाँ; काटा-काँटा ; पूछ-पूँछ

   इनमें अर्थ-भेद अनुनासिकता के कारण होता है । हिंदी में इस प्रकार के और भी ढेर सारे युग्म होंगे । अर्थ-स्पष्टीकरण के साथ उनकी यथासंभव सूची बनाइए ।

2. 'बात' का बहुवचन 'बातें' होता है, पर 'हाथ' का 'हाथें' नहीं, जबकि दोनों अकारांत शब्द ही हैं । ऐसा क्यों होता है । इस पर सोचिए और कक्षा में चर्चा कीजिए ।

3. *'लड़के गए ।', 'लड़के को बुलाओ ।'*

   इन दोनों वाक्यों में 'लड़के' पद/शब्द आया है । क्या इन दोनों में आए 'लड़के' में अर्थ/प्रकार्य का कुछ भेद है? यदि 'हाँ' तो इसके कारण पर विचार करें और कक्षा में चर्चा करें।

4. कक्षा की भाषा और घर-परिवार में प्रयुक्त बोलचाल की भाषा में जो भेद हैं, उन पर सोचिए और आपस में बातचीत कीजिए ।

5. अपने मुहल्ले-कस्बे या आस-पास के किसी शहर की दुकानों या संस्थानों के जो नामपट या सरकारी/सरकारी सूचना/घोषणा-पट्ट हों, उनका सावधानी से अवलोकन करें । उनमें से कितने हिंदी में हैं, कितने अंग्रेज़ी में और कितने अन्य भाषाओं में? इसकी गणना कर एक रिपोर्ट तैयार करें । उनमें से हिंदी के पट्ट में जो अमानक प्रयोग (या भाषाई अशुद्धियाँ) दिखें उनकी सूची बनाएँ, जिसमें हिंदी के पट्टों की तुलना अंग्रेज़ी के पट्टों (में हुए अमानक प्रयोगों से) की गई हो । फिर, उसे शिक्षक को एवं आपस में दिखाएँ और उसके आधार पर 'हिंदी की स्थिति' पर कक्षा में एक परिचर्चा आयोजित करें ।

6. अपने पास के किसी रेलवे स्टेशन या बस स्टैंड पर घंटे भर के लिए बैठ कर, वहाँ आते-जाते लोगों की भाषा पर ध्यान दें । उनमें से कौन, किस मात्रा में अपनी बातचीत को पूर्ण या अपूर्ण (अध्याहृत) वाक्यों के रूप में प्रकट करता है–इसका विचार करते हुए एक रिपोर्ट तैयार करें ।

शिक्षक के लिए

1. शिक्षक सबसे पहले विद्यार्थियों से पूछें कि 'हिंदी की लिपि क्या है?' उनकी तरफ़ से जवाब आएगा– 'देवनागरी' । तब, उनका ध्यान उनके अपने-अपने मोबाइल पर आए (रोमन लिपि में हिंदी भाषा के) किसी ताज़ा संदेश (एस.एम.एस.) की ओर आकर्षित करते हुए पूछें कि वह किस भाषा में है? उत्तर यदि 'हिंदी' आए, तो पूछें कि हिंदी

की लिपि जब 'देवनागरी' है, तो यहाँ वह 'रोमन' में कैसे लिखी गई? इस तरह के सवालों में विद्यार्थियों को डाल कर, परिचर्चा द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है —

'भाषा' और 'लिपि' दो अलग अवधारणाएँ हैं। दोनों दो भिन्न चीज़ें हैं। इसलिए, किसी भाषा-विशेष का किसी लिपि-विशेष से अनिवार्य या अंतिम संबंध नहीं होता। लिपि भाषा की पोशाक की तरह है। इस संदर्भ में यह भी समझाया जा सकता है कि हिंदी के लिए 'देवनागरी' किस तरह अधिक माकूल पोशाक है, 'रोमन' आदि कम।

2. शिक्षक विद्यार्थियों से पूछें कि 'भारत की राजभाषा क्या है?' या 'यहाँ आपकी पढ़ाई का माध्यम कौन-सी भाषा है?' उत्तर यदि 'हिंदी' आए, तो फिर उन्हें हज़ार साल में हुए हिंदी के दस श्रेष्ठ रचनाकारों का नाम बताने के लिए कहें। यदि वे चंदबरदाई, विद्यापति, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, मीरा, बिहारी, प्रेमचंद, प्रसाद आदि का नाम लें, तो उनसे पूछें कि ये क्या उसी 'हिंदी' के रचनाकार हैं, जो आपके अनुसार भारत की राजभाषा या इस कक्षा की भी भाषा है? विद्यार्थियों को इस प्रश्न पर आपस में सोच-विचार करने को कहें। उनके जो जवाब आएँ, उन्हें आधार बना कर उन्हें इस तथ्य तक पहुँचाने का प्रयास करें कि 'हिंदी' शब्द का कितने अर्थों में प्रयोग होता रहा है या 'हिंदी' भाषा का कालगत और देशगत विस्तार कितना है?

3. आप जहाँ कहीं जाएँ, वहाँ के लोगों की बातचीत में मौजूद हिंदी के विविध रूपों, शैलियों और लहज़ों पर ध्यान दें। यदि संभव हो तो उनकी ऑडियो-रिकॉर्डिंग करने का प्रयास करें और उसे शिक्षण-सहायक सामग्री के रूप में कक्षा में इस्तेमाल करें।

इकाई

5

भाषायी– कौशलों का विकास

5.1 — संदर्भ में भाषा **158**

5.1.1 संदर्भ में व्याकरण और संदर्भ में शब्द 158

5.2 — भाषायी क्षमताएँ **166**

5.2.1 सुनना 171

5.2.2 बोलना (मौखिक अभिव्यक्ति) 175

5.2.3 पढ़ना/वाचन 182

5.2.4 लिखना 192

5.1— संदर्भ में भाषा

हम अब तक यह भलीभाँति समझ चुके हैं कि भाषा संप्रेषण की व्यवस्था है, जिसके संरचनात्मक व अर्थपरक पक्ष हैं। संप्रेषण-व्यवस्था मूलत: वाक्यमय होती है। भाषा में वाक्यगत शब्दों/पदों का खास संबंध व खास क्रम होता है, इसी तरह का क्रम शब्दगत ध्वनियों का भी होता है। साथ ही, हर शब्द व वाक्य का निश्चित या कुछ खास दिशा में अर्थ होता है। भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था में निहित नियम ही **व्याकरण** कहलाते हैं। यह व्यवस्था स्थिर नहीं, जड़ नहीं, बल्कि देश व काल के सापेक्ष परिवर्तनशील है।

भाषा को पढ़ना-पढ़ाना उसके प्रयोक्ता (समाज) को पढ़ना-पढ़ाना है– उसके भाषिक व्यवहार/आदतों के ज़रिये उसके सामूहिक मन में विराजमान भाषिक संरचना (भाषावैज्ञानिक व सामाजिक) को समझना-समझाना है। उस संरचना-विशेष को अन्य समूह की मन:स्थ संरचना-विशेष से विभेदन को समझना-समझाना और इस माध्यम से अंतत: समाज को समझना-समझाना और उसमें जो स्तरीकरण/भेदभाव/समस्याएँ या अलोकतंत्र है, उसको फ़ोकस करते हुए, समाज की इन जटिलताओं को क्रमश: शिथिल करते हुए निर्मूल करना ही **भाषा-शिक्षण** का वास्तविक उद्देश्य है।

5.1.1 संदर्भ में व्याकरण और संदर्भ में शब्द

भाषा सिखलाने का एक महत्वपूर्ण रास्ता व्याकरण-शिक्षण से होकर जाता है। पर व्याकरण सिखलाने का उचित तरीका क्या है– यह गंभीर विचार का विषय है।

व्याकरण सिखलाने के उद्देश्य

- अनंत प्रकार की शैलियों में, अनंत प्रकार के वाक्य समझने-बोलने-लिखने की क्षमता का विकास करना–समाज के हित, मानवता के हित– व्याकरणिक शुद्धि-अशुद्धि के पचड़े से परिचित कराते हुए, उसे सामाजिक शुद्धि तक ले जाना। फिर, भाषायी दक्षताओं (सुनना, सुनकर समझना–बोले गए का स्वन / स्वनिम-विभेदन > खुद बोलना > पढ़ना > लिखना) का विकास।
- व्याकरणिक संरचना सर्वोपरि नहीं, सर्वोपरि है संप्रेषणीयता का विकास (यानी, शुद्ध व्याकरण नहीं, 'व्याकरण और रचना' की ओर ले जाना)। भाषा की व्याकृति भी संप्रेषणीय वाक्यों का व्याकृति/विश्लेषण है, न कि व्याकरणिक पूर्णता वाली किसी इकाई का विश्लेषण अनिवार्य है।
- जो सोच या चाह रहा है, वह कह या लिख पाया कि नहीं, यही मूल बात है। भाषा में संप्रेषणीयता सर्वोपरि है। शैली, लहज़ा, व्याकरणिक संरचना की पूर्णता या खास क्रम में व्यवस्था आदि गौण चीज़ें हैं। शैली की उत्कृष्टता-निकृष्टता का परीक्षण, संप्रेषणीय तत्व के सापेक्ष ही होना चाहिए। आम व्यवहार में यही बात है।

- पर, साहित्य में क्या कहा जा रहा है, से कम महत्वपूर्ण नहीं है यह कि कैसे कहा जा रहा है ? बर्तन और खाना समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। अत: शैली को उक्त कसौटी पर परखते हुए भी, यहाँ थोड़ा भिन्न तरीके से परीक्षित करना चाहिए।

हमारी चेतना के लिए जो सबसे प्राथमिक है, वह है विशेष। उसके आधार पर एक सामान्य तत्व– नियम या परिभाषा सबसे अंत में आती है, पर परंपरागत विधि इसके ठीक उलट है। इससे व्याकरण भाषा/संदर्भ में निहित न होकर वैयाकरण के मन में केंद्रित लगने लगता है। उस विधि में एकमुखी उपदेशात्मकता होती है, वह उबाऊ व बोझिल होता है, जिसमें गतिशीलता और सरसता का अभाव होता है। उस विधि से सीखा गया व्याकरण भाषा-प्रयोग के वास्तविक संदर्भों से कटा भी होता है, जिससे व्याकरण-प्रक्रिया का कुछ भी अता-पता नहीं लगता। अर्थात् उसमें व्याकरण भाषा-केंद्रित नहीं, वैयाकरण के मन में केंद्रित लगता है। इस तरह, व्याकरण साधन न रहकर, साध्य हो जाता है। जबकि व्याकरण सिखलाना लक्ष्य नहीं होना चाहिए, लक्ष्य होना चाहिए– भाषा में रुचि जगाना, भाषा सिखलाना या कम से कम भाषिक कौशलों के विकास या भाषा-प्रयोग में दक्ष बनाना। साथ ही, उसमें बोध की मानसिक प्रक्रिया (जो वाक्य से ध्वनि की ओर होती है) के उलटे क्रम में (ध्वनि से वाक्य की ओर) यात्रा होती है।

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण ही उचित विधि

भाषा तब सीखी जाती है, जब वह भाषा के रूप में नहीं पढ़ाई जाती, बल्कि सार्थक संदर्भों से जोड़कर उसे पढ़ाया जाता है।

— राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005

संदर्भ के यहाँ दो अर्थ हैं —

1. भाषा-प्रयोग (वाक्य-प्रयोग) का संदर्भ
2. सामाजिक संदर्भ (जिसमें भाषा-प्रयोग होता है)

पहले में पूरा भाषा-व्यवहार या पूरा भाषिक माहौल आ जाता है, वह चाहे बच्चे की तुतलाहट, विद्वान के धीर-गंभीर वक्तव्य, रेडियो-टी.वी. के विविध भाषिक कार्यक्रम, मोबाइल पर आए संदेश, सिनेमा के पोस्टर, अखबार के पन्ने, पाठ्यपुस्तक, चिट्ठी, आमजनों की बातचीत आदि के रूपों में। दूसरे के बारे में कह सकते हैं कि जिस घरेलू/सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक और इन सबसे निर्मित भाषिक परिवेश में हम रहते हैं, उसी के प्रति सचेत करते, उसी को आधार या उदाहरण बना कर, उसमें निहित व्याकरण को समझने की क्षमता विकसित करना व्याकरण-शिक्षण की सही विधि है। संदर्भानुसार व्याकरण-शिक्षण की प्रक्रिया में भाषा का विश्लेषण तथा उसके नियमों की

पहचान का काम साथ-साथ चलते हैं। उदाहरणस्वरूप, 'एन.सी.ई.आर.टी.' द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तक 'वसंत' (भाग 3) से निम्नलिखित उद्धरण लिये गए —

"एक बहुत बड़े आदमी ने मुझसे एक बार कहा था कि इस समय सुखी वही है जो कुछ नहीं करता। जो कुछ भी करेगा उसमें लोग दोष खोजने लगेंगे। उसके सारे गुण भुला दिए जाएँगे और दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाने लगेगा।" (वसंत भाग 3, एनसीईआरटी, 2009:34)

"कुछ नौजवानों ने ड्राइवर को पकड़कर मारने-पीटने का हिसाब बनाया। ड्राइवर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।"

(वसंत भाग 3, एन.सी.ई.आर.टी, 2009:37)

"मैं भी बहुत भयभीत था पर ड्राइवर को किसी तरह मार-पीट से बचाया।" (वसंत भाग 3, एन.सी.ई.आर.टी, 2009:38)

उपर्युक्त उदाहरणों में आए 'बढ़ा-चढ़ाकर', 'मारने-पीटने', तथा 'मार-पीट' को संदर्भ सहित पढ़ाने से समास और उसके एक भेद 'द्वंद्व समास' को समझना सहज होगा। तब इसे इस तरह परिभाषित कर सकते हैं कि "(वाक्य में प्रयुक्त) दो शब्दों/पदों के मिलने से समास बनता है। समास का एक प्रकार है– द्वंद्व समास। इसमें दोनों शब्द प्रधान होते हैं। जब दोनों भाग प्रधान होंगे तो एक-दूसरे से द्वंद्व (स्पर्धा, होड़) की संभावना होती है, तब द्वंद्व समास होता है।"

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण से व्यावहारिक व सैद्धांतिक दोनों तरह के लाभ हैं।

व्यावहारिक औचित्य

1. संदर्भ में व्याकरण सिखलाने से प्रशिक्षु को यह बोध होगा कि कोई भी भाषिक/व्याकरणिक तत्व वास्तविक भाषा-प्रयोग के धरातल पर कैसे कार्य करता है।
2. संदर्भ से *टकराते भाषा* में उसकी रुचि जगती या बढ़ती है। संदर्भ में व्याकरण सीखना अपने-आपमें रुचिकर होता है।
3. संदर्भ उसके मन में संस्कार की तरह बैठा होता है, इसी से संदर्भ में कुछ भी (व्याकरण) सीखना उसके लिए अलग से अभ्यास-साध्य नहीं रह जाता। उसे लगता है कि व्याकरण कहीं बाहर से नहीं लाया गया है।
4. जीवित प्रयोगों के संदर्भ में व्याकरण को समझना उसकी भाषा को जीवंत व *सर्जनात्मक* बनाने में मददगार होता है।

सैद्धांतिक औचित्य

1. **व्याकरण-प्रक्रिया के संगत** – संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण उस प्रक्रिया का अनुगमन करता है, जिससे किसी भाषा का (किताबी) व्याकरण बनता है, मतलब अमूर्त व्याकरण का मूर्तिकरण जिस व्याकरण-प्रक्रिया से होता है, लगभग वही प्रक्रिया (भाषा-प्रयोगों को समझने और उसके विश्लेषण) संदर्भ में व्याकरण सीखने की —

2. **संदर्भ में ही व्याकरण सीखना-सिखलाना** – यह इसलिए भी उचित है, क्योंकि व्याकरणिक कोटियों का बोध/निर्धारण या व्याकरणिक परिभाषाओं का बनना भाषा-प्रयोग के संदर्भ में ही संभव है। बिना प्रयोग के किसी शब्द-विशेष की व्याकरणिक कोटि या वर्ग बताना कभी-कभी कठिन या असंभव हो जाता है। कुछ उदाहरण —

i.	**टहलना** अच्छा व्यायाम है।	–	*(क्रियार्थक) संज्ञा*
ii.	तुम सुबह उठ कर **टहलना**।	–	*क्रिया*
iii.	मैंने **अच्छे-अच्छों** को देखा है।	–	संज्ञा
iv.	रामेश्वर **अच्छा** लड़का है।	–	*विशेषण*
v.	वह **अच्छा** पढ़ता/पढ़ती है।	–	*क्रियाविशेषण (अव्यय)*
vi.	**पानी** पीओ (यहाँ पानी एक खास पदार्थ का नाम है)।	–	द्रव्यवाचक संज्ञा
vii.	लोहा पिघल कर **पानी** हो गया (यहाँ पानी एक खास अवस्था का नाम है)।	–	द्रव्यवाचक संज्ञा
viii.	वह **पानी-पानी** हो गया (पूरी संरचना मुहावरा है)।	–	भाववाचक संज्ञा

'संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण' का अर्थ केवल इतना नहीं है, बल्कि व्याकरणिक परिभाषाओं और नियमों में निहित सामाजिक आशयों या संदर्भ के उद्घाटन से भी उस का संबंध है। यानी, एक तरफ़ सामाजिक/भाषायी संदर्भ में व्याकरण को तलाशना और दूसरी तरफ़ मौजूदा व्याकरण में सामाजिक संदर्भ की तलाश करना– उभयमुखी इस प्रक्रिया का नाम है 'संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण'। व्याकरण में ही नहीं, वरन भाषा में निहित सामाजिक आशयों को पढ़ते हुए व्याकरण-शिक्षण भी इसी का अंग है।

हाथ — एकवचन या बहुवचन

हिंदी फ़िल्मों का एक बहुत घिसा-पिटा डायलॉग है —

जज – कानून के हाथ लम्बे होते हैं।
अमिया – आप उनसे मेरी पतंग पकड़ने को कहिए न।

चित्र – सौम्या मैनन

1. कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं ।

कुछ उलझन-सी हुई जब वाक्य के बारे में ध्यान से सोचा । अर्थ तो साफ़ था । वाक्य बहुवचन में है– "लंबे होते हैं ।" से भी ऐसा ही लगता है । बात 'हाथों' की होनी चाहिए, फिर 'हाथ' क्यों? और क्रिया का रिश्ता 'कानून' से है या 'हाथ' से? बात तो कानून की हो रही है और वही वाक्य में पहले आता भी है । 'कानून के हाथ' एक टुकड़ा-सा लगता है, लेकिन हाथ एकवचन है या बहुवचन–सोचा, कुछ फेरबदलकर देखते हैं।

2. कानून की किताबें बहुत लंबी होती हैं ।

बहुत गड़बड़ घोटाला है मियाँ! क्या चक्कर है? 'हाथ' का 'हाथ' ही रहा और 'किताब' का 'किताबें' हो गया । यही नहीं, 'लंबे' की जगह 'लंबी' और 'होते' की जगह 'होती' हो गया । भाषा में लगता है कि बात निकलती है तो बहुत दूर तक जाती है। शायद वाक्य संरचना का यही अर्थ है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि 'हाथ' एकवचन भी है और बहुवचन भी– लगता तो है ।

3. एक हाथ

4. दो हाथ

5. दस लंबे-लंबे हाथ। साफ़ है–'हाथ' एकवचन भी हो सकता है और बहुवचन भी। ''कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं।'' इस वाक्य में किन बातों से पता लगता है कि हाथ प्रयोग बहुवचन में हुआ है– के, लंबे, होते हैं। ये चारों शब्द इस बात के प्रमाण हैं कि इस वाक्य में हाथ बहुवचन है। ऐसा है तो हिंदी में और भी कई ऐसे शब्द होने चाहिए। हैं भी– घर, बालक, गुलाब, गुलाबजामुन आदि। फिर वाक्य दो में क्या हो रहा है भाई! 'हाथ' के अंत में व्यंजन है और 'किताब' के अंत में भी लेकिन 'हाथ' का व्यंजन 'हाथ' और 'किताब' का 'किताबें'। कहीं लिंग का चक्कर तो नहीं? लगता तो है। 'लंबा हाथ', लेकिन 'किताब लंबी'। तो 'हाथ' पुल्लिग है और 'किताब' स्त्रीलिंग। इसलिए तो की, लंबी, होती सब स्त्रीलिंग हैं। सचमुच, बात दूर तक जाती है। सारे वाक्य पर छा जाती है लिंग और वचन की छवि। किताब जैसे भी अनेक शब्द हिंदी में भी हैं– साइकिल, बस, कार, पेंसिल आदि। सभी व्यंजन पर खत्म हो रहे हैं और सभी स्त्रीलिंग हैं। यह समझ तो हर हिंदी भाषी को होती है कि शब्द पुल्लिग हैं या स्त्रीलिंग, लेकिन यह 'हाथों' और 'किताबों' का क्या चक्कर है?

6. गब्बर के हाथों की लकीरों में क्या लिखा था?कानून की किताबों में क्या लिखा था?

क्या हिंदी में हर शब्द के दो बहुवचन होते हैं? अंग्रेज़ी में तो एक ही होता है। हिंदी में पता नहीं दो होते हैं या तीन? तुम सोचो। इस बात का जवाब तो तुम दे ही सकते हो अब कि कब और कैसे 'हाथ' (एकवचन), 'हाथ' (बहुवचन) और 'हाथों' का प्रयोग होता है। और यह भी कि हाथ और किताब में क्या अंतर है।

— रमाकांत अग्निहोत्री, 'चकमक', सितंबर-2009, पृ० 16-17

भाषा में निहित नियमबद्धता के प्रति सचेत व संवेदित करना संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का असली प्रयोजन है। इसके माध्यम से व्याकरण सूचना की वस्तु नहीं रह जाता, बल्कि अनुभूति का विषय हो जाता है। इसका बड़ा उद्देश्य है– भाषायी बारीकियों के प्रति जागरूक व संवेदित करना, ताकि समाज की अर्थवैज्ञानिक बारीकियों को समझ सकें और तदनुसार प्रयोग कर सकें– वैसी, उसके आस-पास या उसे अतिक्रमित कर नयी संरचना रच सकें, जैसे– व्युत्पति का बोध कराने से नवीन शब्द-रचना की सूझ मिलती है तथा नए अर्थ-बोध की संभावना भी विकसित होती है। जैसे– 'पर्यावरण = परि+आवरण'– इस व्युत्पति को जान लेने पर 'पर्यावरण' के सूखे अर्थ की जगह धरती के चारों ओर के किसी प्राकृतिक आवरण का बोध होगा, फिर उसपर सोचने से हमारे भीतर पर्यावरण-चेतना भी सुगबुगाने लगेगी। इस प्रकार के शिक्षण द्वारा शुद्ध भाषायी संवेदना के साथ सामाजिक संवेदनशीलता भी जगाना संभव है।

दूसरे शब्दों में, भाषायी संवेदना को सामाजिक संवेदना तक ले जाना इस प्रकार के शिक्षण का उद्देश्य है। जैसे– पहले लिंग-नियम समझा कि चाचा + ई = चाची , फिर इससे समझा कि 'चाचा' पूर्वसिद्ध है, इसलिए 'चाचा' से 'चाची' की व्युत्पति की गई, लेकिन, 'मौसी' पूर्वसिद्ध है, इसलिए उसी से 'मौसा' की व्युत्पति की जाएगी। यह तर्क खोज लिया। पर, देखा कि यहाँ भी लोग 'मौसा' + ई के सहारे 'मौसी' की व्युत्पति करते हैं। 'लड़का' व 'लड़की' तो सहसिद्ध हैं, तब भी 'लड़का' से 'लड़की' ही क्यों व्युत्पन्न होता रहा ? इससे अर्थ निकाला कि समाज की मानसिकता किस प्रकार पुरुष-वर्चस्व से आक्रांत है। इसी तरह अबतक के व्याकरणिक विवेचन, कोटिकरण तथा वैयाकरणों के प्रतिपादनों व उदाहरणों में निहित पितृसत्ता, जातिवाद, वर्ग-मानसिकता को भी खंगालना, पूरी भाषा के वर्ग, लिंग, जातिगत चरित्र की जाँच करना इस प्रकार के शिक्षण का बड़ा निहितार्थ है।

> *"इससे व्याकरण-दर्शन को जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन तक ले जाने में मदद मिलती है। प्रत्येक बच्चा जिस विश्व में पैदा होता है उसे खोजना प्रारंभ करता है। यह जिज्ञासा 'जन्मजात' होती है। भाषा इसका मुख्य उपकरण बनती है।"*
>
> *— जार्ज केली*

हम पिछली इकाई में यह जान चुके हैं कि भाषा-व्यवहार साथ-साथ चलने वाली दो प्रक्रियाओं में कार्य करता है– *बाह्य व आंतरिक*। पर, आमतौर पर हम यही समझते हैं कि भाषा का कुल मतलब है– सुनना और बोलना (मौखिक) तथा पढ़ना और लिखना

(लिखित)। परंतु, ये बाह्य प्रक्रियाएँ न हों, यदि इनके आधार व परिणति रूप में आंतरिक प्रक्रियाएँ न हों। उदाहरण के तौर पर सुनने को ले सकते हैं। भाषा-व्यवहार में सुनना पहली सीढ़ी है। भाषा सुनकर ग्रहण की जाती है– यह बात सही होने पर भी पूरी तरह सही नहीं है। सुनने का मतलब सिर्फ़ सुनना नहीं है। सुनने का कोई अर्थ नहीं रहेगा, यदि हम उसे समझ या उसपर सोच न सकें। फिर, मूल बात यह है कि सुनना भी बिना समझे थोड़े होता है ? हम अपने आस-पास असंख्य प्रकार की ध्वनियाँ सुनते रहते हैं, पर सबको तो भाषा का हिस्सा नहीं मानते। दो-ढाई साल के बच्चे भी ध्वनियों के संसार में रहते हैं, तो क्या वे सभी ध्वनियों का उच्चारण करने लगते हैं ? बच्चे के आस-पास बरतनों के टकराने, कुतों के भूँकने, गाय के रँभाने, चिड़ियों के चहचहाने, रेडियो-टी.वी. की आवाज़ें, गाड़ियों के हॉर्न, व्यक्तियों की बातें आदि अनेक प्रकार की ध्वनियाँ मौजूद रहती हैं, लेकिन वह वही ध्वनियाँ ग्रहण करता है, जिससे उनके काम सधते हैं।

प्रारंभ में बच्चे को सुनने का अवसर मिलता है, तो उसके मस्तिष्क में ध्वनि-बिंब बनते हैं, इसी प्रक्रिया से वह दो ध्वनियों में अंतर समझने लगता है, फिर धीरे-धीरे उच्चारण भी करने लगता है। वे मानवीय व्यवहार की साधक ध्वनियों में से भी उन्हीं ध्वनियों को चुनते हैं, जो उनके लायक ज़रूरी चीज़ों से संबद्ध कथ्य-रचना करते हैं। सबसे पहले कुछ ठोस ज़रूरतों (शारीरिक आवश्यकताओं) की पूर्ति से जुड़ी ध्वनियों को ग्रहण करते हैं, तब कुछ सूक्ष्म आवश्यकताओं के लिहाज़ से (जैसे अपने खानपान से संबद्ध) भाषायी प्रयोगों में पहले जागरूक होते हैं, फिर जिससे काम चलता है उस व्यक्ति से जुड़े भाषायी तत्वों को पकड़ते हैं, तब किसी मानवेतर ध्वनि को। यानी, वे सुनी गई ध्वनियों का विश्लेषण करते हैं। उनमें से उपयोगी कथ्य से संबद्ध ध्वनियों को ग्रहण करके प्रयुक्त करते हैं। इस बात को कहने का मतलब है कि सुनने में सोचने-समझने की प्रक्रिया शामिल रहती है।

सुनने की तरह पढ़ना भी है। हम जो कुछ पढ़ते हैं, वह समझ-बूझकर ही पढ़ते हैं या पढ़ने का अर्थ समझना होता है। हम जो कुछ बोलते या लिखते हैं, उसके पीछे भी सोचने और समझने की क्रिया होती है। यानी, भाषायी व्यवहार के बाहरी रूपों (सुनना-पढ़ना-बोलना-लिखना) के पीछे आंतरिक प्रक्रियाओं (चिंतन व बोध) का योगदान है और इन बाहरी रूपों का लक्ष्य भी आंतरिक प्रक्रियाओं (चिंतन व बोध) में उनकी परिणति है।

5.2 — भाषायी क्षमताएँ

हम सुचारु रूप में भाषा-व्यवहार कर सकें, वह स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण व प्रभावशाली बने– इसके लिए भाषायी कौशलों को साधना अपेक्षित है। 'कौशल' शब्द 'कुशल' से बना है, जिसके पर्याय हैं – दक्षता, प्रवीणता आदि।

भाषा के संदर्भ में कौशल **चार आयामों** में रेखांकित किए गए हैं – सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। यानी, अब तक कौशलों का विचार मुख्यत: बाहरी प्रक्रियाओं (सुनना-पढ़ना-बोलना-लिखना) के संदर्भ में ही हुआ है । यदि सोचना (चिंतन) और समझना (बोध) न होता तो यह तो स्पष्ट है कि ये न होते। लेकिन, सवाल है कि जिस तरह पढ़ने के कौशल होते हैं, उसी तरह क्या सोचने-समझने के भी कोई कौशल हो सकते हैं? क्या कोई तकनीक है, जिसके ज़रिये सोचने-समझने के कार्य दक्षतापूर्वक किए जा सकते हैं? सवाल है कि प्रयास करके किसी व्यक्ति को क्या अधिक चिंतनशील नहीं बनाया जा सकता है ? उसे समुचित व क्रमबद्ध रीति से चिंतन करने और ध्यान की एकाग्रता को बनाए रखने की शिक्षा क्या नहीं दी जा सकती? अवश्य दी जा सकती है। इसी तरह, साहित्यिक विधाओं (कविता-नाटक आदि) या साहित्येतर पाठों को समझने/ बोधित करने की अलग-अलग प्रविधियाँ भी होती हैं, जिन्हें बिना सीखे हम जान ही नहीं सकते।

हर कौशल का अपना महत्व है और कुछ हद तक स्वतंत्र भी। पर, एक सीमा के बाद ये सभी पारस्परिकता में कार्य करने लगते हैं । ये प्रक्रियाएँ भले अलग-अलग-सी व्याख्यायित होती रही हैं, पर वस्तुत: ये आपस में जुड़ी हुई हैं और साथ-साथ चलती हैं। जिस तरह समझना और समझाना अलग-अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं, बल्कि चेतना की एक ही क्रिया की दो अभिव्यक्तियाँ भर हैं, उसी तरह लिखना और पढ़ना या बोलना और सुनना एकाकी कार्य नहीं हैं। हम जब बोलते हैं, तब स्वयं सुन भी तो रहे होते हैं अथवा जब हम लिखते हैं, तो स्वयं पढ़ भी तो रहे होते हैं और कभी-कभी बोल भी रहे होते हैं। इसी तरह, किसी को सुनते या किसी का कुछ पढ़ते बीच-बीच में या समय-समय पर हम कुछ बोलते या लिखते भी हैं। इसी तरह, लेखन-कौशल से जुड़े अभ्यास 'श्रुतलेख' के दौरान हम वक्ता के उच्चारण को शुद्ध रूप में सुनने का भी अभ्यास करते हैं तथा 'अनुलेख' में बोर्ड या किताब में लिखित अंश का पठन भी करते हैं। अक्षरों या शब्दों का पढ़ना सीखना भी लिखने की प्रक्रिया में योगदान देता है। निष्कर्ष यह है कि ये चारों कौशल परस्पर उपकारक-उपकार्य की भूमिका में रहते हैं। इन चारों को अलग-अलग देखने की वजह से ही शिक्षण-प्रक्रिया बोझिल, उबाऊ एवं बार-बार रटने वाली हो जाती है।

कौशल का विकास करना अभ्यास का विषय माना जाता है, लेकिन इसमें समझने की भूमिका का अपना महत्व है। किन बातों का अभ्यास करना है– यह चयन का विषय है और चुनाव बिना समझ के नहीं हो सकता।

भाषायी कौशलों का अभ्यास सरलरेखीय रूप में भी हो सकता है (यानी, एक कौशल से शुरू करके क्रमश: अन्य कौशलों की ओर बढ़ना–सुनने से शुरू करके लिखने तक पहुँचना) और वृतीय रूप में भी (एक कौशल के साथ दूसरे कौशल को सहयोगी बनाकर एक साथ अभ्यास)। यह सही है कि बोलने से पहले सुनना विकसित होता है, लेकिन यह भी सही है कि बोलने पर दूसरों की प्रतिक्रियाएँ हमें सुनने के प्रति अधिक सचेत बनाती हैं। मान लीजिए, कोई लड़का/लड़की अपने साथियों को कोई गीत सुना रहा/रही है, जो उसने रेडियो पर सुना था। उसके साथियों को लगता है कि गीत में कुछ शब्द उसने बदल दिए हैं। वे इसके लिए उस लड़के/लड़की को टोकते हैं। साथियों की यह प्रतिक्रिया उसे आगे ध्यान से सुनने के लिए प्रेरित करती है। **सुनना और बोलना भाषा के बुनियादी कौशल हैं।** किंतु, परंपरागत पद्धति से शिक्षण और लेखन-आधारित परीक्षा-प्रणाली के चलते इन कौशलों का महत्व समझा नहीं जाता। खासकर, सुनने का कौशल तो बुरी तरह उपेक्षित रह गया है।

भाषा-शिक्षण की कक्षा

भाषा का प्रयोग एक बात है और कौशल के साथ भाषा का प्रयोग दूसरी बात है। भाषायी कौशल के विकास का क्षेत्र वैसे तो पूरा समाज है, पर औपचारिक ढंग के विद्यालय की ज़िम्मेदारी प्रत्यक्ष और बड़ी होती है।

भाषा सिखलाने की कक्षा में आमतौर पर उसके व्याकरणिक ढाँचे के शिक्षण पर ज़ोर दिया जाता है। फिर, थोड़ा बाहर निकले, तो खास तरह के नैतिक मूल्यों का विकास भी उसका एक उद्देश्य निर्धारित किया जाता है। इस दौरान, सामाजिक संदर्भों, शब्दावली या बच्चों की आपसी बातचीत, कविता-कहानी-चुटकुलों आदि का कोई स्थान नहीं रह जाता। भाषा सिखाने के केंद्रीभूत लक्ष्य लिपि-वर्तनी, सुंदर लिखाई व व्याकरण बन जाते हैं। इतना ही नहीं, भाषा की कक्षा में भाषा से खेलने, उसमें डूबने, उसे महसूस करने और आत्मसात् करने का अवसर ही नहीं मिलता।

व्याकरणिक ढाँचे को भी संदर्भ में और समग्र रूप में सिखलाने की जगह, संदर्भ से काटकर, नियमों की व्यवस्था के रूप में भाषा को टुकड़ों-टुकड़ों व चरण-दर-चरण सिखलाया जाता है। जैसे– ध्वनि/शब्दों के शुद्ध उच्चारण, वर्णों/शब्दों को उचित आकार, उचित क्रम में लिखने की क्षमता विकसित करना, विरामादि चिह्नों का प्रयोग, वाक्य पढ़ने की क्षमता का विकास, व्याकरण का सटीक उपयोग आदि।

आमतौर पर, भाषा सिखाने का तात्पर्य तो समझा जाता है कि सुनना, बोलना, पढ़ने व लिखने के कौशल का विकास करना है। पर, इन कौशलों की साझेदारी को भंग करके इन्हें अलग-अलग कर दिया जाता है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि पढ़ने का मतलब हो जाता है वर्णों को पहचानना और उनका उच्चारण कर पाना। इसी कारण, अकसर स्कूली बच्चे पढ़ने के नाम पर वर्णमाला को रटते रहते हैं– यहाँ तक कि कविता-कहानी आदि को शब्दश: दोहराते रहते हैं।

परंपरागत शिक्षण में वर्णों व शब्दों की पहचान पर ही केंद्रित रहना इतना अधिक होता है कि वाक्य का अर्थ ही लुप्त हो जाता है। लिखने को भी एक स्वतंत्र कौशल की तरह समझा जाता है और मशीनी तरीके से, नकल करके लिखना सिखाया जाता है। यह बात पूरी तरह से भुला दी जाती है कि भाषा-शिक्षण की कक्षाओं का उद्देश्य है– बच्चे अपनी बात को कह सकें, दूसरों की बातें सुन/पढ़ कर अपनी टिप्पणी दे सकें, कहानियों-कविताओं आदि को पढ़कर उनका रसास्वादन कर सकें। साथ ही, उन कहानियों-कविताओं को अपने साथ जोड़ सकें। जब बच्चे स्कूल में प्रवेश करते हैं, तो उनके भीतर अपने आस-पास के परिवेश और दुनिया को लेकर अनेक तरह के सवाल होते हैं, जो उन्हें भीतर ही भीतर बेचैन करते रहते हैं। वे मन-ही-मन कुछ अनुमानित जवाब भी तैयार करते और उन्हें मिटाते-बनाते-सुधारते रहते हैं। अगर उनके सवालों व जवाबों को उनकी अपनी ज़ुबान दी जा सके तो वह भाषा की कक्षा की सार्थकता होगी। वे अपने साथियों व अध्यापक/अध्यापिका से बातें करने के लिए कसमसाते रहते हैं।

अध्ययन-अध्यापन के लिए बातचीत एक संसाधन बन सकते हैं। उन्हें छोटी-छोटी टोलियों में बाँट कर बातचीत का अवसर दिया जाए, तो क्या ही अच्छा हो ! यदि पढ़ना-लिखना उनके अनुभव और बातचीत से शुरू किए जाएँगे, तो न सिर्फ़ उनके लिए सहज-रोचक और अर्थपूर्ण होंगे, बल्कि सिखलाने की प्रक्रिया भी आसान और टिकाऊ होगी। भाषा की कक्षा में इन्हें करके देखें —

1. पढ़ने-लिखने की सामग्री सार्थक और प्रासंगिक हो।
2. वह विद्यार्थियों की परिचित भाषा में, उनके स्तर की हो।
3. शिक्षक-शिक्षिका उनके साथ सार्थक संवाद करें। उनकी बातों को प्यार से सुनें।
4. उन्हें लोगों की सुनी बातों पर ध्यान दिलाते हुए, उनमें भाषा की विशेषताओं व व्याकरणिक व्यवस्थाओं के अन्वेषण की ओर प्रेरित किया जाए।
5. भाषा सीखने का एक ही तरीका है– उसका अधिक से अधिक उपयोग (बोलना, तर्क करना, कल्पना करना, सृजन करना) किया जाए। उसे उच्चारण-व्याकरण आदि में बाँट कर सीखने-सिखलाने का कोई मतलब नहीं। अगर ऐसा सिखलाना भी हो, तो समग्र रूप में सिखलाना चाहिए और तत्संबद्ध चारों कौशलों का सहवर्ती विकास होता है।

6. शिक्षक-शिक्षिका द्वारा भाषायी कौशलों के विकास हेतु **पाठ-योजना (Lesson-plan)** बनाकर कक्षा में जाने से शिक्षण अधिक मूलगामी और कारगर साबित होता है।

भाषा-कक्षा के बहुभाषिक रंग और भाषा-शिक्षण की चुनौतियाँ

भारत सामाजिक-सांस्कृतिक और भाषिक दृष्टि से विविधताओं से संपन्न देश है। बहु-सांस्कृतिकता और उससे प्रेरित बहुभाषिकता का यह गुण कभी-कभी एक ही कक्षा में प्रतिच्छवित होने लगता है। इसे दोष न मानकर विशेषता के रूप में ग्रहण करना और स्कूली शिक्षा में एक संसाधन की तरह इसका इस्तेमाल करना चाहिए।

भारतीय कक्षाओं में बोली जाने वाली किसी एक ही भाषा के स्वरूप में भी वैविध्य मिलता है। उदाहरण के लिए हिंदी के ही विविध रूप देखे जा सकते हैं। यह वैविध्य विभाषायी तत्व, लहज़ा और शैली के अंतर से आता है, जिनका विस्तार से विवेचन पिछली इकाई में हो चुका है। कक्षाओं की बहु-भाषिकता के कारण भाषा-शिक्षक को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे —

- बच्चों की भाषिक पृष्ठभूमि की पहचान कराना।
- बच्चों की मातृभाषा की आवश्यक आधारभूत जानकारी।
- यह पूर्वानुमान लगाने की क्षमता कि उसकी कक्षा के कौन से बच्चों को हिंदी भाषा सीखते हुए किस तरह की चुनौतियों से गुज़रना पड़ सकता है और उन चुनौतियों के आधार पर अपनी कक्षायी प्रक्रिया को रूप-आकार देना।
- भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी बच्चों के लिए शिक्षण-शास्त्रीय पद्धतियों का निर्धारण करना।

इन सबके साथ, एक जटिल चुनौती है– बच्चे की भाषायी अस्मिता को कक्षा में उचित स्थान देना। कई बार ऐसा होता है कि बच्चे की घरेलू भाषा या मातृभाषा, हिंदी सीखते समय उसपर अपना प्रभाव छोड़ती है और क्यों न हो! यह मातृभाषा ही है जिसका संस्कार बच्चा स्कूल में आने से पहले ही ग्रहण कर लेता है तथा जो उसके अबतक के चिंतन-मनन की प्रक्रिया का सहगामी रहा है। इतने वर्षों में जो बच्चे ने भाषायी कुशलता अर्जित की है, वही उसके अपने भाषायी समुदाय से जुड़ने, अंत:क्रिया या संवाद करने, चीज़ों, घटनाओं के अपने अर्थ या मायने गढ़ने का साधन है। अत: हिंदी भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बच्चे की घरेलू भाषा या मातृभाषा के प्रभाव को समाप्त करना इस लिहाज़ से घातक सिद्ध हो सकता है कि कहीं हम उसे ही सदा के लिए खामोश न कर दें।

जब बच्चे स्कूल आते हैं तो घर की भाषा और स्कूल की भाषा के बीच एक द्वंद्व शुरू हो जाता है। भाषा और बोली का अंतर इस कदर लोगों के चित्त में बैठा हुआ है कि शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा प्रयुक्त की गई घरेलू भाषा को बोली के दायरे में मानकर उसे हीन दरजे की चीज़ मानते हैं। विद्यालय में प्रवेश के साथ ही उनकी घरेलू भाषा को भुलाने के प्रयास शुरू हो जाते हैं और एक मानक भाषा के द्वारा उसके विस्थापन का प्रयास शुरू हो जाता है। इससे बच्चों के दिमाग में एक उलझन शुरू हो जाती है कि जो भाषा घर-परिवार में अभिव्यक्ति का साधन है, वह स्कूल में आकर गलत कैसे हो जाती है? बच्चों को उनकी घरेलू भाषा (मातृभाषा) से काटना उनकी पहचान से उन्हें काटना है। इससे वे स्कूल के प्रति अविश्वास से भर जाते हैं। होना यह चाहिए कि भाषा-शिक्षण में बच्चों की मातृभाषा को एक आधार-सामग्री की तरह मानकर उसका उपयोग किया जाए। बार-बार रोकने-टोकने पर बच्चे अपनी घरेलू भाषा में बातचीत करना ही नहीं, बातचीत ही करना बंद कर देते हैं, जो उनके भाषा-शिक्षण के प्रारंभिक दौर के लिए बड़ा घातक होता है।

भाषा-शिक्षण के द्वारा हम बच्चे की जिन क्षमताओं को विकसित करना चाहते हैं (जैसे– सोचना-विचारना, तर्क व विश्लेषण करना), वे सब उनकी अपनी घरेलू भाषा में भी आसानी से विकसित हो सकती हैं। फिर, ये सारी क्षमताएँ दूसरी भाषा (जिसे वे ज़रूरत के हिसाब से बाद में सीखेंगे) में स्थानांतरित किया जा सकता है।

कक्षा में सभी बच्चों को अपने मन की बात कहने का भरपूर अवसर देना चाहिए, ताकि उनके भीतर छिपी संभावना आकार ले सके। अगर वे शुरू में घरेलू भाषा या टूटी-फूटी/अमानक हिंदी भी बोलें, तो भी बिना मज़ाक का पात्र बनाए कक्षा में उन्हें उत्साह से सुनना चाहिए। शुरुआत में भाषा की कारीगरी या तथाकथित शुद्धता उतनी महत्व नहीं रखती, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण है बच्चे को सबके सामने बोलने, कुछ कहने लायक बनाना और मन के भाव-विचार को निस्संकोच कह डालना, अगर समर्थन न किया जाए, तो उनका आत्मविश्वास टूट जाएगा और वे संकोच के अँधेरे में दुबक कर बैठ जाएँगे।

अनेक बार ऐसा भी होता है कि बच्चे की मातृभाषा में ढले, रचे-बसे उच्चारण-अवयव जब हिंदी की भाषिक ध्वनियों को स्वर देने की कोशिश करते हैं तो उनके लिए यह अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसी तरह हिंदी भाषा-भाषी बच्चों के लिए पूर्वी भारत की भाषाओं की ध्वनियों को उच्चरित करना अपेक्षाकृत कठिन है। अत: एक भाषा-शिक्षक को इन सभी के प्रति बेहद संवेदनशील रवैया अपनाना चाहिए। मातृभाषा या भाषा के क्षेत्रीय प्रभाव को बोलने की एक अक्षम्य त्रुटि मानते हुए उन्हें प्रताड़ित या दंडित नहीं करना चाहिए। कथित शुद्ध उच्चारण के कठोर आतंक या दुराग्रह के कारण कई बार बच्चे हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और यही हीन भावना बच्चे द्वारा भाषा सीखने के उत्साह को दमित करती है और ऊर्जा से भरपूर बच्चे को ऊर्जाविहीन कर देती है। अत: हिंदी भाषा

बोलते समय विभाषायी तत्व और लहज़े में आने वाले अंतर को भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का एक हिस्सा मानते हुए स्वीकार करना चाहिए। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि यह अंतर कहीं अर्थ का अनर्थ न कर दे या फिर अभिव्यक्ति ऐसी न हो कि कथ्य अपने गलत रूप में दूसरे तक संप्रेषित हो जाए।

5.2.1 सुनना

हमारे जीवन में सुनने से संबद्ध कौशल का विकास जन्म से ही आरंभ हो जाता है, जो आजीवन चलता रहता है। हम बहुत सारा ज्ञान सुनकर ही उपलब्ध करते हैं। शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का यह भी विचार है कि हम सुनकर जिस आसानी और तेज़ी से ज्ञान अर्जित करते हैं, उतना पढ़ कर नहीं। (हर दिन) लोगों की बातचीत के अलावा भी हम बहुत कुछ भाषिक श्रवण करते हैं, जैसे– रेडियो, टी.वी. के कार्यक्रम, टेलीफ़ोन (मोबाइल फ़ोन), सांस्कृतिक कार्यक्रम, मैच का आँखों-देखा हाल, आई.पैड से गाने, सिनेमा आदि। ध्यान और धैर्य के साथ सुनने वाला व्यक्ति ही अच्छा विचारक व वक्ता हो सकता है और गहन पाठक भी। अत: श्रवण-कौशल का महत्व पुन: प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है।

अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि भाषा-शिक्षण के संदर्भ में श्रवण का अर्थ ध्वनि-मात्र को सुन लेना भर नहीं है, बल्कि सुनकर उसका भाव-ग्रहण करना ही इसका वास्तविक अर्थ है। अत:, सुनना एक मानसिक क्रिया है। वक्ता द्वारा व्यक्त किए गए भाव व विचार मूल रूप में श्रोता तक संप्रेषित हों, तभी वक्तव्य की सार्थकता है। संप्रेषित होने का तात्पर्य श्रोता के बोध/समझ में आने से है।

> *"श्रवण में किसी कथन को ध्यान-पूर्वक सुनने, सुनी हुई बात पर चिंतन-मनन करने, अपना मंतव्य स्थिर करने और तद्नुसार आचरण या व्यवहार करने जैसी जटिल प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।"*
>
> — *'मातृभाषा हिंदी-शिक्षण', एन.सी.ई.आर.टी.*

'सुनना' के मायने

- परिचित-अपरिचित संदर्भों में व्यक्त भावों/विचारों को सुनकर समझना।
- वक्ता के आदेश, निर्देश, सुझाव एवं विभिन्न मनोभावों को सुनकर समझना।
- वक्ता/शिक्षक-शिक्षिका द्वारा प्रस्तुत वक्तव्य का पुन:स्मरण करना और उसपर विचार करना।

- रेडियो, दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को सुनकर उनका विश्लेषण करना और टिप्पणी देना।
- सुनी गई कहानी, कविता, भाषण, वार्ता, साक्षात्कार, विचार-विमर्श, वाद-विवाद आदि पर अपनी राय देना या उनपर आधारित प्रश्नों के जवाब देना।
- संदर्भानुसार विभिन्न अनुतानों (उतार-चढ़ाव) में व्यक्त विचारों को सही रूप में समझना।

श्रवण-कौशल का महत्व

कक्षा में शिक्षक-शिक्षिका द्वारा दिए गए आदेश, निर्देश, सुझाव आदि को सुनकर समझना सीखने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सबसे अधिक इसका महत्व वाद-विवाद प्रतियोगिताओं व संगोष्ठियों/परिसंवादों (सेमिनारों) में अनुभूत होता है। अपने पूर्व के वक्ताओं को अगर ठीक से नहीं सुनेंगे, तो अपने वक्तव्य में उनका समाहार या खंडन कैसे कर सकेंगे ? हमारी जीवन-दृष्टि लोकतांत्रिक होनी चाहिए, उसके अनुसार हर व्यक्ति के विचार को हमें आदर के साथ सुनना-समझना चाहिए।

हम सुनी गई/जा रही सामग्री को अपने पूर्वानुभव के संदर्भ में ही समझते या उसपर चिंतन-मनन करते हैं। वक्ता का मनोभाव (विस्मय, हर्ष, क्रोध, घृणा, प्रेम आदि) भी वक्तव्य के अर्थ में संपृक्त होता है। अत: अच्छा श्रोता वही है, जो बोलने वाले के मनोभाव को समझते हुए उसे सुने। श्रोता यदि वक्ता की मन:स्थिति और उसके बोलने के संदर्भ से परिचित है तो उसे संप्रेष्य विचार या भाव को समझने में आसानी होती है। उदाहरण के लिए, माँ किसी बात पर बहुत गुस्से में बच्चे को डाँट देती है या बुरा-भला कह देती है, लेकिन बच्चा जानता है कि माँ अभी बहुत गुस्से में है। उसने जो कुछ बुरा-भला कहा, शायद उसमें उसकी ही भलाई हो। तीव्र आवेग की मनोदशा में माँ ने जो कुछ कहा, उसके शब्दार्थ में न उलझने की ज़रूरत है, न उस पर तुरंत तीखी प्रतिक्रिया देने की।

जब हम सुनते हैं तो साथ-साथ सुनी गई बातों, विचारों का विश्लेषण भी करते हैं। सुनने की प्रक्रिया में मस्तिष्क बड़ी तीव्र गति से कार्य करता है। विचारों को सुनते-सुनते विश्लेषण करने के साथ हम उसपर अपना मत भी स्थिर करते चलते हैं। इसका परिणाम होता है– हमारी स्वत:स्फूर्त प्रतिक्रिया। प्रतिक्रिया स्वरूप जब हम यह मन-ही-मन सोचते या कहते हैं —

- नहीं, ऐसा तो नहीं है!
- अच्छा, ऐसा भी होता है!
- हाँ, बिलकुल ठीक है!

- ऐसा किसने कह दिया?
- तुम आज तो ऐसा कह रहे/रही हो, लेकिन कल तो कुछ अलग कह रहे थे। फिर, जब स्थितियाँ बदलेंगी तो कुछ और कहोगे/कहेगी।
- अरे ! इतना भड़कने/उतेजित होने की ज़रूरत नहीं है।

प्रतिक्रियाओं की सूची और लंबी हो सकती है। यदि गहन दृष्टि से इन प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करें तो इनसे निम्नलिखित मानसिक संक्रियाएँ स्पष्ट होती हैं, जो अकसर सुनते समय सक्रिय होती हैं —

- अस्वीकृति का भाव या विचार को नकारना।
- आश्चर्य का भाव।
- स्वीकृति या सहमति।
- शंका, संदेह।
- वक्ता की बात का सम्मान करते हुए व्यक्त विचार की समय-बद्धता को पहचानना।
- व्यक्त विचार के प्रति सम्मान या अस्वीकृति का भाव रखते हुए भी सुझाव देना।

इन प्रतिक्रियाओं में ही सुनने के कौशल में शामिल 'समझ' तत्व की झलक मिलती है। श्रोता की प्रतिक्रियाएँ इस ओर संकेत करती हैं कि उसने व्यक्त विचारों, भावों को कितनी गहराई से और किस रूप में समझा है। जहाँ यह 'समझ' धुँधली-सी होने लगती है या सही-सही-सी नहीं लगती तो वक्ता की तुरंत प्रतिक्रिया होती है–

- क्या सुन रहे हो तुम?
- तुम सुन भी रहे हो, मैं क्या कह रहा हूँ?
- अरे, मैं यह नहीं कह रहा, मैं तो कह रहा था...
- मेरा यह मतलब नहीं है... आदि।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रभावी वक्ता बनने के लिए गंभीर, सजग श्रोता होना ज़रूरी है। इस प्रकार सुनने के कौशल में शामिल हैं —

- व्यक्त विचारों/भावों को ध्यान से सुनना
- विश्लेषण करना
- टिप्पणी करना
- अपना मत या राय बनाना

एक अच्छे श्रोता के लिए यह समझना आवश्यक होता है कि वक्ता ने प्रस्तुत बात—

- किस मंतव्य से कही ?
- क्यों कही ?
- प्रस्तुत बात उसकी किस सामाजिक दशा व मनोविज्ञान को दर्शाती है?
- प्रस्तुत बात में कितनी सच्चाई है?
- क्या वक्ता बात कहने के लिए ठोस तर्क प्रस्तुत कर पाया है?
- बात में सार तत्व कितना है ? आदि।

अपनी बात कहने के लिए अधीर होना दूसरे की बात को सुनने से रोकता है। अत:, श्रोता का शिष्टाचार हम में होना चाहिए। सुनते समय अगर हमारा मन श्रोतव्य विषय से कहीं अन्यत्र भटक जाए, तो सुनना हमारे लिए निरर्थक हो जाता है। इसलिए, **श्रवण-कौशल का आधारभूत तत्व है– सुनते समय धैर्य और एकाग्रचितता।**

समावेशी कक्षा में भाषा से रूबरू

वह शैशवकाल में ही देखने और सुनने की क्षमता खो बैठी थी। उसे उँगलियों से वर्तनी सिखाने के, भाषा के माध्यम से अपनी इच्छाएँ प्रकट करना सिखाने के सभी तरीके व्यर्थ चले गए थे। एक दिन केलर को भाषा के एक अन्य प्रयोग का बोध हुआ, वह उसकी एक अन्य आवश्यकता पूरी कर सकती थी। यहाँ जो कुछ घटा उसका विवरण दिया जा रहा है–

वह (उसकी अध्यापिका) मेरे लिए मेरा हैट लेकर आई । मुझे मालूम था कि मैं धूप सेंकने जा रही हूँ। बिना शब्दों के अनुभव करना संभव है तो इस आधार पर इसे विचार कहा जा सकता है। मेरा मन खुशी से कुलाँचे भरने लगा । हम लोग मधुमालती की खुशबू से आकर्षित होकर कुएँ की ओर जाने वाले रास्ते पर गए। यह रास्ता मधुमालती की लताओं से भरा था । कोई पानी खींच रहा था। मेरी अध्यापिका ने मेरा हाथ धारा में कर दिया । जैसे ही मेरे हाथ पर ठंडे पानी की धारा पड़ी, मेरी अध्यापिका ने दूसरे हाथ पर वाटर (पानी) लिख दिया, पहले धीरे-धीरे, फिर तेज़ गति से। मैं मूर्तिवत खड़ी थी। मेरा पूरा-का-पूरा ध्यान उनकी उँगली की गति पर केंद्रित था। अचानक मेरी चेतना में कुछ भूला हुआ उभरा ।... और इस तरह भाषा के रहस्य से मेरा परिचय हुआ । तब मुझे पता चला कि डब्ल्यू.ए.टी.ई.आर. का अर्थ

है वह ठंडी-ठंडी आश्चर्यजनक वस्तु जो मेरे हाथों पर बह रही है। उस जीवित शब्द ने मेरी आत्मा को जगा दिया, उसे प्रकाश से, आशा से, खुशी से भर दिया, स्वतंत्र कर दिया। यह सच है कि बाधाएँ अभी भी समाप्त नहीं हुई थीं। पर ये बाधाएँ ऐसी थीं जो समय के साथ-साथ दूर हो सकती थीं ।

मैंने कुआँ तो पीछे छोड़ दिया, पर अब मैं सीखने की जिज्ञासा से भरी हुई थी। प्रत्येक वस्तु का नाम था और प्रत्येक नाम एक नए विचार को जन्म देता है । जब हम वापस लौटे तो मैं जिस भी वस्तु को छूती वही मुझे जीवन में कंपायमान प्रतीत हो रही थी । ऐसा इसलिए था कि मैं सभी वस्तुओं को उस नई आश्चर्यजनक दृष्टि से देख रही थी जो मुझे मिल गई थी।

5.2.2 बोलना (मौखिक अभिव्यक्ति)

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है– बोलने का अर्थ मुँह चलाना भर नहीं है, बल्कि अपने भाव/विचार को स्पष्ट-प्रभावी और प्रवाहपूर्ण भाषा में बोलकर अभिव्यक्त करना है, जो सामने वाले/वालों को स्पष्ट समझ में आ जाए। अपनी बात को प्रकट करने का सबसे पुराना व प्रचलित तरीका बोलचाल ही है। सभ्यता का बहुत बड़ा दौर बोलने व सुनने की प्रक्रिया के ज़रिये ही ज्ञान का विकास व संरक्षण करता रहा है।

मौखिक अभिव्यक्ति के लिए दो पक्ष अपेक्षित हैं– **वक्ता और श्रोता**। परंतु, कभी-कभी अकेला वक्ता भी पर्याप्त होता है। ऐसा तब होता है, जब चिंतन करता या अंतर्द्वंद्व में रहता है। तब वह आत्मालाप के रूप में बोलता है। वहाँ पर उसका व्यक्तित्व दो भागों में बँट कर वक्ता और श्रोता की भूमिका निभाता है, एक ही साथ, न कि एक के बाद एक। पर, यह तब भी होता है, जब हमारे सामने कोई श्रोता उपस्थिति रहता है। हम तब भी अपनी बात के श्रोता तो रहते ही हैं। 'बोलना' कौशल में दो बातें प्रमुख हैं —

- क्या कहना है ?
- कैसे कहना है ?

'बोलना' के मायने

- स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति।
- अपनी बात को आत्मविश्वास से कहना।
- विचारों में सुसंगत क्रमबद्धता का विकास।

- आँखों-देखी, सुनी घटनाओं, किस्सों को अपने शब्दों में प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करना।
- पढ़ी गई सामग्री को सार रूप में व्यक्त करने की कुशलता।
- परिचित, अपरिचित परिस्थितियों, संदर्भों में स्पष्ट एवं प्रभावी रूप से अपनी बात कहना।
- दूरदर्शन, रंगमंच पर देखे गए कार्यक्रमों का विश्लेषण करते हुए उनके बारे में बताना।
- विभिन्न पाठ्यचर्या-सहगामी क्रियाकलापों में (अंत्याक्षरी, वाद-विवाद, भाषण, आशुभाषण, कविता पाठ, कहानी कथन, समाचार-वाचन आदि) में सक्रिय भागीदारी।
- किसी दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम को अपनी आवाज़ देना।
- शब्दों-वाक्यों का उचित चयन करते हुए अपनी बात कहने की कुशलता।

जब हम बोलते हैं तो अपने मस्तिष्क में संप्रेष्य विचार/भाव-सामग्री गढ़ते चलते हैं और उसे वाणी द्वारा व्यक्त करते चलते हैं। बोले गए वाक्य के पहले पद से लेकर अंतिम पद तक की यात्रा के बीच के सभी पड़ावों को याद रखना भी ज़रूरी है। अन्यथा बात शुरू कहीं से होगी और खत्म कहीं होगी। आइए, इसे एक उदाहरण से समझते हैं —

सातवीं कक्षा में पाँचवीं घंटी हिंदी भाषा की थी। मोनिका कहानी सुना रही थी। कहानी सुनाते-सुनाते उसके मुँह से यह वाक्य निकला–"बस फिर क्या था, चारों बच्चों ने गेंद को खोजने लगे।" मोनिका के मस्तिष्क में 'चारों बच्चों ने' पूर्ण भूतकालिक क्रिया की संरचना चल रही थी कि अचानक वह 'गेंद को खोजने लगे' की वाक्य-संरचना पर आ गई। यह एक वाक्य दो अलग तरह की संरचनाओं का मिश्रण है —

चारों बच्चों ने गेंद को खोजा।
चारों बच्चे गेंद को खोजने लगे।

वाक्य संरचना का यह मिश्रण तब प्रकट होता है जब मस्तिष्क में विचार बहुत तीव्र गति से व्यक्त होने को आकुल-व्याकुल रहते हैं। इस आकुलता-व्याकुलता के कारण एक ही विचार अलग-अलग तरीकों से व्यक्त होने की संरचनाएँ बनाने लगता है। इतना ही नहीं बोलते समय हम अपने द्वारा व्यक्त विचारों का अनुश्रवण भी करते हैं। अपनी कही गई बात को फिर से नए सिरे से कहना इसी अनुश्रवण का परिणाम है। मौखिक अभिव्यक्ति के समय हम विश्लेषण करने, टिप्पणी देने, तर्क करने, उदाहरण देने का कार्य भी करते हैं। अत: बोलने से पहले हमें हमारे सामने यह स्पष्ट होना चाहिए कि अंतत: हमें क्या कहना है।

वक्ता के लिए कथ्य जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण है– बोलने में सही ध्वनि-गुणों (अनुतान, बलाघात, ठहराव आदि) का प्रयोग। सही अनुतान के अभाव में अर्थ का अनर्थ हो सकता है —

- *आ गए भाई साहब ?*
- *आ गए भाई साहब !*

ऊपर दिए गए दोनों वाक्यों के भिन्न अनुतान को भिन्न विराम-चिह्नों से प्रदर्शित किया गया है। पहले वाक्य का अर्थ प्रश्न पूछने के लिए है। और दूसरे वाक्य में व्यंजना है, जैसे कोई व्यक्ति बहुत देर से आया हो और उसे उलाहना दिया जा रहा हो। अत: बोलते समय सही अनुतान अर्थ को संप्रेषित करने में सहायक होता है।

जब हम बोलते हैं तो अपने भावों और विचारों को एक लड़ी में पिरोते चलते हैं। विचारों की क्रमबद्धता 'बोलना' कौशल की अनन्य विशेषता है। अर्थ को सही रूप में संप्रेषित करने के लिए यह भी ज़रूरी है कि शब्दों का सही चयन हो, वाक्य-संरचना सही हो और अनावश्यक शब्दों के प्रयोग से बचा जाए। मुहावरे, लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग मौखिक अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाता है। व्यक्त विचार के एवज़ में प्रस्तुत किए गए तर्क, प्रमाण, दृष्टांत भी अभिव्यक्ति को ठोस बनाते हैं। सारांश यह है कि प्रभावी वक्ता बनने के लिए इन कौशलों को साधना अपेक्षित है —

1. विचार/भाव-प्रस्तुति की क्रमबद्धता
2. स्पष्ट और मानक उच्चारण
3. बेझिझक अभिव्यक्ति
4. ध्वनि-गुणों का यथावश्यक प्रयोग (अनुतान, बलाघात, संगम/ठहराव आदि)
5. प्रसंगानुकूल भाषा और गति/उच्चता-निम्नता पर नियंत्रण
6. उचित हाव-भाव/अंग-संचालन या मुद्राओं का प्रयोग

मौखिक अभिव्यक्ति के प्रकार

1. **अनौपचारिक**– आम बातचीत। इसमें शब्दावली, वाक्य-विन्यास और विषय-क्रम अव्यवस्थित-से रहते हैं।
2. **औपचारिक**– साहित्यिक विधाओं के रूप में आत्माभिव्यक्ति (वर्णन करना, कविता, कहानी, एकांकी/नाटक, संवाद, व्याख्यान, वाद-विवाद आदि), सभा-संगोष्ठी में स्वागत-भाषण, धन्यवाद-ज्ञापन, परिचय देना, अपील करना, बधाई/शोक-संवेदना प्रकट करना आदि।

सुनने और बोलने के कौशल के विकास के अवसर/साधन

1. **कक्षा में कहानी सुनना-सुनाना** — कहानियों के जादू से सभी परिचित हैं। वास्तव में कहानी कहने के लिए होती है। कहानी कहते समय जो रस कहानी सुनने में आता है उसे किन्हीं शब्दों में बाँधना कठिन है। विद्यार्थियों के सामने कौतूहल-प्रधान कहानियाँ प्रस्तुत कर, 'अब आगे क्या होगा?' की उत्सुकता के द्वारा उन्हें बाँधे रखा जा सकता है। इसके माध्यम से उनके भीतर श्रवण की तल्लीनता विकसित की जा सकती है। कहानी सुनाने के बाद अध्यापक-अध्यापिका यदि उनसे कहानी के संदर्भ में कुछ प्रश्न भी करें (मसलन, किसने कहा ? क्या कहा ? कब कहा ? आदि) अथवा बारी-बारी से सुनाई गई कहानी को समग्र या आंशिक रूप में उन्हें प्रस्तुत करने को कहें, तो निश्चित ही उनको गंभीरता से सुनने का महत्व समझ में आएगा तथा उनमें बोलने का कौशल भी विकसित होगा। सुनाई गई कहानी की पुन:प्रस्तुति के अलावा, विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से भी कहानी कहने हेतु तैयार करना चाहिए। कहानियों के माध्यम से सुनने-बोलने की कुशलताओं के साथ-साथ कल्पनाशक्ति और तार्किकता का भी विकास किया जा सकता है।

   कहानी सुनते समय बच्चों के चेहरे पर आती-जाती रेखाएँ इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि वे कहानी में डूब चुके हैं, उसे समझ रहे हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे तपाक से कह उठते हैं– 'ऐसा भी होता है क्या?' या 'यह तो आप झूठ बोल रहे हैं, ऐसा हो ही नहीं सकता।' कई बार वे अस्वाभाविक बातों/घटनाओं को सुनकर अचरज व्यक्त करते हैं या भाषा के किसी विलक्षण प्रयोग से वे चमत्कृत हो उठते हैं। यदि कहानी में 'चली गाय चाय पीने।' जैसा वाक्य आ गया, तो यह बच्चों को अपनी तरफ़ खासा आकर्षित करेगा।

   कहानी सुनते वक्त श्रोता के लिए महत्वपूर्ण चीज़ है– कहानी से अपना संबंध स्थापित करना। हर श्रोता यह संबंध एक अलग ढंग से स्थापित करता है। उसका व्यक्तित्व और उसके पिछले अनुभव कहानी के प्रति उसकी प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं। हो सकता है कि वह किसी चरित्र की कल्पना कहानी में दिए गए विवरण से एकदम अलग रूप में करे। संभव है कि उसे कोई घटना भावनात्मक रूप से बाकी सब घटनाओं से ज़्यादा सार्थक लगे। कहानी और उसके चरित्रों की ऐसी पुनर्रचना करना जो स्वयं को सार्थक लगे, हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। *'बच्चे की भाषा और अध्यापक'— कृष्ण कुमार, नेशनल बुक ट्रस्ट:17-19*।

   कहानी सुनते समय हम घटनाक्रम और चरित्रों के व्यवहार की कल्पना करते चलते हैं। दूसरी तरफ़, जब हम स्वयं कोई कहानी सुनाते हैं तो उसमें शामिल अनुभवों

को व्यवस्थित करते चलते हैं। ये अनुभव वास्तविक हों तो उन्हें ज्यों-का-त्यों रखने की कुछ चिंता अवश्य होती है। पर ऐसा कम ही होता है कि कोई अपने अनुभव को हू-ब-हू सुना सके। छोटी-मोटी फेरबदल हो ही जाती है क्योंकि कुछ बातें हमें दूसरी बातों से ज़्यादा महत्वपूर्ण लगती हैं। यदि हमारी कहानी वास्तविक अनुभवों के बारे में न हो तो हम उसे कुछ ज़्यादा आज़ादी से प्रस्तुत करते हैं। शायद तब हमारा उद्देश्य अपने श्रोता में दिलचस्पी जगाना होता है। कहानी चाहे असली हो या काल्पनिक, उसमें दो चीज़ें अवश्य होती हैं– जीवन की घटनाओं, चरित्रों आदि का पुनर्योजन और सुनने वाले का ध्यानाकर्षण। ये दोनों बातें भाषा के कुशल प्रयोग पर निर्भर हैं। दरअसल कहानी कहना हमसे कुशल भाषा की माँग करता है और कहानियाँ सुनने का अनुभव हमें भाषा के कौशल के नमूने देता है। इसी कारण कहानी कहना अध्यापक-अध्यापिका के लिए एक बढ़िया साधन है।

कहानी सुनाने में नाटकीयता का पुट उसकी घटनाओं, पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सहायक होता है। जब एक बार तादात्म्य स्थापित हो जाता है तो श्रोता कहानी के प्रवाह में डूबने-उतरने लगता है। कहानी सुनने वाला अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर घटित घटनाओं, पात्रों का विश्लेषण भी करता चलता है और कभी-कभी तुरंत प्रतिक्रिया भी कर बैठता है। यह त्वरित प्रतिक्रिया इस बात का प्रमाण है कि सुनने वाला कहानी को ध्यान से सुन रहा है। कहानी सुनने-सुनाने की प्रक्रिया को कई तरीकों से संपन्न किया जा सकता है —

- शिक्षक द्वारा कहानी सुनाना।
- शिक्षक द्वारा कहानी को एक मोड़ पर छोड़कर अन्य विद्यार्थियों से उस कहानी को पूरा करने के लिए कहना।
- सुनाई गई कहानी का अंत परिवर्तित करवाना।
- सुनी गई कहानी को अपने शब्दों में फिर से कहना।
- अलग-अलग विद्यार्थियों द्वारा कहानी का प्रारंभ, विकास एवं अंत करवाना।

कहानी सुनाने के बाद सवाल-जवाब की प्रक्रिया को वैचारिक स्तर पर लाने के लिए काफ़ी सजगता की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों की विवेचन-क्षमता का सही-सही आकलन हो सके। हमारे सवालों का स्वरूप ऐसा हो जिसके उत्तर विभिन्न हो सकते हैं और जो चिंतन के लिए प्रेरित करते हों।

कक्षा में विद्यार्थियों के बीच अंत्याक्षरी, पहेलियाँ, प्रश्नोतर, चित्र-वर्णन, वाद-विवाद, किसी वस्तु/घटना का वर्णन, सामूहिक विचार-विमर्श, वार्तालाप/संगीत द्वारा वार्तालाप, भाषण, रचना/पुस्तक–समीक्षा, रिक्त-स्थान-पूर्ति, शब्द-लोकोक्ति

(कहावत)– मुहावरा तथा वाक्य-प्रयोग का अभ्यास, सारांश-वर्णन आदि करा कर भी सुनने व बोलने के कौशल को बढ़ाया जा सकता है।

2. **पाठ्य-सहगामी/ सहशैक्षिक गतिविधियों द्वारा**– जैसे– वाद-विवाद प्रतियोगिता, आशुभाषण, प्रार्थना-सभा में भाषण, सदन-व्यवस्था, सांस्कृतिक कार्यक्रम, रोल-प्ले आदि।

भूमिका-निर्वाह (रोल-प्ले)– जिस एकांकी/नाटक को क्लास में पढ़ाना हो या पढ़ाया गया हो, उसका कक्षाभिनय या मंचन कराना चाहिए। कहानी को नाट्य-रूप में ढालकर उसका मंचन भी एक महत्वपूर्ण गतिविधि हो सकता है। विविध भूमिकाएँ अलग-अलग विद्यार्थियों को देकर, उन्हें उनके मूल पात्रों के साथ (उनकी जीवन-स्थितियों में जाकर, उनसे) एकात्म होकर बोलने का अवसर देना चाहिए। इसके साथ, शिक्षक-शिक्षिका समय-समय पर नियंत्रक की तटस्थ भूमिका छोड़कर, रोल-प्ले में स्वयं भी विद्यार्थियों के स्तर पर जाकर शरीक हों, तो वह उनके लिए पहले से अधिक सहज व रोचक बन जाएगा। इस तरह की गतिविधियों से शिक्षक/शिक्षिका व विद्यार्थी के बीच की बनावटी दूरी भी खत्म होगी, जिससे उसे अपना शिक्षक/शिक्षिका अधिक भरोसेमंद लगेगा/लगेगी और वे उसके सामने स्वयं को अधिक अभिव्यक्त कर सकेंगे। इससे क्लास का पूरा ढाँचा रचनात्मक बन जाएगा। रोल-प्ले की इस मनोरंजन-प्रधान क्रिया के ज़रिये उनका उच्चारण-सुधार, अर्थ-बोध, जीवन की अलग-अलग स्थितियों के हिसाब से मनोभाव-प्रकटीकरण आदि का अभ्यास होगा।

इसके साथ, कुछ कल्पित संवाद-स्थितियों का भी रोल-प्ले कराया जा सकता है, जो अपने चारों ओर बिखरे जीवन की नग्न सच्चाइयाँ हैं। जैसे– दुकानदार और ग्राहक की बातचीत, लड़की के बाल-विवाह के लिए आमादा पिता और उसकी बेटी के बीच की तीखी नोकझोंक, सड़क पर केले का छिलका फेंकने वाले आदमी और वृद्ध महिला की बातचीत, स्कूल में नामांकन कराने के लिए घरवालों से जूझती अपनी दीदी से बातचीत, रूठे हुए दोस्त और उसे मनाते हुए लड़के की बातचीत, लड़की को लड़कों से दोस्ती रखने से मना करती माँ और उसकी बेटी की गरमा-गरम बातचीत आदि।

बच्चों के परिवेश के इर्द-गिर्द रचे-बसे पात्रों, घटनाओं और जीवन-परिस्थितियों का रोल प्ले करवाने से उसमें कृत्रिमता बहुत कम रह जाती है और बच्चे उनसे ज़्यादा जुड़ाव महसूस करते हैं। विद्यालय आने से पूर्व बच्चे इस हुनर से भरे होते हैं कि विभिन्न भूमिकाओं से क्या अपेक्षा की जाती है और साथ ही वे भाषा के सहारे

स्थितियों, व्यक्तियों को साधते भी हैं। इस प्रकार के सामाजिक मुद्दे से जुड़े रोल-प्ले करवाने का जो बड़ा लाभ होता है, वह बच्चों के भावी जीवन की तैयारी और आदर्श नागरिक बनने की दिशा में होता है।

3. **इतर कार्यक्रमों के दौरान**– रेडियो/टी.वी. के कार्यक्रम, कथाचित्र फ़ीचर-फ़िल्म) एवं वृतचित्र (डॉक्यूमेंटरी) दिखलाना, साप्ताहिक विद्यार्थी-सभा आदि के साथ भाषा-प्रयोगशाला भी बच्चों के सुनने-बोलने के कौशल-विकास में साधक बन सकती है।

भाषा-प्रयोगशाला की भूमिका– जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक ऐसी प्रयोगशाला है जो किसी-न-किसी रूप में भाषा से संबद्ध है। 'प्रयोगशाला' शब्द-नियंत्रण की ओर भी संकेत करता है। यानी, एक ऐसी जगह जहाँ प्रयोगशाला की तरह नियंत्रित स्थितियों में कैसेट/सीडी/डीवीडी-प्लेयर, स्पीकर, माइक्रोफ़ोन, इयरफ़ोन, कंप्यूटर, प्रोजेक्टर, कथाचित्र (फ़ीचर-फ़िल्म) एवं वृतचित्र (डॉक्यूमेंटरी) आदि का सहारा लेकर (यानी, एक शब्द में 'मल्टीमीडिया' के खास इस्तेमाल से) 'भाषा' से संबंधित कार्य/अभ्यास किया-कराया जाता है। भाषा-प्रयोगशाला कई प्रकार की होती है —

1. श्रव्य (ऑडियो)
2. दृश्य और श्रव्य (ऑडियो-वीडियो)
3. श्रव्य-निष्क्रिय (ऑडियो पैसिव)
4. श्रव्य-सक्रिय (ऑडियो एक्टिव)

श्रव्य प्रकार की प्रयोगशाला में केवल सुनने से जुड़े उपकरण होते हैं, जैसे– टेपरिकॉर्डर, ग्रामोफ़ोन, भाषा-टेप, डिस्क, हेड फ़ोन आदि। **श्रव्य-दृश्य** प्रकार की प्रयोगशाला में सुनने के साथ-साथ देखने संबंधी उपकरण होते हैं, जैसे– फ़िल्म, प्रोजेक्टर, वी.सी.डी., टी.वी. आदि। **श्रव्य-निष्क्रिय** प्रकार की प्रयोगशाला में शिक्षार्थी को केवल सुनने की ही सुविधा उपलब्ध रहती है। वह भाषा-टेप को सुनता है और एक टेप सुनने के बाद दूसरी टेप सुनता है। ऐसी प्रयोगशाला में 'स्पीकर' और 'इयरफ़ोन' की व्यवस्था होती है। स्पीकर से बोली गई सामग्री को वह सुन भर सकता है। **श्रव्य-सक्रिय** प्रकार की प्रयोगशाला में शिक्षार्थी टेप के माध्यम से भाषायी सामग्री सुनता है और उसे दोहराता या निर्देशानुसार आगे बोलने का कार्य करता है। यहाँ प्रत्येक शिक्षार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। वह स्वयं के द्वारा बोली गई सामग्री को रिकॉर्ड करके पुन: सुन सकता है और स्व-आकलन कर सकता है। इसका विस्तार इस रूप में भी हो सकता है — बाल-सभा के समय बच्चों को माइक्रोफ़ोन पर बुलवाने का अभ्यास कराना, किसी रचना का आदर्श वाचन सुनाकर उन्हें उनका रिकॉर्ड किया गया वाचन सुनाना।

भाषा प्रयोगशाला अब मल्टीमीडिया-लैब के रूप में तब्दील होती जा रही है। जहाँ उपकरण साधन मात्र हैं, साध्य नहीं; जहाँ उपकरण भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में सहायक मात्र हैं, नियंत्रणकर्ता नहीं। शिक्षक अपने शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भाषा-प्रयोगशाला की सामग्री का निर्माण भी कर सकते हैं। शिक्षक-निर्मित सामग्री नि:संदेह रूप से पहले से बनी-बनाई सामग्री से अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जो शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री का निर्माण कर रही हैं।

इन संचार माध्यमों का प्रयोग करते हुए शिक्षार्थियों द्वारा भाषा सीखने/अर्जित करने के प्रेरक वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। टी.वी. पर देखे गए किसी कार्यक्रम की समीक्षा करना/लिखना, एफ़.एम. पर सुने गए वार्तालाप की संक्षिप्त प्रस्तुति और मुख्य बातें बताना, किसी रचनाकार विशेष की अन्य साहित्यिक रचनाओं की खोज करने के लिए इंटरनेट का प्रयोग करना, इंटरनेट पर उपलब्ध ऑनलाइन पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों को पढ़ना, अपनी टिप्पणी देना, अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करना आदि ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनमें **मीडिया सहायक** की भूमिका में रहता है।

5.2.3 पढ़ना / वाचन

बच्चा सुनना और बोलना तो विद्यालय में आने के पूर्व ही बहुत कुछ सीख चुका होता है, पर पढ़ने-लिखने की विधिवत् शुरुआत वह विद्यालय में ही करता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुसार, पढ़ने और लिखने में से बच्चे को सर्वप्रथम पढ़ना सिखलाना चाहिए। 'पढ़ने' के लिए, अंग्रेज़ी में *Reading* शब्द है, जिसके लिए हिंदी में दो शब्द हैं– **वाचन** और **पठन**। वैसे तो आमतौर पर दोनों को एक ही अर्थ का वाचक माना जाता है, पर कुछ लोग इनमें प्रक्रियात्मक भेद करते हुए 'पठन' को 'वाचन' से व्यापक मानते हैं। 'वाचन' को 'पठन' के एक अंग के रूप में स्वीकारते हुए, वे इसका तात्पर्य ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने से लगाते हैं, जिसका बोध/आनंद श्रोता भी ले सकें। वैसे तो 'पठन' भाषा-कौशल का एक आयाम है, पर आज यह ज्ञान-प्राप्ति (चाहे वह किसी विषय का हो) का मुख्य साधन हो चुका है। यही कारण है कि 'पढ़ना' या उससे बना 'पढ़ाई' शब्द आज शिक्षा-मात्र के लिए आम प्रचलन में है।

पढ़ने के कौशल का अर्थ है— लिखित और मुद्रित/टंकित सामग्री को अर्थ-बोध के साथ पढ़ना। पढ़ने की सामग्रियाँ हैं– पुस्तक, अखबार-पत्रिका, पत्र, दस्तावेज़, ई-मैटेरियल (वेबपेज, ई-बुक/मैगज़ीन, ब्लॉग, फ़ेसबुक जैसे सोशल नेटवर्किंग साइट, ई-लाइब्रेरी आदि) शिलालेख, सूचना/नामपट्ट आदि। स्पष्ट है कि पढ़ने का अभ्यास उक्त दोनों तरह की सामग्रियों का होना चाहिए– एक के बाद एक का नहीं, बल्कि उनका एक ही साथ अभ्यास होना चाहिए।

> *पठन एक बहुआयामी जटिल प्रक्रिया है, जिसमें लिपि-प्रतीकों की पहचान तथा उनके उच्चारण की कुशलता के साथ-साथ पठित सामग्री की अर्थ-ग्रहण एवं उसके पूर्ण आशय समझ लेने की योग्यता का समावेश है। इसमें ग्रहण किए गए अर्थ की व्याख्या, मत-निर्धारण तथा अर्जित ज्ञान का प्रयोग शामिल है।*
>
> *— 'मातृभाषा हिंदी-शिक्षण', एन.सी.ई.आर.टी.*

पढ़ने के लिए लिपि-ज्ञान पर्याप्त योग्यता नहीं, समझ ज़रूरी

आमतौर पर लोग समझते हैं कि किसी भाषा की कोई तहरीर पढ़ने के लिए उसकी लिपि भर जानना काफ़ी है, पर असल बात कुछ और है। लिपि का ज्ञान प्रारंभिक योग्यता-भर है। कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि किसी भाषा के लिपि-चिह्नों को भलीभाँति जानने वाले से भी उस भाषा की लिखित कोई सामग्री का सम्यक् वाचन नहीं हो पाता। उदाहरणस्वरूप, हिंदी की एक पंक्ति है — *कागदहीकेकारणजानगँवायो*।

इसे कई तरह लोग पढ़ सकते हैं —

1. काग दही के कारण जान गँवायो।
2. का गदही के कारण जान गँवायो।
3. कागद ही के कारण जान गँवायो।

पढ़ने के लिए भाषा-विशेष की व्यवस्था— स्वनिम-व्यवस्था (खंड्य तथा अनुतान-संगम-बलाघात आदि खंड्येतर स्वनिम), रूप/वाक्य-व्यवस्था, शब्दावली आदि का ज्ञान भी ज़रूरी है। अन्यथा, पढ़ना टो-टो कर पढ़ना मात्र हो जाएगा, जैसे कि शुरुआत में बच्चे पढ़ते हैं–

का ग द ही के का र ण जा न गँ वा यो।

पढ़ने का मतलब — पढ़ना न सिर्फ़ तोते की तरह पढ़ डालना है, न हिज्जे करके पढ़ना। पढ़ने का मतलब वर्ण-शब्द की पहचान व उनका उच्चारण कर लेना भर नहीं, बल्कि उनमें निहित अर्थ का बोध करना है। बिना अर्थ-अधिगम के पढ़ना निरर्थक जल्पन है। भाषा तो सार्थक संप्रेषण की व्यवस्था है। अर्थ हिज्जे करके शब्द पढ़ने से नहीं आते, बल्कि प्रस्तुत पाठ में अपने अनुभव और अनुमान जोड़ने से आते हैं। जब हम टुकड़े-टुकड़े में किसी शब्द को, फिर शब्दों को जोड़कर वाक्य को पढ़ते हैं, तो उससे दिमाग पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर पड़ता है और अर्थ-बोध की क्षमता ही कहीं खो जाती है। इस तरह से पढ़ने का आनंद भी लुप्त हो जाता है– उसका मतलब तो पहले ही खत्म हुआ रहता है।

बॉटम अप रीडिंग

जब पाठक किसी पाठ को पढ़ते हैं तो आमतौर पर शुरू से आरंभ कर अंत तक जाते हैं, लेकिन कभी-कभी एक-दो पन्ने पढ़ लेने के बाद अगर संदर्भ स्पष्ट न हो तो वे बीच से या कहीं आगे का पढ़ने लगते हैं और जब संदर्भ समझ में आने लगता है तो वे पाठ को पुन: पढ़ना आरंभ कर देते हैं।

टॉप डाउन रीडिंग

पाठक अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर पाठ को सतत् रूप से पढ़ते जाते हैं और उसके संदर्भ का निर्माण अपने पूर्वज्ञान के आधार पर करते जाते हैं।

पढ़ने का असली मतलब है– सामने उपस्थित लिखित-मुद्रित सामग्री के साथ संवाद करना– अपनी बुद्धि, अनुभूति, धारणा और मत के साँचे में उसे ढालना। पढ़ना एकाकी प्रक्रिया नहीं हैं, इसमें शामिल हैं वर्णों की आकृतियाँ और उनसे जुड़ी ध्वनियाँ, वाक्य-विन्यास, शब्दों और वाक्यों का विन्यास, **शब्दों और वाक्यों के अर्थ** और साथ ही **अनुमान लगाने का कौशल।**

जिस तरह केवल लिपि-ज्ञान प्रूफ़-शोधन में मददगार नहीं हो सकता, उसी तरह पढ़ने का यह मामला है। अगर प्रूफ़-शोधक किसी भाषा-विशेष की शब्द-व्यवस्था का जानकार न होगा, तो वह अनपेक्षित सुधार करके मूल पाठ को भी ध्वस्त करके रख देगा। जैसे– एक जगह हरिवंश राय 'बच्चन' की कविता की विशेषता के लिए एक लेखक ने 'रूहानी छुअन' पदबंध का प्रयोग किया था, जिसे प्रूफ़-शोधक ने 'कहानी की छुअन' बनाकर अर्थ को तहस-नहस कर दिया।

ऊपर के उदाहरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हम सामने उपस्थित भाषा की लिखित/वाचिक धारा को अर्थाधारित खंडों में विभक्त करना सीख जाएँ, तभी पढ़ना (यहाँ तक कि सुनना) आ सकता है। सार्थक इकाइयों में बाँटना आने के लिए संदर्भ में भाषा-प्रयोग का ज्ञान ज़रूरी है।

यह तो एक पक्ष हुआ। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सामने दिया गया पाठ वर्तनी की दृष्टि से जगह-जगह अशुद्ध या अमानक हो, पर वाचक उसे थोड़ा प्रयत्न करके पढ़ लेता है। जैसे– 'महिला-आरणक्ष-विधेयक राज्सयभा से पास तो गया, लेनिक लोकसभा में प्रस्तुत हो तब न बात बने।'– जो हिंदी शब्द-वाक्य-व्यवस्था का जानकार होगा, वह इसे यों पढ़ेगा- "महिला-आरक्षण-विधेयक राज्यसभा से पास तो हो गया, लेकिन लोकसभा में प्रस्तुत हो, तब न बात बने।" इसे यदि प्रूफ़-शोधन के लिए किसी को दिया जाए, तो वह

भी इसी तरह गलती सुधारेगा, लेकिन, यदि खुद लेखक को दिया जाए, तो संभव है कि उसकी आँखें फिसल जाएँ और एक-दो जगहों पर हुए वर्ण-विपर्यय और विलुप्ति को न पकड़ सके– जिसके कारण वह आरणक्ष को आरक्षण, राज्सयभा को राज्यसभा, लेनिक को लेकिन और तो के बाद छूट गए 'हो' को भी अपने वाचन में प्रकट कर उक्त सुधरे रूप में ही पढ़ डाले। इसके चलते उसका प्रूफ़-शोधन अधूरा रह जाएगा। सवाल उठता है कि सामने कुछ लिखा-छपा हो, तो उसे कुछ दूसरे रूप में पढ़ना संभव कैसे होता है ? हम जो कुछ पढ़ या सुन पाते हैं, उसका आधार है– मन में बैठी हुई भाषा-व्यवस्था। इसी कारण, पहले व्यक्ति ने 'आरणक्ष' को 'आरक्षण' पढ़ा। हाँ, पढ़ने के पूर्व उसे इतना तो बोध हुआ कि गलत लिखा है। (जैसे– कोई बच्चा 'छाफ-छाफ बोलता है, तो हम सब उसे 'साफ़-साफ़' सुनते हैं) पर, लेखक को तो गलती का अहसास भी नहीं हुआ जब वह अपनी रचना का प्रूफ़ देखने बैठा। कारण, उसके लिए अपना लिखा हुआ मस्तिष्क की सतह पर सही रूप में नाच रहा होता है। सामने उसी से मिलता-जुलता लिखा हो, तो मस्तिष्क उसे थोड़ा आगे बढ़ कर (सही रूप में– 'आरणक्ष' को 'आरक्षण' आदि) पढ़ लेता है। इसका अर्थ यह निकला कि आँखों को जो दिखाई देता है या कानों को जो सुनाई पड़ता है, उससे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है वह, जो हमारे मन को दिखाई-सुनाई देता यानी समझ में आता है।

इसके साथ, पढ़ने का कौशल इसमें है कि प्रस्तुत पाठ को संदर्भानुकूल ध्वनि-गुणों (उच्च-निम्न स्वर, बलाघात, अनुतान, संगम आदि) के साथ पढ़ा जाए– प्रसंग के अनुसार उतार-चढ़ाव और वाचन में तेज़ी और सुस्ती के साथ पढ़ा जाए। खासकर कविता में तो यह और ज़रूरी है। जैसे– 'निराला' की **'राम की शक्ति-पूजा'** कविता को कोई बिना ध्वनि-गुणों का खयाल रखे पढ़ने लगे, तो वह कविता की उदात्ता के साथ ज़्यादती ही होगी। संक्षेप में, सार्थकता+भाषा की लय का निर्वाह पढ़ने के कौशल का अनिवार्य गुण है। समुचित वाचन हेतु प्रसंग/विषयवस्तु का ज्ञान सबसे पहली ज़रूरत है। पर, बिना अर्थ-बोध के प्रसंग-बोध कैसे होगा? प्रस्तुत भाषिक अवतरण को बिना सार्थक इकाइयों में बाँटे पढ़ ही कैसे सकते हैं ? ध्वनि-गुणों की बात तो बाद की है। अतएव, सार्थकता ही वाचन या पठन का केंद्रीय तत्व है।

फिर, जैसा कि ऊपर संकेतित है, केवल पाठ्यपुस्तकों को पढ़ना, पढ़ना नहीं है, बल्कि आस-पास बिखरी तमाम लिखित-मुद्रित भाषिक सामग्रियों को पढ़ सकना और अपने लायक निहितार्थ निकाल पाना वास्तविक अर्थों में पढ़ना है। पढ़ने के प्रति बराबर एक ललक और उत्सुकता लिए रहना, अपने चारों ओर बिखरी तमाम सामग्रियों में से तरह-तरह से रसास्वादन लेना, अपने आस-पास के माहौल को समझना, उसके प्रति आलोचनात्मक और रचनात्मक नज़रिया विकसित करते हुए, उसमें बराबर सजग रहना ही पढ़ना है।

यहीं सवाल आता है पाठ्यक्रम और पाठशाला के ढाँचे का। कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु और संरचना इस तरह की है कि बहुत से विद्यार्थी (जैसे– लड़कियाँ, खास क्षेत्र/मज़हब आदि के या सुविधावंचित वर्ग के बच्चे) अपने को उसमें शामिल नहीं महसूस कर पाते। उनके अनुभव कहीं से किताब की छपी सामग्री या चित्रों में शामिल जो नहीं होते। इतना ही नहीं, विद्यालय की किसी चीज़ व प्रक्रिया से भी वे अपने को नहीं जोड़ पाते। अध्यापकों का व्यवहार भी उन्हें अलग-थलग कर देता है। कोई भी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत अस्मिता और सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान खोकर किसी भी प्रक्रिया से नहीं जुड़ सकता। पढ़ने पर इसका भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। एक तो पाठ्यपुस्तक में रुचिकर सामग्रियों की कमी, ऊपर से इतर रोचक सामग्री पढ़ने से भी रोका जाना– ऐसे में कैसे होगा पढ़ना ?

पढ़ना मुख्यत: दो तरह का होता है —

1. **बोलकर पढ़ना (मुखर/सस्वर पठन)**
2. **मन-ही-मन पढ़ना (मौन पठन)** इसके साथ, एक तीसरी स्थिति भी है, जो दोनों के बीच की है– बुदबुदा कर या फुसफुसा कर पढ़ना।

बच्चे/नव-प्रशिक्षु पढ़ने की शुरुआत पहले तरीके से करते हैं। धीरे-धीरे जैसे उनकी तन्मयता और गंभीरता बढ़ती जाती है, वे दूसरी विधि की ओर उन्मुख होते जाते हैं। अर्थात्, पढ़ना मौखिक रूप में शुरू होता है (आँख > मुख > मन अथवा आँख > मुख > कान > मन के क्रम में), धीरे-धीरे वह मानसिक (आँख > मन के क्रम में) या चुपचाप पढ़ने में तब्दील हो जाता है। " पठन-कौशल के विकास का वांछित क्रम यह है कि बोल के (पढ़कर) समझना अंत में देखकर (पढ़कर) समझने में परिणत हो जाए।"

आमतौर पर यह मान्यता है कि मुखर और मौन पठन के कौशलों के विकास में काल-क्रम की पूर्वापरता होती है– मुखर पठन भाषा की धरती पर घुटनों के बल खिसकना है और मौन पठन उसपर पैरों से चलना। परंतु, ऐसा कहना एक प्रकार का सरलीकरण है। कारण, कई बार ऐसा भी होता है कि बड़ी उम्र के या विकसित लोग भी प्रयोजन-वश मुखर पठन को अपनाते हैं। जैसे– कहीं शोरगुल ज़्यादा हो या मानसिक भटकाव/अशांति, अकेलेपन से जुड़ा भय आदि महसूस कर रहे हैं, तो पढ़ने में ध्यान लगाने, समझने या अकेलेपन को काटने के लिए हम बोलकर उच्च स्वर में पढ़ने लगते हैं। कई बार आनंद के लिए भी ऐसा करते हैं। तब हम एक साथ तीन भाषायी कौशलों को साध रहे होते हैं– पढ़ना, बोलना, सुनना। इसके साथ, जैसा कि पूर्व-संकेतित है, हम सम्मुख विराजमान श्रोता/श्रोतृ-वर्ग तक किसी भाषायी सामग्री को संप्रेषित करने के लिए भी मुखर पठन (वाचन) का आश्रय लेते हैं। यह दूसरों के लिए किया जाता है, अत: इसमें औपचारिकता बढ़ जाती है। पूरा कवि-

सम्मेलन या रेडियो/टी.वी. पर कविता-पाठ इसी कौशल पर टिका हुआ है।

सभा में लिखित भाषण/अभिभाषण, अभिनंदन-पत्र, प्रतिवेदन आदि पढ़ना भी इसी के रूप हैं। इस अवस्था में श्रोताओं की संख्या, उनसे दूरी और विषय/भाव के अनुसार अपने वाचन के सुर की गति व उच्चता-निम्नता का इस्तेमाल किया जाता है। इस तरह के पठन में शरीर के **चार** अवयव क्रियाशील हो जाते हैं– **आँख, कान, मस्तिष्क, उच्चारणांग।** आँखें वर्णों व शब्दों को पहचानते हुए जितना तेज़ दौड़ेंगी, उतना ही द्रुत पाठ होगा। इसके लिए लिखावट या छपाई की गुणवता भी ज़रूरी।

मुखर पठन या **बोलकर पढ़ना** मौखिक अभिव्यक्ति या बोलने के कौशल का करीबी रिश्तेदार है। इसमें भाषा-प्रवाह का सार्थक इकाइयों (वाक्यों में तथा साथ ही साथ वाक्यों का पदों/शब्दों) में विभाजन, वर्णों/शब्दों का यथार्थ उच्चारण, भाव/विषय के अनुरूप जगह-जगह **उचित विराम/संगम-अनुतान-बलाघात** आदि के साथ, प्रवाहपूर्ण वाचन आवश्यक है। मुख/सस्वर पठन ही वह आधार है, जिसपर मौन पठन की इमारत खड़ी होती है।

मौन पठन में **अर्थ-बोध** और **पढ़ने की गति** पर ज़्यादा ज़ोर रहता है। मौन पठन में इतर प्रभाव (साइड इफ़ेक्ट) के रूप में जो अतिरिक्त योग्यताएँ विकसित हो जाती हैं, वे अध्ययन की अन्यान्य योग्यताओं के लिए भी सहयोगी व उपादेय होती हैं। व्यवहार में मौन पठन की ज़रूरत और दायरा मुखर पठन की तुलना में बहुत अधिक है।

मौन वाचन के लाभ —

1. थकान कम होती है।
2. कम समय में अधिक पढ़ लेना संभव।
3. समझने में आसानी– भाव-विचार और तथ्य का ग्रहण सहजता से, गंभीर बातों को समझने में उपयोगी।
4. एकाग्रता रहती है, जो बोध के लिए ज़रूरी है।
5. एक साथ कई लोग बिना बाधा के पढ़ सकते हैं।

मौन पठन के मुख्यत: दो रूप हैं —

1. **गहन/गंभीर पठन**– पूरे ध्यान और धैर्य के साथ निश्चित सामग्री का पूरा समय देते हुए, **विश्लेषणात्मक विधि** से गहरा अनुशीलन करना ही गंभीर पठन है। इसमें भाषा और विषय पर अधिकार एवं केंद्रीय भाव की खोज मुख्य तत्व होते हैं। इसके साथ, नवीन सूचना की प्राप्ति, नयी दृष्टि व बोध का विकास आदि भी लक्ष्यीभूत होते हैं। इस विधि में विषय-विस्तार की अपेक्षा दृष्टि की गहराई का महत्व है। जयशंकर प्रसाद की रचना **'कामायनी'** या एंगेल्स की पुस्तक **'परिवार, निजी**

संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' को इसी तरह के पठन से पढ़ा जा सकता है। इस तरह का पठन करते समय यह ज़रूरी होता है कि पुस्तक में आए महत्वपूर्ण अंशों को रेखांकित करते जाएँ या उनको नोटबुक में अंकित करते जाएँ। कुछ टिप्पणियाँ भी सूझ रही हों, तो उन्हें भी अंकित करते जाएँ। इससे बार-बार उसी अंश के गंभीर अध्ययन से बचा जा सकता है। अध्ययन पूरा हो जाने के बाद, पठित अंश का विश्लेषण कर उसकी एक रूपरेखा बना लेना बहुत आवश्यक होता है। पाठ्यविषय को समझने में वह उपकारी होता है। कई बार अध्ययन-समाप्ति के बाद कृति का समग्र या आंशिक तौर पर पुन: अध्ययन भी अपेक्षित होता है।

2. **विस्तृत और द्रुत/त्वरित पठन**– अधिक से अधिक विषयों और विस्तृत सामग्रियों को कम ध्यान देकर, कम समय में पढ़ना विस्तृत पठन है। इसके कई उद्देश्य हो सकते हैं– सीखी गई भाषा का अभ्यास, जानकारी और बोध के क्षितिज का विस्तार तथा उससे आनंद-प्राप्ति या मनोरंजन है। अकसर यह फ़ुरसत के क्षणों के सदुपयोग के रूप में होता है। द्रुत पठन का उद्देश्य कम समय में अधिक भाव/जानकारी पा लेना है। यह हलके विषयों का किया जाता है। जैसे– अखबार, परचा, सूचना आदि को लोग प्लेटफ़ॉर्म पर, चलती गाड़ी में या बातचीत करते भी पढ़ लेते हैं। इसी तरह, इंटरनेट पर अलग-अलग वेब पेज खोल-खोलकर, तरह-तरह की सामग्रियों का अवलोकन भी इसी प्रकार का पठन है। लोग इसे 'पढ़ने' का पूर्ण गौरव देते भी कहाँ हैं? बल्कि, 'अखबार/परचा/सूचना देखना' या 'नेट-सर्फ़िंग' आदि कहते हैं। वाचनीय वस्तु को सरसरी निगाह से पढ़ने के कारण विषय पर अधिकार नहीं रहता, पर उसकी आवश्यकता भी तो नहीं होती। विषय का एक औसत अनुमान लगा लेना ही उसका लक्ष्य होता है। विस्तृत और द्रुत पठन की सीमाएँ अकसर मिली हुई रहती हैं।

जीवन में एक और तरह का पढ़ना भी अकसर देखने में आता है, जिसका लक्ष्य किसी खास पुस्तक/पुस्तकालय में से अपने काम-लायक निश्चित सामग्री ढूँढ़ना होता है। यह दोनों के बीच में आता है।

यह तो भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि अर्थ-बोध या समझ के बिना पढ़ना पढ़ना नहीं, केवल अनर्गल प्रलाप है। अर्थ-ग्रहण के स्तरों के अनुसार, पठन के रूप हैं– सूचनात्मक पठन *(Reading on the line)*, व्याख्यात्मक व आलोचनात्मक पठन *(Reading between the lines)*, रचनात्मक या सर्जनात्मक पठन *(Reading Beyond the lines)*। केवल तथ्यों या वर्ण्य विषय (प्रस्तुत भाव, विचार आदि) की जानकारी प्राप्त करना **सूचनात्मक अर्थ-ग्रहण** है। इससे पाठक की जानकारी बढ़ती है। व्याख्यात्मक व आलोचनात्मक स्तर पर पाठक उन तथ्यों व वर्ण्य विषयों (भावों, विचारों) की व्याख्या करता है तथा उसके द्वारा उनकी प्रामाणिकता की जाँच भी करता है। सर्जनात्मक पठन

खासकर साहित्यिक कृतियों के लिए होता है। इसमें शब्द/वाक्य/प्रसंग के अभिधार्थ के साथ लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ भी करतब दिखलाते हैं। इस स्तर पर पाठ्य सामग्री का अनुशीलन पाठक को जीवन के भाव-पक्ष और उसके रसास्वादन में तो निमज्जित करता ही है, उसमें रचना की प्रवृति भी जगाता है।

पठन कौशल के पक्ष

(क) यांत्रिक पक्ष —

i. वर्णों/शब्दों का यथार्थ व मानक उच्चारण यानी तथाकथित शुद्ध उच्चारण (बोलकर पढ़ने की स्थिति में)

ii. संदर्भ, प्रसंग या भाव के अनुसार, बलाघात, अनुतान, संगम आदि ध्वनि-गुणों तथा गति का इस्तेमाल करना–प्रवाहपूर्ण और प्रभावकारी वाचन (बोलकर पढ़ने की स्थिति में)

iii. द्रुतपठन का अभ्यास

(ख) पढ़ने के कौशल के मायने —

i. अर्थ समझते हुए पढ़ना।

ii. पढ़ने की सार्थकता का बोध कराना।

iii. पढ़ने की रुचि / प्रेरणा जगाना।

iv. भाषा-प्रयोग की विविधता (शैलियों की विभिन्नता) का ज्ञान, इससे भाषिक अभिव्यक्ति/लेखन की सूझ जगती है।

v. ज्ञानार्जन — पाठ्यपुस्तकों के बाहर निकलकर अन्यान्य विषयों/विधाओं की सामग्रियों के पठन को अग्रसर करना।

- ‘पठन’ के लिए प्रोत्साहित करने का तात्पर्य यह नहीं कि पढ़ने के ही मौके दिए जाएँ, बोलने-सुनने-लिखने के पर्याप्त अवसर कक्षा में बराबर दिए जाते रहें। ये चारों अभिव्यक्तियाँ एक-दूसरे से कट कर नहीं चलतीं बल्कि पूरक हैं और इन सबके लिए ज़रूरी है परिवेशीय सजगता।
- आस-पास का अवलोकन करने के भरपूर मौके जहाँ दिए जाते हैं वहाँ सुनना-बोलना और पढ़ना-लिखना कोई मुश्किल काम नहीं रह जाते —
  - → क्रियात्मक चित्रों पर काम
  - → स्थानीय भाषाओं की पहेलियाँ
  - → आज की बात

- मुद्रण समृद्ध वातावरण
- भिति पत्रिका
- स्वाध्याय मंडल
- पुस्तक मेले
- समाचारों पर चर्चा
- मुख्य समाचारों का पठन
- अपना समाचार पत्र, खबरें इकट्ठी करना
- एक-दूसरे को पत्र लिखना
- पुस्तकालय संस्कृति
- और फिर आज क्या पढ़ा/पढ़ोगे? जैसे वाक्य अकसर बोलकर पढ़ने के लिए उकसाना (दबाव न पड़े)
- स्थानीय खबरें जुटाना, लिखना और पढ़ना
- शहर में मौजूद साहित्यकारों से मिलवाने के अवसर जुटाना
- साहित्य उत्सव, पुस्तक मेले (आयोजन/भ्रमण)

इस बात से किसी शिक्षक को इनकार नहीं होगा कि पढ़ने का मकसद है अर्थ ग्रहण करना। न ही किसी को इस बात से इनकार होगा कि जिन बच्चों को पढ़ने के जितने अधिक मौके मिलेंगे वे उतने बेहतर पाठक बन पाएँगे और पढ़ने में उतना ही आनंद का अनुभव कर पाएँगे। और इसके लिए हमें कुछ सचेत होकर काम करना होगा।

- संदर्भ से काटकर सिखाने की बजाय किसी संदर्भ विशेष में पढ़ने की निपुणता सिखाना।
- एक ऐसा माहौल गढ़ना सिर्फ़ कक्षा में नहीं, बल्कि विद्यालय के हर कोने में, जिससे पढ़ना आनंददायक और सार्थक लगे।
- जो विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से पढ़ने की कोशिशें करते नज़र आएँ, उन्हें प्रोत्साहित करना।
- 'पढ़ने' से कौन-कौन से मकसद पूरे होते हैं, इस बात की सभी विद्यार्थियों के साथ चर्चा करते रहना।
- विद्यार्थियों को तरह-तरह की पठन सामग्री उपलब्ध करवाने में मदद करना।
- चुनौतीपूर्ण बालकों के लिए **ब्रेल लिपि** में साहित्य उपलब्ध करने का साहस जुटाना।
- कुछ बच्चों को बहुसंवेदी तरीकों की ज़रूरत पड़ती है पढ़ने के लिए जैसे-

पहले उन्हें कोई पूरी सामग्री पढ़कर सुनाए, फिर छूने-देखने के भरपूर मौके दे, फिर साथ बैठकर पढ़े, ये अनिवार्य तो नहीं पर अपर्याप्त-सी शर्तें हैं और सीखने में समस्या महसूस कर रहे बच्चों को पढ़ना न आ पाने के जोखिम में फँसने से बचाती हैं।

- कुछ बच्चे बौद्धिक रूप से या भावनात्मक रूप से अस्थिर हो सकते हैं, कुछ बच्चे सुनने में कठिनाई महसूस करते होंगे, ऐसे बच्चों की व्यक्तिगत ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए उनकी मौजूदा निपुणता को ध्यान में रखना और अभ्यास के लिए अधिक समय देना।

- वास्तविक उद्देश्यों के लिए पढ़ने के रोज़ाना/प्रतिदिन अवसर देना, 'पाठ्यक्रम कैसे पूरा होगा' इस तनाव के रहते अध्यापक और अभिभावक पाठ्यपुस्तक से इतर पुस्तकें एवं पठन सामग्री पढ़ने के मौकों से वंचित करते हैं। इस तरह के स्वभाव पर नए सिरे से सोचने की ज़रूरत होगी।
  - → कक्षा में साहित्य की व्याख्या करने के अपने तरीकों पर गौर करें। कई बार देखा यह गया है कि कविता आदि प्रस्तुत करने के तरीके ही पठन के प्रति अरुचि पैदा कर देते हैं। और पढ़ाई जा रही सामग्री पर आधारित जब सवाल पूछे जाते हैं तो वे भी विद्यार्थी को आगे जाते-जाते पीछे की ओर धकेलते हैं। इसलिए पूछे जा रहे प्रश्नों के स्वरूप पर भी विचार करना होगा। आमतौर पर विद्यार्थी सवालों के मिज़ाज कुछ इस तरह पहचान लेते हैं कि केवल उतना अंश पढ़ना ज़रूरी समझते हैं जिसकी परिधि में सवाल का उतर आता है। यह आदत धीरे-धीरे 'पढ़ने' की आदत को पनपने से पहले ही समाप्त कर देती है।
  - → 'पठन' के लिए प्रोत्साहित करने का तात्पर्य यह नहीं कि पढ़ने के ही मौके दिए जाएँ, बोलने-सुनने–लिखने के पर्याप्त अवसर कक्षा में बराबर दिए जाते रहें। ये चारों अभिव्यक्तियाँ एक-दूसरे से कट कर नहीं चलतीं बल्कि पूरक हैं और इन सबके लिए ज़रूरी है परिवेशीय सजगता।

vi. **पढ़ने का आनंद** — अवकाश के समय में मनोरंजन। यहाँ तक कि कभी बिना अर्थ जाने भी कविता पढ़ना सुखकारी होता है। हम उसके प्रवाह या लय में लीन हो सकते हैं।

vii. **रुचि का परिष्कार और विस्तार** — विद्यार्थी की कल्पनाशीलता, तर्कशक्ति और संवेदनशीलता का विकास।

viii. **व्यक्तित्व की पूर्णता के साथ जिम्मेदार नागरिक बनाना** — पाठक का आचरण-सुधार और उसका समुचित समाजीकरण।

पठन-कौशल के विकास – कुछ सुझाव

पठन-रुचि के विकास के प्रयास —

(क) पाठ्यक्रम से इतर पठन का भी प्रोत्साहन।

(ख) स्कूल/क्लास में समृद्ध पुस्तकालय (और डिजिटल लाइब्रेरी) की व्यवस्था करना।

(ग) कक्षा में अध्यापन के दौरान विविध-विषयक पुस्तकों का उद्धरण देना।

(घ) स्कूल में आई नयी पुस्तक का उचित स्थान पर प्रदर्शन होना।

(ङ) विद्यार्थियों को पुस्तक-मेलों में भेजना / ले जाना और उनके द्वारा किए गए किताबों के चुनाव पर इनाम देना।

i. कक्षा में साहित्यिक प्रसंग या इतर पाठों का वाचन (खासकर कविता-पाठ)।

ii. एकांकियों और नाटकों को अलग-अलग विद्यार्थियों के बीच अलग-अलग भूमिकाएँ बाँटकर अभिनय-गुणों के साथ वाचन कराना यानी रोल-प्ले।

iii. रेडियो-टी.वी. पर कवि-सम्मेलनों का श्रवण-दर्शन या कवि-सम्मेलनों में बच्चों को ले जाना।

iv. उससे प्रेरित बच्चों की कक्षा में कवि-गोष्ठी कराना।

v. प्रार्थना-सभा में अखबार के अंशों का वाचन कराना।

vi. बच्चे में आत्मविश्वास का विकास करना, ताकि वह पढ़ने में लड़खड़ाए नहीं।

vii. पर्यवेक्षण/आँखों का अभ्यास– ताकि बच्चा वर्णों व शब्दों का सम्यक् और यथास्थान वाचन कर सके, न कि उन्हें दूसरे वर्ण/शब्द से प्रतिस्थापित करके या उन्हें आगे-पीछे कर उच्चारण कर दे (जैसे– 'कमल' को 'कलम' न कर दे, 'पटाखा ले' को 'पटा खा ले' न कर दे, 'मान जाओ' को 'जाओ मान' न कर दे)।

5.2.4 लिखना

भाषा-शिक्षण का वास्तविक उद्देश्य यही है कि विद्यार्थी दूसरों के अभिव्यक्त भाव-विचार आदि को सुन/पढ़ के समझ या ग्रहण कर सकें तथा अपने मन की बात– भाव-

विचार व जीवन की अनुभूतियों को पूर्ण स्पष्टता व क्रमबद्धता से, प्रभावकारी ढंग से, प्रवाहपूर्ण और सुबोध भाषा में बोल/लिखकर अभिव्यक्त कर सकें। यदि उनकी अभिव्यक्ति लिखित रूप में सामने आए, तो उनकी लिखावट साफ़-सुथरी और आकर्षक भी हो।

जैसा कि पिछली इकाई में स्पष्ट हो चुका है– भाषा का प्राथमिक और अधिक व्यापक संबंध बोलचाल से है। लेखन तो भाषा का अगला रूप है, जिसका होना अनिवार्य नहीं है। वह सभ्यता के विकास से जुड़ा है। बोलचाल की भाषा प्रत्यक्ष चीज़ है, उसमें किसी का व्यक्तित्व सीधे-सीधे झलकता है– उसकी प्रवृति, सोच की बुनावट या सामाजिक चरित्र अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति पाता है, वह जीवंत होती है तथा उसी में भाषा के समस्त लक्षण घटित होते हैं। लेखन की भाषा में ऐसी प्रत्यक्षता व प्रामाणिकता की मात्रा कम होती है। साथ ही, उसमें जीवंतता भी नहीं होती। फिर भी वही है, जिसके ज़रिये भाषा और उसमें व्यक्त होने वाले भाव, विचार आदि का संरक्षण हो पाता है, जिसके बिना मानव जाति की सभ्यता-संस्कृति की किसी यात्रा अथवा ज्ञान/बोध की किसी निरंतरता का होना लगभग असंभव है। अत: लेखन-कला और लिखित रूप में अभिव्यक्ति (लिखित रचना) में कुशलता का विकास भाषा-शिक्षण का महत्वपूर्ण गंतव्य है। सारांशत: हम कह सकते हैं कि —

1. हमारा चिंतन व अनुभव जब अंकित/संकलित होता है, तभी हम उसकी निरंतरता को कायम रख सकते हैं और उसके द्वारा अपना मानसिक विकास कर सकते हैं। बड़े स्तर पर यही पूरी मानव-जाति के सांस्कृतिक विकास का हेतु बनता है।
2. लिखित अभिव्यक्ति द्वारा हम देश व काल के संदर्भ में अपनी सीमा का अतिक्रमण करते हैं। संपर्क, संदेश-प्रेषण, संबंध-स्थापन आदि में यह मददगार होती है तथा हमें जीवन के बाद भी अमरता प्रदान करती है।
3. लेखन हमें आनंद के साथ मुक्ति का भी अहसास कराता है।
4. उसमें मानसिक के साथ शारीरिक अभ्यास भी होता है।

लेखन की लक्ष्यभाषा में दक्षता प्राप्त करना, बुद्धि और कल्पना-शक्ति का विकास, पर्यवेक्षण-शक्ति की वृद्धि तथा रचना-कर्म के प्रति रुझान पैदा करना लेखन-कौशल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। इसका दूसरा उद्देश्य है — **लिखावट की सुंदरता का उन्नयन।**

'लिखना' महज़ एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है जो लिपि-चिह्नों, वर्तनी, वाक्य-विन्यास में सिमटी हो, बल्कि वह मानव-संवेगों की परिचायक है, उन संवेगों की अभिव्यक्ति का माध्यम है जो बहुत कहना चाहते हैं– लिखना एक तरह की बातचीत है जिसमें यह अपेक्षा

बनी रहती है कि पाठक (जो श्रोता है) अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे, वह भी कुछ कहे– टिप्पणी, समीक्षा या प्रतिक्रिया के रूप में ही सही।

पढ़नेवाला लिखनेवाले के मंतव्य को समझ जाए तो समझिए कि 'लिखना' सफ़ल हुआ। 'लिखना' से जुड़े सभी उदाहरणों को मौखिक रूप से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है जिसमें बोलने की गति, अनुतान, यति और सुर हमारे मंतव्य को स्पष्ट करने में हमारी मदद करते हैं, लेकिन कथ्य की दोनों तरह की अभिव्यक्तियों (मौखिक और लिखित) में एक मूल अंतर यह है कि मौखिक अभिव्यक्ति में इतनी गुँजाइश नहीं होती कि हम सुने गए को एक लंबे समय तक याद रख सकें। हाँ, जो बातें हमारे मर्म को छू जाती हैं (अच्छी या बुरी) वे हमें काफ़ी समय तक याद रहती हैं। लेकिन, उतने लंबे समय तक नहीं, जितने लंबे समय तक लिखित अभिव्यक्ति रहती है। इतना ही नहीं, बातचीत करते समय अथवा मौखिक अभिव्यक्ति के समय —

- श्रोता और वक्ता दोनों और अधिक स्पष्टता की अपेक्षा रखने वाली बातों को क्रमश: पूछ और समझ सकते हैं;
- किसी बात/कथ न/घटना को आवश्यकतानुसार दोहरा सकते हैं;
- अपनी गति और समय के अनुसार बातचीत को घटा या बढ़ा सकते हैं;
- जहाँ शब्द कम पड़ जाएँ अथवा और अधिक व्याख्या की आवश्यकता हो तो अशाब्दिक भाषा (संकेत, भाव-भंगिमाओं) का प्रयोग कर सकते हैं;
- वक्ता और श्रोता का परिचय होता है, चाहे यह परिचय औपचारिक हो या अनौपचारिक;
- वक्ता और श्रोता को बातचीत का संदर्भ ज्ञात होता है इसलिए बातों को ठीक-ठीक समझने में आसानी होती है, लेकिन लिखित अभिव्यक्ति में इन बिंदुओं का अभाव होता है। सबसे पहले तो लेखक और पाठक के बीच किसी तरह का परिचय नहीं होता। एक पाठक लिखित सामग्री से अपने लिए क्या अर्थ निकाल सकेगा यह पाठक पर निर्भर करता है। यदि पढ़ते समय पाठक को कहीं किसी प्रकार की अर्थगत कठिनाई होती है तो लेखक उसे स्पष्ट करने के लिए उसके पास नहीं होता। उसे किसी अन्य की सहायता लेनी पड़ती है या फिर वह पाठ्य-सामग्री में आस-पास के शब्दों, वाक्यों के आधार पर अनुमान लगाकर अर्थ ग्रहण करता है, मौखिक भाषा में तो वक्ता श्रोता के अनुसार भाषा के स्वरूप को निर्धारित करता है। एक बच्चे के साथ की गई बातचीत की भाषायी संरचना नि:संदेह रूप से एक वयस्क की तुलना में अलग होगी, परंतु लेखक जब लिखता है तो उसका पाठक वर्ग भिन्न-भिन्न आयु वर्ग का हो सकता है। लिखित भाषा में लिखनेवाले को बहुत

सँभलकर लिखना पड़ता हैं, क्योंकि यहाँ तो जो कुछ भी संप्रेषित होगा वह लिखित भाषा के माध्यम से ही होगा। मौखिक अभिव्यक्ति की तरह हाव-भाव संकेत, भाव-भंगिमाओं की कोई जगह शेष नहीं रह जाती।

संक्षेप में लिखने से संबद्ध दो दिशाओं/चरणों में कुशलताएँ विकसित करना लक्ष्य है —

1. **यांत्रिक-पक्ष (लेखन-कला से संबद्ध)** – लिखावट की गुणवता और वर्तनी की मानकता/कथित शुद्धता का विकास करना।
2. **रचनात्मक पक्ष (लिखित अभिव्यक्ति से संबद्ध)** – विचारात्मक और कलात्मक रचना की उत्कृष्टता। लिपि-चिह्नों के माध्यम से अपने भाव-विचार की स्पष्ट, प्रांजल और प्रभावी अभिव्यक्ति करने की योग्यता विकसित करना।

लिखावट की गुणवता — सुंदर, स्पष्ट और संतुलित लिखावट हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट करती है और उसे पढ़ने के लिए आमंत्रित करती है। वह पढ़ने वाले के मन में प्रसन्नता और शांति लाती है– उसका पढ़ने का उत्साह बढ़ जाता है, जब कि गंदी और उलझी हुई लिखावट पाठक के चित में उद्वेग पैदा करती है। अत: यह खयाल रखना चाहिए कि —

1. लिखने के अक्षर सुंदर-सुडौल और समानुपातिक हों।
2. किसी एक अनुच्छेद में दो शब्दों के बीच की दूरी *(Eye span)* समान हो, पर भाव/विषय के अनुरोध से उनमें कभी-कभी कुछ कमी-बेसी भी हो सकती है। छंदोबद्ध कविता में तो अंतरों की सेटिंग के हिसाब से शब्दों की दूरी का सामंजस्य बैठाना होता है।
3. यही खयाल दो अनुच्छेदों या अंतरों की दूरी/व्यवस्था में भी रखा जाए। विषय/मुख्य भाव के बदलने पर अनुच्छेद बदलना होता है।
4. पर्याप्त हाशिया छोड़ कर लिखा जाए। (कम से कम बायीं ओर तो ज़रूर)।
5. विरामादि चिह्नों का यथास्थान उपयोग किया जाए।

लिखित अभिव्यक्ति (रचना) के रूप – स्पष्ट, मानक और प्रसंग/भाव के अनुकूल भाषा, विषय-सामग्री और भावों की सुसंबद्धता आदि किसी रचना की विशेषताएँ हैं। लिखित रचना को दो कोटियों में बाँटा जा सकता है —

1. **औपचारिक / निर्देशित और प्रयोजनमूलक रचना**– औपचारिक लेखन वह है जो किसी खास उद्देश्य से या विद्यालय/ कार्यालय के कार्यों के तहत लिखा जाता है– जिसमें दी गई रूपरेखा के आधार पर रचना की जाती है और पाठक को ध्यान में रखते

हुए समस्त प्रकार की औपचारिकताएँ बरती जाती हैं। जैसे– कार्यालयी पत्र, प्रपत्र (फ़ॉर्म भरना), परिपत्र (सर्कुलर), टिप्पणी, प्रतिवेदन (रिपोर्ट) आदि। इनके अलावा, कक्षाभ्यास के रूप में पल्लवन, संक्षेपण, अनुच्छेद, जीवनी, व्यक्तिगत पत्र, निबंध आदि भी लिखे जाएँ जो इसी श्रेणी में आते हैं।

2. **अनौपचारिक / साहित्यिक या सौंदर्यमूलक रचना**– अनौपचारिक लेखन में लेखक अपने तरीके और नज़रिये से किसी विषय पर या किसी विधा में रचना करता है, जिसमें शब्द/भाषा और शैली के प्रयोग की स्वतंत्रता होती है। इसी से इसे **स्वतंत्र/मौलिक रचना** भी कह सकते हैं। कहानी, कविता, निबंध, एकांकी/नाटक, यात्रा-वृतांत, संस्मरण, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, संबंधियों को लिखे गए पत्र आदि इस श्रेणी में आते हैं। **अनौपचारिक लेखन ही** असली **सृजनात्मक लेखन** है। इसमें ''लेखन स्वांत: सुखाय'' होता है, जहाँ लिखते समय नितांत निजी बातें दिल खोलकर लिखी जाती हैं और औपचारिकता के बंधन से मुक्ति मिलती है।

   यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि निबंध, जीवनी, पत्र आदि को यदि प्रारूप/निर्देश देकर लिखने को कहा जाए, तो वह **औपचारिक/निर्देशित** रचना है, वरना अनौपचारिक/स्वतंत्र।

हम प्राथमिक व उच्च-प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों से पूरी तरह मौलिक रचना की उम्मीद लगभग नहीं कर सकते। फिर भी, उन्हें यथावश्यक दिशा-निर्देश देकर कुछ स्वतंत्रता के साथ लिखने का अवसर उपलब्ध कराएँ, तो उनमें धीरे-धीरे मौलिक सृजन की प्रवृति और क्षमता जगती है।

लेखन-कार्य के विषय/विधा– वैसे तो विषय अनगिनत हैं और विधाएँ भी नित नयी-नयी जनम सकती हैं, पर सुविधा के लिहाज़ से इनके कुछ वर्ग बनाए जा सकते हैं —

1. पत्र– औपचारिक व अनौपचारिक पत्र (आवेदन-पत्र, निमंत्रण-पत्र, धन्यवाद / बधाई-पत्र, शुभकामना-पत्र, शोकपत्र, विदाई-पत्र, रिश्तेदारियों के पत्र आदि)।
2. प्रतिवेदन (रिपोर्ट)– पर्यवेक्षण, विकास, समारोह, समस्या आदि के प्रतिवेदन।
3. प्रपत्र / फ़ॉर्म भरना– मनीऑर्डर-फ़ॉर्म, नामांकन/परीक्षा-फ़ॉर्म आदि।
4. पाठ के अभ्यास-प्रश्नों के उतर लिखना।
5. सूचना, भाषण, परचे आदि लिखना।
6. साहित्यिक रचना– कहानी, कविता, नाटक/एकांकी, उपन्यास, निबंध, आलोचना, यात्रा-वृतांत, डायरी/ दैनंदिनी (दैनिक कार्य-विवरण), संस्मरण/रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी आदि।

रचनात्मक लेखन का विकास

1. **बच्चों की रचनाओं को प्रोत्साहन और परिमार्जन** — बच्चों के लेखन में व्यक्त विचारों, भावों, कल्पनाओं पर ध्यान देते हुए शिक्षक/शिक्षिका को उनकी सराहना करनी चाहिए और उनका मूल्यांकन करते हुए प्रतिक्रिया (फ़ीडबैक) भी देनी चाहिए। उनमें यथावश्यक संशोधन करते और दिशा-निर्देश देते हुए, उनके लेखन को आस-पास के परिवेश से जोड़ना चाहिए, ताकि लिखना सार्थक हो– यथार्थ अनुभवों की अभिव्यक्ति बन सके।

2. **रचनाओं का संकलन व प्रकाशन** — बच्चों के अनुभवों को संकलित करते हुए एक संग्रह बनाया जाए जिससे अन्य बच्चे, शिक्षक, माता-पिता भी पढ़ सकें, ताकि उन्हें यह अहसास हो कि लिखना एक सार्थक प्रक्रिया है, महज़ औपचारिक प्रक्रिया नहीं। हस्तलिखित वर्ग-पत्रिका, दीवार-पत्रिका आदि भी निकालकर इस प्रक्रिया को अग्रसर किया जा सकता है। ''मैं जो लिखूँगा/लिखूँगी, उसे पढ़ा जाएगा''– यह सोच बच्चे में आत्मविश्वास जगाए और उसके लेखन को उत्साह मिलेगा।

3. **रचना-सामग्रियों की उपलब्धता के द्वारा रचनानुभव का विस्तार** — बच्चों को लेखन-अनुभव के विस्तार के लिए उन्हें विविध रचनाकारों और विविध विधाओं की रचनाओं का अधिक से अधिक रसास्वादन के अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। साथ ही, विस्तृत मौखिक-श्रव्य सामग्री उपलब्ध कराई जाए, ताकि वे उसमें व्यक्त विचारों की क्रमबद्धता, मौलिकता, सार्थकता को समझ सकें और अपने विचारों को भी उसी प्रकार संयोजित कर सकें जिन्हें कागज़ पर उतारा जाना है। उन्हें एक ही कथ्य की अलग-अलग अभिव्यक्तियों को पढ़ने के लिए सामग्री उपलब्ध कराएँ ताकि वे विभिन्न लेखन शैलियों से परिचित हो सकें और अपनी लेखन शैली विकसित कर सकें। इसके साथ, उन्हें **शब्द शक्ति** बढ़ाने के अभ्यास करवाने चाहिए। जैसे– शब्दों के अर्थ लिखकर उनके वाक्य-प्रयोग, रिक्त स्थान की पूर्ति, पठित पाठों के प्रश्नोतर, उसका सारांश और भावार्थ आदि लिखना, समानार्थ-विपरीतार्थक-अनेकार्थक आदि शब्दों का अभ्यास, मुहावरों-कहावतों का अभ्यास, भाषण-लेख-पत्र-वार्तालाप, अनुवाद का अभ्यास आदि।

4. **सामूहिक रचना-कार्य कराना** — बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में अथवा दो-दो के समूहों में लिखित कार्य दिया जा सकता है, जहाँ वे एक-दूसरे की बात को सुनने, प्रतिक्रिया व्यक्त करने, विचारों की गहनता को समझने, विश्लेषण करने और तर्क

जुटाने के लिए धैर्य रख सकें। सामूहिक कार्य नि:संदेह बच्चों को बहुत कुछ सीखने और लिखित कार्य को करने की प्रेरणा देंगे।

'अरे, देखकर बना ले !'

चित्रकला के प्रश्नपत्र में चरती हुई गाय का चित्र बनाने के लिए कहा गया था। विमला बड़ी बेचैनी से इधर-उधर देख रही थी। बगल में बैठा अभिजीत गणित के पेपर में कलाबाज़ी दिखा रहा था। उसे विमला की परेशानी समझ में आई। तभी खिड़की से बाहर मैदान में कोई गाय चरती दिखी। अचानक अभिजीत को कुछ सूझा। वह विमला को गाय की ओर इशारा करते हुए बोल उठा – ''अरे ! देखकर बना ले, वरना चली जाएगी।''

5. **पाठ्य-सहगामी गतिविधियों द्वारा रचनाशीलता को प्रोत्साहन** — स्कूल में कहानी, कविता, विचार आदि के क्लब हों, जहाँ बच्चे भय व संकोच से मुक्त होकर अपनी रचना सुनाएँ और सुनें। इसके अलावा, उनके लिखे एकांकी/नाटक आदि का मंचन भी कराया जाए, जिससे उन्हें अपनी अभिव्यक्ति को महत्व मिलता दिखे।

6. **रचनाओं के लिए गृह-कार्य देना** — बाकी विषयों की तरह कविता-कहानी-निबंध आदि के गृहकार्य की भी एक खास कॉपी उनके पास हो। उसका परीक्षण करते हुए शिक्षक-शिक्षिका यह ध्यान रखें कि शुरुआत में ज़रूरी तत्व है, अनुभूतियों को सजीव ढंग से लिखना, न कि भाषायी शुद्धता और पुख्तापन। शब्द भले ही टूटे-फूटे हों मगर वे धड़कते रहने चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे एक छोटा बच्चा अपनी तोतली ज़बान में बहुत कहता है और सभी आंनदित होते हैं। धीरे-धीरे उन्हें भाषा की मानकता और कारीगरी की ओर उन्मुख करना होता है, परंतु यह स्मरणीय है कि असली सृजनात्मक लेखन (साहित्य-रचना) में भाषा साधन भर नहीं, बल्कि कुछ हद तक साध्य भी है। कारण, साहित्य में खास प्रकार की अनुभूति को प्रकट करने के लिए भाषा-विशेष या खास प्रकार की अभिव्यक्ति-पैटर्न ही समर्थ होता है। मतलब, यहाँ आकर भोज्य-सामग्री के साथ बरतन भी उतना ही महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए, सृजनात्मक लेखन के लिए समुचित भाषा को साध लेना ही भाषायी कौशल की असली ऊँचाई है।

एक भाषा शिक्षक को यह समझना होगा कि —

- भाषा के चारों कौशल अंत:संबंधित हैं। इसलिए सुनना और बोलना कौशल का विकास अलग नहीं हो सकता। वास्तविक जीवन की संप्रेषणपरक स्थितियों में व्यवहार करने के लिए ध्यान से सुनना और बोलना ज़रूरी है।
- बच्चों को समृद्ध भाषायी परिवेश उपलब्ध कराया जाए ताकि उन्हें भाषा सुनने और यथाआवश्यक बोलने का अवसर प्राप्त हो सके। अधिकाधिक भाषा के सार्थक प्रयोग का परिणाम है प्रभावी वक्ता होना। अत: बच्चों को भिन्न-भिन्न स्थितियों में सुनने-बोलने के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ।
- बच्चों के आस-पास ऐसा माहौल तैयार किया जाए कि वे बोलने के लिए प्रेरित हो सकें अथवा बोलने से जुड़े क्रियाकलापों में पहल करते हुए सक्रिय भागीदारी निभा सकें। बच्चों को कभी भी बोलने के लिए दबाव न डालें क्योंकि सभी बच्चों का व्यक्तित्व विशिष्ट होता है। हो सकता है कि कुछ बच्चे सबके सामने बोलने में संकोच, झिझक का अनुभव करते हों इसलिए शिक्षक धैर्य से काम लें। सामूहिक क्रियाकलाप इसमें सहायता कर सकते हैं इसलिए व्यक्तिगत क्रियाकलाप से पहले सामूहिक क्रियाकलाप ज़रूर करा लें। सामूहिक क्रियाकलाप दो-दो के समूह में भी हो सकते हैं और तीन-चार बच्चों के छोटे-छोटे समूहों में भी। सामूहिक क्रियाकलाप में भागीदारी बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करेगी।
- सभी बच्चों को उनकी क्षमता और रुचि के अनुसार कार्य दिए जाएँ। एक ही तरीके से सभी बच्चों के साथ पेश आना, किसी भी कला में कोई प्रभाव न छोड़ सकेगा। बच्चों में उत्पन्न उपलब्धि भावना या यूँ कहें कि सफ़लता की भावना उन्हें और अधिक मुखर होकर भाषायी प्रयोग के लिए प्रेरित करेगी।
- जब बच्चे कुछ करें-सुनें तो उनमें केवल और केवल त्रुटियों को ही लेकर बच्चों पर कोई भी नकारात्मक टिप्पणी करने से बचें। बच्चा अपनी जिस भाषा के साथ विद्यालय में आता है वह उसकी पहचान है, उसकी अस्मिता है। उसकी पहचान को, उसकी भाषा को स्वीकार करना ही होगा। नकारात्मक टिप्पणियाँ करना या त्रुटियों को ही केंद्र में रखना बच्चों की आवाज़ को 'खामोश' कर सकता है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि आप उसके सुनने-बोलने पर बिलकुल ही ध्यान न दें। आप ध्यान ज़रूर दें लेकिन बच्चों को आवश्यकतानुसार ऐसा भाषिक वातावरण उपलब्ध कराएँ कि वह स्वयं ही अपनी भाषा में अपेक्षित परिवर्तन कर लें।

- सुनने-बोलने संबंधी विभिन्न क्रियाकलापों के विषय/शीर्षक बच्चों के निजी जीवन के करीब हों ताकि उसमें वे मज़ा ले सकें और क्रियाकलाप में स्वाभाविकता आ सके।
- शिक्षकों को यह समझने की भी आवश्यकता है कि कक्षा में कुछ बच्चे ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें सुनने-बोलने में किसी तरह की कोई कठिनाई हो। यह कठिनाई उनके सुनने-बोलने को प्रभावित कर सकती है। अत: बेहतर होगा कि ऐसी कठिनाइयों की पहचान बहुत जल्दी कर ली जाए ताकि उन बच्चों को अपेक्षित मदद मिल सके।
- कक्षा के बाहर, विद्यालय के बाहर (यदि संभव हो तो) बच्चों के सुनने-बोलने पर ध्यान देना होगा। यह उनकी भाषायी क्षमताओं की सही पहचान करने में मदद करेगा।

अभ्यास प्रश्न

भाषा से संवाद

1. आपकी कक्षा में सभी विद्यार्थियों के साथ-साथ दो विद्यार्थी दृष्टिबाधित भी हैं। पठन एवं लेखन सीखने के संदर्भ में आपकी ओर से किस तरह के विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए?
2. आप इस बात से सहमत हैं कि बच्चे पाठ्यपुस्तक से इतर पत्र-पत्रिकाएँ, उपन्यास आदि पढ़ें। ऐसी पठन सामग्री की सूची तैयार करें जिन्हें आप समझते हैं कि वे बच्चों के लिए उपयुक्त हैं।
3. (अ) "आज के बाल-साहित्य लेखक बच्चों को बड़े की कसौटियों पर तोलते हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में किन्हीं दो बाल-उपन्यासों का चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विश्लेषण करें।
   (ब) 1970 के दशक के कोई दो बाल उपन्यास लें एवं कोई दो बाल उपन्यास आज के दौर के लें। दोंनों में बच्चों का चरित्र-चित्रण किन अंतरों को उल्लेखित करता है, लिखें।
4. "हिंदी विषय को पढ़ने-पढ़ाने के तरीके भाषा में विनोद और सहज आनंद के स्रोत ढूँढ़ने की बाल वृति पर अंकुश लगाने पर काम कर रहे हैं," इस विषय पर अपने विचार लिखिए।
5. क्या आपको लगता है कि 'पढ़ना' तरह-तरह की भावनाओं से गुज़रने का सफ़र है? उदाहरण के तौर पर कभी हम चमत्कृत हो उठते हैं? कभी दु:ख महसूस करते हैं, कभी क्रोधित हो उठते हैं इतना कि हमारी मुठ्ठियाँ भिंच जाती हैं। अपने अनुभव से इस तरह का कोई उदाहरण प्रस्तुत करें।
6. हम अपने पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक और इनसे इतर पुस्तकों को पढ़ते हैं। क्या 'पढ़ना' कभी आपके मन में किसी तरह के सवाल पैदा कर पाया? किसी एक अनुभव के बारे में लिखें।

7. 'पढ़ना' कब आपके लिए नयी दुनिया (नयी-नयी जानकारियाँ, जानकारी की ओर बढ़ने की जिज्ञासा, अनुभवों की प्रामाणिकता सत्यापित करना) का अनुभव बन पाया?
8. हमारी दिन-प्रतिदिन की ज़िंदगी से जुड़ी कुछ स्थितियाँ नीचे लिखी हैं —
   - खुद का लिया कोई अहम फ़ैसला,
   - लंबे/छोटे सफ़र में सहयात्री से जुड़ने का प्रसंग,
   - किसी उत्सव पर घटी कोई घटना,
   - अपने विद्यालयी जीवन से जुड़ी कोई खट्टी-मिट्ठी याद,
   - किसी राजनैतिक घटना पर अपने साथी से हुआ वैचारिक मतभेद,
   - उपर्युक्त स्थितियों में से कोई दो छाँट लीजिए। छाँटी हुई स्थितियों में से किसी एक पर लिखें और एक पर कक्षा में सुनाएँ।

विचार करें और बताएँ

1. आपने दो स्थितियाँ चुनीं। एक की अभिव्यक्ति के लिए आपको 'बोलना' उचित लगा, दूसरे के लिए 'लिखना'। अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग माध्यम चुनने के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? 'बोलने' से पहले आपने किस तरह की तैयारी की और लिखने से पहले तैयारी किस तरह की थी? विचारों को व्यवस्थित करने की तैयारी कहाँ अधिक थी?
2. विख्यात लेखिका बाटाली का एक कथन है —

   "एक किताब जब छप जाती है तो गिरगिट की तरह व्यवहार करती है।" उदाहरणों के साथ इस कथन पर विचार करें।
3. "दूसरी भाषाओं से संपर्क के क्रम में नए शब्द गढ़ने की रचनात्मकता बरकरार रखी जाए।" संभवतया आप इस तरफ़ ध्यान दे रहे होंगे कि आज के दौर में नए शब्द गढ़ने के प्रति उत्साह में कमी आई है, इसके क्या कारण हो सकते हैं?
4. "मेरा सारा लेखन बांग्ला में है पर उनके हिंदी अनुवाद छपने के बाद ही मैं भारतीय लेखिका बन पाई। हिंदी में किताबों के छपते ही मैं भारत के कोने-कोने जानी गई।" महाश्वेता देवी के इस कथन को संदर्भ में रखते हुए कोई पाँच ऐसे प्रश्न बनाएँ जो इस कथन के अर्थ को खोल सकें।

विद्यार्थी हेतु

1. पढ़े गए पाठ से ऐसे अंश चुनें, जिनमें भय, क्रोध, व्यंग्य जैसे मनोभाव व्यक्त हों।
2. पंद्रह अगस्त पर रेडियो/टी.वी. पर प्रसारित प्रधानमंत्री के भाषण के प्रारंभिक दो मिनटों के अंश को लिपिबद्ध करें।
3. किसी कवि-सम्मेलन में जाएँ और पढ़ी गई किसी एक कविता को लिपिबद्ध करें।
4. 'घर-परिवार में उम्र और जेंडर से जुड़ी असमानता/भेदभाव' विषय पर अपना मत कक्षा में प्रकट करें।

5. पाठ्यपुस्तक से स्वागत, धन्यवाद, शोक आदि प्रकट करने वाले प्रसंग छाँटें और कक्षा में उन्हें सुनाएँ ।
6. पठन का ज्ञान-प्राप्ति या शिक्षा में क्या महत्व है ? पठन के बिना जीवन का रूप क्या हो जाएगा ?
7. मौन पठन किस-किस प्रकार से उपयोगी है ?
8. भाषा के मौखिक और लिखित रूप में अंतर होता है, जैसे–रक्शा (रक्षा), रितु (ऋतु), बैहेन (बहन), तइय्यार (तैयार), परीश्रम (परिश्रम), साधू (साधु) आदि । कोई ऐसे बीस शब्दों की सूची बनाइए जिनके बोलने और लिखने में अंतर होता है ।
9. इंटरनेट पर कोई भी साहित्यिक वेबसाइट को खोलकर देखिए वहाँ आप क्या-क्या पाते हैं ? उसपर आपस में विचार कीजिए ।

शिक्षक/शिक्षिका हेतु

1. पाठ्यपुस्तक में दी हुई 'ईदगाह' कहानी सुनाकर यह सवाल करें कि– 'हामिद की दादी ने चिमटा देखकर क्या कहा ?' या अमुक कथन किस ने कहा ? कब कहा ? क्यों कहा ? जैसे सवाल करें ।
2. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का कक्षाभिनय कराएँ ।
3. अपने आस-पास के कुछ विद्यालयों में जाकर वहाँ श्रवण-कौशल के विकास के लिए किए जा रहे उपायों का लेखा-जोखा बनाएँ और फिर अपने लिए एक नीति का निर्माण करें ।
4. पाठ्यपुस्तक में से किन्हीं दो कहानियों को संवाद-रूप में लिख कर विद्यार्थियों से अभिनयपूर्वक प्रस्तुत कराएँ ।
5. देश की सांस्कृतिक विविधता, प्राकृतिक सुषमा और सामाजिक समस्याओं से संबद्ध एक-एक गीत विद्यार्थियों को सी.डी.प्लेयर पर सुनने का अवसर प्रदान करें और उन्हें दुहराने का अभ्यास कराएँ ।
6. इतिहास की एक पुस्तक से एक अवतरण निकालें तथा एक हिंदी-साहित्य की किसी पुस्तक से कोई कविता या छोटी-सी कहानी निकालें । कक्षा में दोनों का एक-एक कर वाचन करें/कराएँ । फिर, विद्यार्थियों ने जो अर्थ-ग्रहण किया, उसका आकलन करें। ज़ाहिर सी बात है कि एक ही कविता/कहानी का अर्थ हर ने एक-सा नहीं समझा होगा, जबकि इतिहास के अंश का अर्थ सब ने प्राय: एक ही लगाया होगा । इस परिणाम पर कक्षा में विचार करते हुए यह समझाने का प्रयास करें कि बाकी विषयों की तरह साहित्य का अर्थ निश्चित/सीमित नहीं होता । साहित्यिक अंश के अर्थ की विविधता के क्या कारण हो सकते हैं?– इस पर विद्यार्थियों की राय जानने का प्रयास करें । फिर, वह अर्थ असल में कहाँ स्थित होता है ?– भाषा में या हमारे मन में ? इस पर विचार करें/कराएँ ।

7. बच्चों की परिचित दुनिया से ऐसी जीवनोपयोगी चीज़ें छाँट कर एक सूची बनाइए, जिनकी आकृति हिंदी-वर्णमाला के वर्णों से मिलती-जुलती है । बोर्ड पर उन चीज़ों की आकृति और उसके समरूप वर्ण का अंकन करें । फिर, 'देवनागरी लिपि और जीवन-शैली/सभ्यता का संबंध' विषय पर कक्षा में विद्यार्थियों के साथ विचार करें ।

8. सीमित दृष्टि या दृष्टि-बाधित विद्यार्थियों की पठन-संबंधी कठिनाइयों की पहचान और उपचार के लिए आप एक कार्य-योजना बनाइए ।

9. सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने से संबंद्ध कौशलों के शिक्षण से संबद्ध एक-एक पाठ-योजना बनाइए ।

10. शिक्षा, सदाचार व मानवता से संबद्ध ढेर सारी सूक्तियाँ विद्यार्थियों से कागज़ पर लिखवा कर कक्षा और विद्यालय की दीवारों पर चिपकवाएँ ।

11. श्रुतलेख के लिए ऐसे अनुच्छेद का चुनाव करें, जिसमें अनुस्वार-अनुनासिकता (जैसे- हंस व हँस) और श-ष-स (जैसे- शालिनी-कृष्ण-संसार आदि) ध्वनियों के भेद पर आधारित ढेर सारे शब्द हों, फिर विद्यार्थियों के लेखन की जाँच भी करें ।

12. 'इकबाल', 'तारे ज़मीं पर', 'स्टेनली का डिब्बा', 'चिल्लर पार्टी', 'आई ऐम कलाम', 'दोस्ती', 'जागृति' जैसी फ़िल्में भाषायी कुशलताओं के अर्जन में किस प्रकार मदद कर सकती हैं ? इस पर विचार करें और तत्संबंद्ध पाठ-योजना बनाएँ ।

13. अलग-अलग वर्णों-मात्राओं व संयुक्ताक्षरों से बने हिंदी के बीस शब्द चुनें और उन्हें विद्यार्थियों को 'हिंदी-शब्दकोश' में ढूँढ़ने के लिए कहें । इस प्रकार का अभ्यास सप्ताह में एक बार कराएँ ।

14. वर्तनी-सुधार के लिए विद्यार्थियों से अभ्यास कराना चाहिए । अभ्यास-कार्य को और पुख्ता बनाने के लिए, पाठ्य-सामग्री में आए कठिन वर्तनी वाले सौ-दो सौ शब्दों की एक सूची उनसे बनवाई जा सकती है । अथवा, खुद ऐसी सूची बनाकर, अकारादि-क्रम से सजाकर कक्षा में टाँग सकते हैं । वर्तनी की अशुद्धि के अनुसार उन शब्दों का वर्गीकरण करके भी सूची बना सकते हैं ।

15. आप एक शिक्षक/शिक्षिका के रूप में बच्चों की लेखन-क्षमता का विकास करने के लिए क्या करेंगे/करेंगी ?

16. कक्षा छह-आठ तक की हिंदी की पाठ्यपुस्तक से लिंग, वचन, कारक, काल आदि से संबद्ध 'संदर्भ में व्याकरण' के दस नमूने इकट्ठा करें और उन पर विद्यार्थियों का अभ्यास कराएँ । साथ ही, उनसे ऐसे नमूने खोज कर लाने को कहें ।

17. सुनने और बोलने में असमर्थ बच्चों को ध्यान में रखते हुए हिंदी शिक्षण की दो गतिविधियाँ तैयार करें।

संदर्भ

- *कृष्ण कुमार*, 1936, *बच्चे की भाषा और अध्यापक* - एक निर्देशिका, युनीसेफ़.
- *गांधी जी*, 1959, *नई तालीम की ओर नवजीवन प्रकाशन मंदिर*. अहमदाबाद.
- —— 1992, *राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी. काशीनाथ त्रिवेदी (अनु.) नवजीवन प्रकाशन मंदिर*. अहमदाबाद.
- *प्याजे, जीन*, 1980, *सिक्स साइक्लोजीकल स्टडीज़, डेविडएलकाइंड* (सं), *द द्यर्वेस्टर प्रैस*, ससेक्स.
- *फ्राम, एरिक*, 2001, *डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन, द फीयर ऑफ फ्रीडम में, रूटलेज, लंदन*:207-237.
- *बधेका, गिजुभाई*, 1997, *दिवास्वप्न, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया*, नयी दिल्ली.
- —— 2000, *मांटेसरी शिक्षा-पद्धति, संस्कृति साहित्य*, दिल्ली.
- —— 2008, *निबंध लेखन, प्रारंभिक विद्यालय-भाषा-शिक्षण और चिट्ठी वाचन में*, सृजना बीकानेर.
- —— 2008, *बाल शिक्षण–जैसा मैं समझ पाया*, सृजना बीकानेर.
- भारती, धर्मवीर, 1998, *सूरज का सातवाँ घोड़ा*, भारतीय ज्ञानपीठ - 95.
- *मानव संसाधन विकास मंत्रालय, क्रियान्वयन का कार्यक्रम* 1992, *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* 1986, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली.
- —— *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* 1986, *शिक्षा विभाग*, नयी दिल्ली
- मेक्नैली, डी.डब्ल्यु, 1973, प्याजे, *एजूकेशन एंड टीचिंग*, एनगस एंड रोबर्टसन (पब्लिशर्स), प्रा.लि.सिडनी.
- *मांटेसरी, मारिया*, 2010, *ग्रहणशील मन–बाल मनोविज्ञान का विवेचन*, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.
- यशपाल, 2010, *झूठा सच*, लोकभारती, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2005, नयी दिल्ली.
- —— *क्षितिज भाग-1*, 2006, नयी दिल्ली.
- —— *क्षितिज भाग-2*, 2007, नयी दिल्ली.
- —— *भारतीय भाषाओं का शिक्षण*, 2009, आधार पत्र, नयी दिल्ली.
- —— *भारतीय भाषाओं का शिक्षण*, 2009, नयी दिल्ली.
- *राममूर्ति समिति रिर्पोट*, 1990.
- *रावत, बीरेन्द्र सिंह*, 2014, *जॉन डिवी के 'अनुभव के सिद्धांत' में अनुभव की अवधारणा, समाज बच्चे-बच्चियाँ और शिक्षा, यश पब्लिकेशन*, नयी दिल्ली.
- रेणु, फनीश्वरनाथ 1998, *मैला आँचल*, राजकमल, नयी दिल्ली.
- रेड्डी, बालशौरि, 2002, *राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी, राजभाषा हिंदी में, प्रकाशन प्रभाग*, नयी दिल्ली.
- *व्यगोत्सकी*, 2007, *विचार और भाषा, ग्रंथ शिल्पी प्रा.लि.*,नयी दिल्ली.

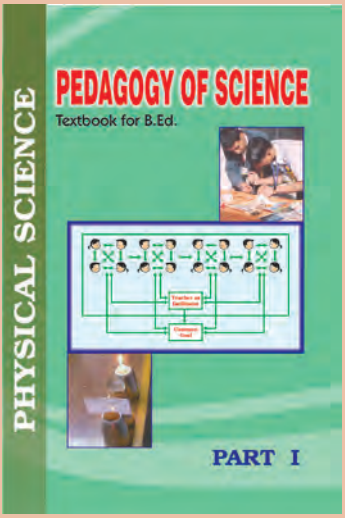

₹175.00/pp.302
Code — 13093
ISBN — 978-93-5007-224-0

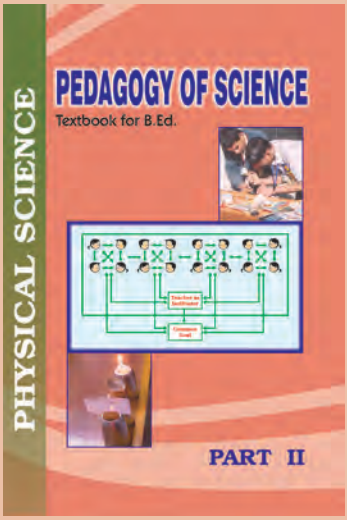

₹130.00/pp.550
Code — 13094
ISBN — 978-93-5007-225-7

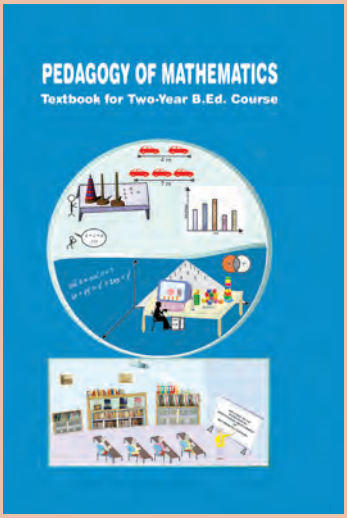

₹175.00/pp.326
Code — 13074
ISBN — 978-93-5007-189-2

₹160.00/pp.330
Code — 13084
ISBN — 978-93-5007-210-3

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

1370

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-018-1